ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

मन्त्र योग

प्रथम तथा द्वितीय भाग

लेखक
महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

प्रकाशक
वैदिक भक्ति साधन आश्रम, आर्य नगर,
रोहतक-१२४००१

संवत् २०४६ वि०]

[मूल्य 12-50

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।

मंत्र योग

प्रथम तथा द्वितीय भाग

अर्थात्

महात्मा प्रभुआश्रित स्वामी जी महाराज के
पवित्र वचनामृत का संकलन

लेखक
स्व० महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

प्रकाशक
वैदिक भक्ति साधन आश्रम, रोहतक

तृतीय बार ५००] [सम्वत् २०४६

विषय सूची नं० १

प्रथम भाग

ओ३म्

विषय सूची नं० २

द्वितीय भाग

□

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

स्व० गुरुदेव महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

॥ ओ३म् ॥

भूमिका

यज्ञ और योग

मैंने अपने २०० दिन के अदर्शन मौन-व्रत में अपनी साधना विशेष करते हुए अनुभव किया कि जनता यज्ञ और योग के नाम पर बड़ी मोहित रहती है और जहां भी यज्ञ हो, चाहे आर्य समाजी करें चाहे सनातन धर्मी, चाहे वह यज्ञ होम यज्ञ हो, चाहे अन्न यज्ञ हो, अथवा कोई भण्डारा हो, सब माई-भाई बच्चे बूढ़े बड़ी श्रद्धा से अपनी-२ भेंट ले जाते और दर्शन करके अपने को कृत्य-२ समझते हैं और फिर जहां किसी योग सिखाने वाले महात्मा का ज्ञान हो जाए, चाहे वह केवल आसन ही सिखाते हों, योग का नाम पड़ जाए तो कालिज के, स्कूलों के नवयुवकों और स्त्रियों और पुरुषों की चाह और रुचि इधर भी खूब बन जाती है। ऐसा होना स्वाभाविक है।

प्रत्येक मानव सुख, आनन्द और शान्ति की

इच्छा करता है। इन दोनों साधनों से अर्थात् यज्ञ और योग से ही मानव जीवन सफल हो सकता है।

योग के लाभ

योग के मुख्य दो लाभ हैं, आत्मबल की प्राप्ति और परमात्मा दर्शन से आनन्द की उपलब्धि।

योग विद्या के बिना जीव अपने आपको, प्रकृति और परमेश्वर को न जान सकता है और न उनसे सत्य सम्बन्ध जोड़ सकता है परन्तु योग जो आन्तरिक साधन है इसमें सफल बहुत विरले जन होते हैं।

मन्त्र योग की विशेषता

योग में राज योग, लय योग, हठ योग तो दुःसाध्य (कठिन) साधन से प्राप्त होते हैं क्योंकि लोगों में जितनी इच्छा होती है उतना त्याग नहीं होता परन्तु मन्त्र योग की एक विशेषता है। मन्त्र योग ऐसा योग है, जिसका मनुष्य-मात्र अधिकारी है। लम्बा समय लेता है परन्तु सुगम और सरल बड़ा है यदि विधि सहित इसकी दीक्षा ली जावे।

मन्त्र योग लिखने का संकल्प

मन्त्र शक्ति एक अद्भुत शक्ति है इसलिये मैंने मन्त्र योग जिसका प्रयोग और अनुष्ठान मैं स्वयं ५५ वर्ष से निरन्तर करता रहा हूं और समय-समय पर व्रतों में नाना प्रकार की विधियों से जुदा-जुदा लाभ प्राप्त किया, उसे जनता की सुविधा और जानकारी के लिये लिखने का सङ्कल्प किया परन्तु बहुत बार लेखनी उठाने पर भी न लिख सका। फिर मैंने रोहतक वैदिक भक्ति साधन आश्रम के यज्ञ के दिनों में एक छोटा-सा ट्रैक्ट साधकों के लिए लिखना चाहा परन्तु तब भी अवकाश न मिला, हाँ गायत्री मन्त्र पर कई दिन उपदेश रूप से बतलाता रहा।

अब मैंने यज्ञ के बाद दो वर्ष का मौन व्रत धारण किया तो मुज़फ्फर नगर में सवा लाख गायत्री का यज्ञ करते समय विचार उपजा कि पूर्णाहूति पर इसे छपवा दिया जाए, तब भी लिखने का अवकाश न मिला। फिर मैं तपोवन देहरादून पहुंचा और कल रविवार दैव वशात् मन्त्रयोग गायत्री पर पूज्यपाद श्री ब्रह्मचारी व्यासदेव जी महाराज योगीराज गङ्गोत्री का व्याख्यान था। तब दृढ़ निश्चय किया और आज खड़े-२

एक मन्त्र याद आया जो वैदिक विषय में मन्त्र-शक्ति का पढ़ा था। तब स्वामी ब्रह्मानन्द जी से वैदिक विनय के सम्बन्ध में कहा और वह ले आए और मन्त्र भी उन्हीं के हाथों से तुरन्त निकल आया।

अब समझा कि प्रभु-इच्छा लिखाने की हुई है। तब बैठ गया और अपने विचारों और अनुभवों को काल्पनिक प्रश्नोत्तर रूप में लिखने लगा।

प्रभु आश्रित

देहरादून
तपोवन कुटिया
१०-११-५२

प्रार्थना

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ।। यजु० ३०-३ ।।

हे सकल जगत् के उत्पत्ति कर्त्ता, समग्र ऐश्वर्य युक्त, सुख स्वरूप, विघ्न विनाशक, सब दुःखो के हर्त्ता सकल सुख दाता प्रभो ! कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण दुर्व्यसन, दुर्वासनाओं, कुचेष्टाओं, कुसंस्कारों, दुःखों, दर्दों, क्लेशों, संकटों, पीड़ाओं और दुर्दिनों को दूर कर दीजिये । मेरी नस-नस, नाड़ी-नाड़ी, रोम-रोम बहत्तर करोड़ बहत्तर लाख, दस सहस्र दो सौ एक नाड़ियों से और बाल खाल से, मेरी आत्मा से समस्त वासनाओं को दूर कर दीजिये और अपने गुण, अपने कर्म और अपने स्वभाव का मेरे हृदय पर राज्य स्थापन कीजिये ।

राजेव दश्म निषद्धोऽधि बर्हिषि ।

अर्थात् आपके गुण कर्म स्वभाव का राज्य मेरे हृदय पर रहे ।

भजन

जीवन का मैंने सौंप दिया सब भार तुम्हारे हाथों में ।
उद्धार पतन अब मेरा है, भगवान ! तुम्हारे हाथों में । १ ।

हम तुमको कभी नहीं भजते,तुम हमको कभी नहीं तजते ।
अपकार हमारे हाथों में, उपकार तुम्हारे हाथों में । २ ।
हममें तुममें है भेद यही, हम नर हैं तुम नारायण हो ।
हम हैं संसार के हाथों में, संसार तुम्हारे हाथों में । ३ ।
दृग् बिन्दु बनाया करते हैं इक सेतु विरह के सागर पर ।
जिस पार पै हम विचरा करते, वह पार तुम्हारे हाथों में ।।४

प्रभु आश्रित

—०—
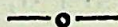
॥ ओ३म् ॥

मन्त्र योग

पहला अध्याय

मन्त्र योग और मन्त्र का परिचय

ओ३म् हस्ते दधानो नृम्णा विश्वानि,
अमे देवान् धात् गुहा निषीदन् ।
विदन्तीमंत्र नरो धियन्धा, हृदा,
यत्तष्टान् मंत्रां अशंसन् ॥
ऋ० मं० १, सूक्त ६७ मंत्र २॥
(वैदिक विनय से १० मार्गशीर्ष)

शब्दार्थ :—

अग्निदेव (विश्वानि) सम्पूर्ण (नृम्णा) ऐश्वर्यों को (हस्ते) हाथ में (दधानः) लिये हुवे (देवान्) देवो, दिव्य गुणों को (अमे) अपने घर में, अपनी ज्ञान-मय शरण में, (धात्) धारण करता है, इस प्रकार वह (गुहा) (हृदय) की गुफा में (निषीदन्) बैठा हुआ, छिपकर बैठा हुआ है। (अत्र) इस हृदय गुफा में (ईं) इसको (धियन्धाः) बुद्धि और कर्म को ठीक प्रकार धारण करने वाले (नरः) पुरुष (विदन्ति) तब पा लेते हैं (यत्)जब वे(हृदा)हृदयसे, हार्दिक भावसे (तष्टान्) निकले हुए, तेजोयुक्त हुवे-हुवे (मन्त्रान्) मन्त्रों को (आशंसन्) उच्चारण करते हैं।

विनय

मन्त्रों की बड़ी महिमा है। मन्त्रों की शक्ति अद्‌भुत है। मंत्र-शक्ति से हम जो चाहें, वह प्राप्त कर सकते हैं। यह ठीक है कि हम प्रतिदिन वेद मन्त्रों का बहुत उच्चारण करते हैं, तो भी हमें इससे कुछ प्राप्त नहीं होता। पर इसका कारण यह है कि यह मन्त्र हमारे हृदय से निकले हुवे नहीं होते। जो भक्त लोग हृदय से घड़े हुवे, हृदय की गम्भीर गहराई से निकले हुवे, हार्दिक भावना से तीक्ष्ण हुवे (तष्टान्-तक्षन्ति तीक्ष्णी कुर्वन्ति यैर्विद्यास्तान्– दयानन्द भाष्य) और पवित्र अन्तःकरण की गम्भीर, सूक्ष्म तथा विस्तृत ज्ञानशक्ति से तेजोयुक्त हुवे-२ वेदमन्त्रों को बोलते हैं (अशसन-स्तुवन्ति-दयानन्द) वे अपने ऐसे मन्त्रोच्चारण द्वारा उस "ईक्षण" नामी दिव्य शक्ति को संचालित कर देते हैं जिस से बढ़कर संसार में अन्य कोई शक्ति नहीं है। इस लिये वे नर, वे सच्चे पुरुष, अपने अन्दर ही सब कुछ पा लेते हैं। वे 'धी' को धारण करने वाले, स्थित प्रज्ञ होने और निष्काम कर्म करने से हृदय (आत्मा) शुद्धि पा लेने वाले, अपने हृदय में ही सब कुछ पा लेते हैं। हृदय की गुफा में जो अग्नि-देव छिपे बैठे हैं, सब ऐश्वर्यों को हाथ में लिये हुए

और देवों को अपने में धारण किये हुए हमारे अग्नि-देव छिपे बैठे हैं, उन्हें पा लेते हैं और इस प्रकार मन्त्र शक्ति द्वारा अग्निदेव को पा लेने पर, प्रकट कर लेने पर, फिर संसार का कौनसा ऐश्वर्य है, कौनसा दिव्य गुण है, जिसे यह नर नहीं पा लेते। संसार के सम्पूर्ण धन ऐश्वर्यों को तो हाथमें रखे हुए हैं, सब देवो, (दिव्य गुणों) को अपनी ज्ञानमय शरण में लिये हुए ये हमारे अग्नि-देव हमारे हृदय में ही स्थित हैं, पर हम हैं जो कि 'मन्त्रों' का उच्चारण करके उन्हें नहीं पा लेते, हृदय से मन्त्रोच्चारण करना तक सीख नहीं लेते, हृदय से निकले मन्त्रों से इन्हें प्राप्त कर नहीं लेते। (वैदिक विनय)

शरद ऋतु है। रविवार का दिन है। एक निर्जन जंगल के तपोभूमि में सायं के ३ बजे वृक्षों के नीचे एक सिंहासन बिछा हुआ है। सिंहासन के ऊपर एक योगी-राज विराजमान है। वाम पार्श्व और सम्मुख पुरुष बैठे हैं और दक्षिण ओर देवियाँ बैठी हैं। देवियों ने भजन गाया :—

भजन

ईश्वर तुम्ही दया करो, तुम बिन हमारा कौन है !
दुर्बलता दीनता हरो, ,, ,, ,, ,,

माता तू ही, तू ही पिता, बन्धु तू ही, तू ही सखा ।
तू ही हमारा आश्रय तुम बिन हमारा कौन है ।। ईश्वर०
जग को रचाने वाला तू, दुखड़े मिटाने वाला तू ।
बिगड़ी बनाने वाला तू, तुम बिन हमारा कौन है ।। ईश्वर०
तेरी दया को छोड़ कर, कुछ भी नहीं हमें खबर ।
जाएं तो जाएं हम किधर, तुम बिन हमारा कौन है।। ईश्वर०

कल्याण के ईच्छुकों के लिये

वेद भगवान् में आया है :—

किंस्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो
द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्
भुवनानि धारयन् ।। यजु० १७ । २० ।।

अर्थ :—वह (वनं) जंगल (किंस्वित्) कौनसा है ? (सः) वह (वृक्षः) वृक्ष (क उ) कौनसा (आस) था (यतः) जिस से (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोक को—विश्व को (निष्टतक्षुः) बनाया । हे (मनीषिणः) मननशील ! पुरुषो ! (मनसा) अपने मन से (इत्) ही (उ) निश्चय पूर्वक (तद्) उसको, जगत् के उस कारण को पूछो (यत्) जिसका, (भुवनानि) लोक लोकान्तरों का (धारयन्) धारण करता हुआ भगवान् (अध्यातिष्ठत्) अधिष्ठाता बना ।

यह संसार क्यों बना ? कब से बना ? किसके लिए बना ? किस से बना ? किसने बनाया ? इत्यादि बातों को समझने और समझाने और वाद-विवाद का विषय बनने की साधारण मानव को कोई आवश्यकता नहीं। स्वयं वेद भगवान् ने कह दिया कि वह पण्डित और शास्त्रज्ञ महानुभाव चाहें, पूछें उनका काम है। हम तो स्थूल विषय पर विचार करें। जो प्रत्यक्ष हमारे सामने है। संसार भी है और हम भी हैं। इसमें किसी को शंका नहीं, चाहे आस्तिक हो चाहे नास्तिक।

निर्विवाद प्रत्यक्ष विषय

एक ही घर में दो मित्र रहते हैं, उनमें से लोग एक को जानते और देखते हैं, दूसरे को बिलकुल पहचानते नहीं। एक मरने वाला है दूसरा अमर। फिर भी इनका संग बना हुआ है, ऐसा संग कि न जुदा होने वाला साथ।

भोग इच्छा

इनका ऐसा मेल कराने वाला कौन है ? वह है भोग इच्छा। जब तक यह भोग इच्छा समाप्त न होगी तब तक संसार में इन साथियों को कोई जुदा नहीं कर सकता। यह असमर्त्य, मर्त्य के साथ एक शरीर

हुआ-२ फिर रहा है। सुख भोग की खोज में, बुरा अच्छा सब कुछ करता हुआ फिर रहा है। बुरा करने पर उसे विवश होकर नीचे गिरना पड़ता है, पशु पक्षियों की नीच योनियों में जाना पड़ता है और अच्छा करने पर ऊपर जाना, उच्च योनि में जाना पड़ता है।

इस प्रकार वे नीचे ऊपर फिरते हैं किन्तु सदा साथ रहते हैं। सदा एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। दोनों इकट्ठे ही सब स्थानों पर फिरते हैं। दोनों ही भोगवश विविध लोकों तक जाते हैं।

हमारा सौभाग्य

अब हमारा सौभाग्य है कि नीच योनि की बजाए ऊपर उच्च योनि, मनुष्य जन्म को प्राप्त हुए हैं। यह योनि ऐसी योनि है जिसमें अच्छे बुरे की पहचान हो सकती है, क्योंकि प्रभु देव ने मनुष्य को ऐसा करण दिया है जिसका विकास हो सकता है। अन्य योनियों में वह करण विकसित नहीं होता।

करण दो प्रकार के हैं

वे करण दो प्रकार के होते हैं। एक बाह्य करण जिन्हें इन्द्रियां कहते हैं और दूसरा अन्तःकरण जिन्हें

मन–बुद्धि का नाम दिया गया है। बाह्य के करण अन्त:करण के अधीन होकर चलते हैं।

विकास कैसे हो ?

बुद्धि का विकास ज्ञान से और मन का कर्म से होता हैं। नीची योनियां न ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं और न कर्म अपने संकल्प (इरादे) से कर सकती हैं।

मनुष्य दो प्रकार का कर्म कर सकता है और दो प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। एक भौतिक दूसरा आध्यात्मिक। भौतिक कर्म और भौतिक ज्ञान से समृद्धिशाली बन सकता है और आध्यात्मिक कर्म और आध्यात्मिक ज्ञान से मृत्यु से छुटकारा हो सकता है और अमृत की प्राप्ति हो सकती है। जैसे वेद भगवान् ने कहा है :–

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥ यजु० ४०।१४

जिज्ञासु –भगवन् ! अविद्या का अर्थ तो विद्वानों ने कर्म किया है और विद्या का अर्थ ज्ञान। आपने आध्यात्मिक कर्म कैसे कह दिया। आध्यात्मिक ज्ञान तो होता है।

योगीराज –प्यारे ! तुमने केवल ऐसा अर्थ सुन

रखा है। भला सोचो तो अविद्या को मृत्यु से तराने वाला कहा गया और ज्ञान को मोक्ष दिलाने वाला। तुमने यदि यह मन्त्र सुना है अथवा स्वाध्याय किया है तो इस से पूर्व के मन्त्र भी सुने पढ़े होंगे, जहां यह लिखा है कि अकेली अविद्या (कर्म) अन्धकार को ले जाने वाली है और अकेला ज्ञान उस से भी नीच अवस्था को ले जाने वाला है।

जिज्ञासु –हां महाराज ! ऐसा पढ़ा है और सुना है।

योगीराज –तो फिर क्या समझे ? वह कौनसा कर्म है जो अकेला अन्धकार को ले जाए और कौनसा ज्ञान है जो उस से भी न्यूनतम अवस्था को पहुंचा दे। फिर उन दोनों को इकट्ठा करने से वही कर्म अथवा अविद्या मृत्यु से पार कराए और वही ज्ञान अथवा विद्या अमृतपद दिलाए। प्यारे ! साधारण कर्म अथवा ज्ञान जो भोगों के लिये किये जाते हैं उनका फल तो सुख और दुःख हो सकता है। सांसारिक कर्म और ज्ञान का फल सुख-दुःख और आध्यात्मिक कर्म ज्ञान का फल मृत्यु से छुटकारा और मोक्ष होता है। यहां तो योग का विषय चल रहा है। ज्ञान-शून्य कर्म के उपासक की अवस्था अविद्या कहलाती है और कर्म-

रहित ज्ञान के उपासक की अवस्था विद्या की कही गई है।

जिज्ञासु–यह बात समझ में नहीं आती कि कर्म तो मनुष्य करे अच्छा, चाहे ज्ञान न भी हो और फिर जाए अन्धकार को। और ज्ञान पूरा है चाहे कर्म न भी करे तब भी उसे ज्ञान का फल मिलना ही चाहिए। (दुस्तर घना अन्धकार क्यों ?)

योगीराज–प्यारे ! इन दोनों को भावी जन्म देने के लिये न्याय किया जावे तो निर्णय होगा कि जो ज्ञान शून्य होकर चलता रहा है उसे चलती-फिरती योनि जंगम योनि पशु-पक्षी की योनि में भेजा जावे और जिसने कर्म शून्य होकर तर्क-वितर्क सोच-विचार में मन को थकाया, मस्तक को सुखाया, जड़ बनाथा उसे गति-हीन जड़ योनि वृक्ष योनि में भेजा जावे। इसलिये यहां जो श्रुति का फल लिखा है और जो श्रुति अविद्या, विद्या के सम्बन्ध में कहती है वह बहुत ऊंची है। भीतरी जीवन से सम्बन्ध रखने वाली का कथन करती है। आध्यात्मिक कर्म=आन्तरिक कर्म-कर्म योग (यम, नियम, आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा, ध्यान, समाधि-रूप अष्टांग योगाभ्यास) और आध्यात्मिक ज्ञान=आन्तरिक ज्ञान–ज्ञानन-योग (परमात्म ज्ञान या पर-वैराग्य) है।

जिज्ञासु—महाराज ! फिर अष्टांगयोग तो आपने आध्यात्मिक कर्म कह दिया । हम जो यज्ञ, दान, तप गीता के अन्दर सुनते हैं कि कभी न त्यागने चाहियें, वह क्या आध्यात्मिक नहीं हैं ?

योगीराज—वह यज्ञ, तप और दान स्वर्ग के द्वार गिनाए हैं । धर्म के स्तम्भ हैं ।

सामाजिक और आत्मिक कर्मों में भेद

सामाजिक और आत्मिक कर्मों में भेद होता है ।
जिज्ञासु—फिर तो भगवन् ! अष्टांग योग वही हुआ जो अति कठिन है । आपने तो मन्त्र योग सुगम बताना आरम्भ किया था, वह मन्त्र योग क्या है ?

मन्त्र योग

योगीराज—योग-दर्शन में एक सूत्र आता है :-

जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः ।।४—१।

पाँच प्रकार से सिद्धि प्राप्त होती है जन्म, औषधि, मन्त्र, तप, समाधि से ।

पांच प्रकार के साधक

उन पांचों में मन्त्र-योग से सिद्धि होती है और इस आध्यात्मिक मार्ग के पांच प्रकार के साधक होते हैं :—जपेश्वर, योगेश्वर, ऋषीश्वर, मुनीश्वर और तपी-

श्वर। मन्त्र द्वारा साधना करने वाले जपेश्वर कहलाते हैं। इनका मार्ग भक्ति-मार्ग कहलाता है। भक्ति-योग भी इस योग को कहते हैं।

जिज्ञासु—कोई भी मन्त्र जो गुरु मुख से प्राप्त हो अथवा कोई विशेष मन्त्र इस योग के लिये होता है ?

योगीराज—प्यारे ! मन्त्र तो अनेक हैं, गुरु भी अनेक हो सकते हैं परन्तु परम गुरु और आदि काल के गुरुओं का भी गुरु योग-दर्शन में एक ही बताया है :-

सपूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ योग—१-२६

तो वही एक परमेश्वर है। उसका अपना दिया हुआ मन्त्र जो आदि ऋषियों को दिया :-

"गायतो मुखाद् उदपतदिति गायत्री।"

वह तो गायत्री मन्त्र जिसका छन्द गायत्री है, जिसका देवता स्वयं सवित: है और जिसका ऋषि विश्वामित्र है जो वेदों में आया है और जिसे मनु भगवान् ने भी लिखा है कि :-

"सावित्र्यास्तु परं नास्ति"—मनु २-८३

अर्थात् गायत्री मन्त्र से श्रेष्ठ कोई मन्त्र नहीं है।

जिज्ञासु—क्या और मन्त्र श्रेष्ठ नहीं है ?

गायत्री की विशेषता

योगीराज –श्रेष्ठ तो सभी हैं परन्तु इसकी विशेषता यह है कि इसके २४ अक्षर हैं। संसार में २४ तत्व हैं और मनुष्य के शरीर में भी सर्व भागों का माप २४ अंगुल है ('गायत्री रहस्य' में भी इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है –सम्पादक)

इस मन्त्र का सम्बन्ध मनुष्य शरीर के सब चक्रों से है और सारे शरीर की नस-नस नाड़ी-नाड़ी से है और श्रेष्ठता यह है कि किसी काल में यह अपने उपासकों का अनिष्ट नहीं करता चाहे विधि से जप किया जाए अथवा अज्ञान से भी।

इससे लाभ भौतिक भी होतें हैं और आध्यात्मिक भी। और जो गुण कर्म मनुष्य को प्रभु-दर्शन कराते हैं उनका प्रतिपादन इस मन्त्र में पूरा-पूरा है।

अब और विस्तार से सुनें :–

यह गायत्री तीन पाद वाली आठ-आठ अक्षरों की है। शरीर के भी तीन भाग आठ-आठ अंगों वाले हैं जैसे :–

पहला भाग –शरीर में २ फुफुस[१], हृदय[२], यकृत[३], प्लीहा[४], २ वृक्क[५] (गुरदे), आमाशय[६], आंतें[७] –इनका सहायक प्राण[८]।

दूसरा भाग –२ हस्त[२], २ पाद[४], गुदा[५], मूत्रेन्द्रिय[६], वाणी[७], इनका स्वामी मन[८] –कर्मेन्द्रियां।

तीसरा भाग –२ चक्षु[२], २ नासिका[४], २ कर्ण[६], १ जिह्वा[७] (रसना इन्द्रिय) इनका शासक (Controller) बुद्धि[८] –ज्ञानेन्द्रियां।

इनसे अधिक कोई वस्तु नहीं जो शरीर में इस लोक और परलोक का काम करने वाली हो।

दूसरा अध्याय

अष्टांग-योग और मन्त्र-योग की समानता

जिज्ञासु —अष्टांग योग तो इस लिए किया जाता है कि उससे पाप और पाप वृत्तियां, पाप वासनाएं और सर्व प्रकार के कलुष क्षीण हो जाते हैं और वासनाएं दग्ध हो जाती हैं, क्या मन्त्र योग से भी वही कुछ सिद्ध हो जाता है ?

योगीराज —प्यारे ! तनिक विचार तो करें कि जब समाधि सिद्धि से जो कुछ प्राप्त होता है वही मन्त्र योग से होता है तो फिर प्रश्न और शङ्का ही क्यों ?

गायत्री के सम्बन्ध में तो अथर्ववेद, काण्ड १६, सूक्त ७१ मन्त्र १ में स्पष्ट उसका माहात्म्य बताया है :

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।

आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं,
ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥
अथर्व — १६—७१—१ ॥

इस मन्त्र में तो स्पष्ट कहा गया है। इसके अर्थों पर जरा विचार करो "(स्तुता मया) उस महान् प्रभु-देव की मैंने स्तुति की, किसके द्वारा? (वरदा वेदमाता) वरों के देने वाली वेदमाता गायत्री माता के द्वारा —यह कैसी वेदमाता है ? (प्रचोदयन्तां) प्रेरणा देने वाली और (पावमानी) पवित्र करने वाली। किन को? (द्विजानाम्) द्विजन्मों को (अर्थात् जिनका दूसरा जन्म हुआ हो। एक जन्म तो सामान्य रूप से जैसे पशुओं का होता है माता-पिता के गर्भ से। ऐसे मनुष्यों का एक तो भोगार्थ शरीरिक जन्म होता है। दूसरा जन्म होता है केवल मनुष्यों का जब वह गुरुशरण में जाते हैं जहां से विद्या ज्ञान को इस लिए प्राप्त करते हैं कि वह अपना अर्थात् जीव प्रकृति और ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करके इनके सम्बन्ध समझ कर यज्ञ, धर्म और योग से अपना जन्म सफल कर सकें।

फिर किस प्रकार की पवित्रता देती है और कैसी प्रेरणा करती है और क्या फल देती है ? जैसे शरीर में अन्न के भोग से सात धातु बनती हैं जिससे शरीर पुष्ट और कर्म करने योग्य होता है और यदि सातों धातु ठीक-२ सुरक्षित हों तो अन्त में ओज पैदा होता है।

ऐसे ही आत्मिक भोजन से, भक्ति-योग से सात वस्तुएं आयु, –प्राण[२] (निरोगता) प्रजा[३] (सन्तान), नौकर-चाकर आदि), पशु[४], कीर्ति[५], द्रव्य[६], धन और ब्रह्मवर्चस[७] ये प्राप्त कराके (व्रजत ब्रह्मलोकं) यह माता ब्रह्मलोक में पहुंचा देती है। ब्रह्म का साक्षात् दर्शन करा देती है।

संसारी माता –प्रत्येक माता अपनी सन्तान को यही आशीर्वाद देती है परन्तु वह सात की बजाय छः का ही आशीर्वाद देती है, कहती है :–

१. बड़ी आयु वाला होवे, जीता रहे।

२. सेहत (नीरोगता) का राज्य प्राप्त रहे।

३. दूध (४) पूत वाला होवें (प्रजा और पशु प्राप्त हों)।

५. तेरी चढ़ी कमान होवे अर्थात् तेरा यश और कीर्ति हो।

६. तेरी लाखों पर कलम फिरे अर्थात् तेरी लेखनी से लाखों की द्रव्य सम्पत्ति की गणना होवे।

परन्तु यह सावित्री गायत्री माता दो पग आगे आगे रखती है, ब्रह्म तेज और प्रभु-दर्शन का वरदान देती है।

जिज्ञासु –अब दो बातें विस्तार से समझना

चाहता हूं, एक तो किस प्रकार की प्रेरणा मिलती है और पवित्रता कैसे और किस प्रकार की मिलती है ?

गायत्री से प्रेरणा और पवित्रता

योगीराज –गायत्री में "धियो यो नः प्रचोदयात्" के अन्तिम पाद में 'प्रचोदयात्' का अन्तिम शब्द बड़ा मर्मपूर्ण शब्द है और इसी में ही आपके प्रश्नों का उत्तर समाया हुआ है। सुनो :—

१ २ ३ ४ ५

प्रचोदयात् में प, र, चो, दया और त पांच अक्षर हैं।

माता अपने उपासक के मस्तिष्क (हृदय) में किस-किस चीज की प्रेरणा देती है :

'प' से पवित्रता का प्रकाश। जैसे माता नन्हे बच्चे को जब नींद से जगातीहै तो जागते ही उसके मुख और शरीर के मल को साफ करती है। आँख, नाक, मुख धोती है। मल-मूत्र का विसर्जन कराकर मलादि से शुद्ध करती है। ऐसे ही गायत्री माता अपने उपासक (पुत्र) को पहले पवित्रता की प्रेरणा और दान देती है, ज्ञान और कर्म इन्द्रियों का शोधना, यह पवित्रता क्या है,रागद्वेष से रहित बुद्धि का मिलना।

फिर 'र' का अर्थ है आत्मिक बल। इस बल में चार प्रेरणाएं शामिल हैं :—

(क) दोषों पर विजय । (ख) कष्टों को हर्षपूर्वक सहना । (ग) सुख की प्राप्ति अथवा दुःख में भी सुख की प्रतीति, जैसे गुरु नानक देव ने कहा है :— "दुःख पर हर सुख घर ले जाएं" । (घ) निरन्तर गति की रीति अर्थात् कभी आलस्य प्रमाद समीप ही नहीं भटक सकता । फिर

(चो) निज उपदेश, ज्ञान, आन्तरिक अनुभूतियां फिर (दया) त्यागवृत्ति, दान प्रेरणा और (त्) ऐश्वर्य ।

प्रेरणा किस बुद्धि में होती है

अब प्रश्न यह होगा कि किस बुद्धि में ऐसी प्रेरणा होती है ?

उत्तर—'धी' का अर्थ है श्रद्धालु बुद्धि और सत् कर्म करने वाली बुद्धि । बस ऐसी बुद्धि में जो इन दोनों गुणों से सम्पन्न हो, उसमें प्रेरणा होती है ।

किस उपासक को प्रेरणा मिलती है

शब्द "प्रचोदयात्" का उच्चारण स्वयं दर्शाता है । 'प' के उच्चारण से ओष्ठ मुख बाहर की तरफ से बन्द हो जाता है और 'र' कहने से अन्दर ही खुलता है । 'चोदयात्' से भी अन्दर ही अन्दर रहता है । अर्थात् जिस उपासक की वृत्ति बाहर से हट कर अन्तर्मुख हो गई है । उसे प्रेरणा सुनाई देती है । बाह्यमुखी प्रेरणा का भान अथवा श्रवण नहीं कर सकता ।

तीसरा अध्याय

जीव का गर्भ में आने का कारण गांठें

जीव के गर्भ और जन्म में आने का कारण उसी प्रकार गांठें हैं, जैसे कोई बीज तभी उगता है, पैदा होता है जब तक उसमें गांठ होती है। गांठ टूट जाए तो वही बीज भूमि में गाड़ देने पर भी नहीं उगेगा। ईख की पोरी जब बोते हैं तो इस प्रकार की बोते हैं, जिसके बीच में गांठ होती है। उस गांठ में जितने भी तार अथवा रेशे (तन्तु) होते हैं उतने ही गन्ने पैदा होते हैं एक ही स्थान से। जौ, चना, ज्वार, बाजरा, गेहूं इत्यादि सब में नथूर अर्थात् गांठ लगी होती है।

तीन ग्रन्थियां

ऐसे ही जीव के कर्म भोग में तीन ग्रन्थियां लगी हुई होती हैं। काम और मोह की एक, लोभ और क्रोध की दूसरी, और अहंकार की तीसरी। इनको शास्त्र-कारों ने पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा के नाम से

प्रकट किया है, उन्हें, मध्यम और उत्तम और अधम पाश भी कहते हैं। इन ग्रन्थियों के खुल जाने पर मनुष्य मुक्त हो जाता है। सर्व पाप और पाप वृत्तियां और संस्कार, वासनाएं इन ही के अन्तर्गत हैं। मन्त्र योग से ये सब ग्रन्थियां खुल जाती हैं और ग्रन्थियों का खुलना ही पवित्रता का प्रकाश है।

जिज्ञासु—केवल एक ही मन्त्र से सब ग्रन्थियां कैसे खुल जाती हैं।

योगीराज गायत्री मन्त्र में दूसरा पाद है 'भर्गो देवस्य धीमहि' अर्थात् उपासक कहता है, भर्गः—पाप विनाशक तेज को हम धारण करें, हम ध्यान करें।

'भर्गः भ्रस्ज' धातु से बनता है जिसका अर्थ है 'भून देने वाला और पका देने वाला।' परमात्मा अपने भक्त के पाप और पाप वासनाओं को तो भून देता है और उसकी आत्मा को पुख़्ता-परिपक्व कर देता है।

'भर्गः' का अर्थ और भी है। 'भ' से 'भय', भ्रम, भ्रांति, 'र' से रहित, 'ग' से गति, ज्ञान। भर्गः के धारण से भक्त को भय और भ्रम, भ्रान्ति रहित ज्ञान हो जाता है और उसकी गति निश्चल गति हो जाती है।

आवश्यक सूचना

इस मन्त्र में ओ३म्, भूः, भुवः, स्वः, सवितः, वरुण, भर्गः और देव के स्वरूप को पृथक्-पृथक् जानने की बहुत आवश्यकता है और फिर एक-एक पाद को जानना। तुम देखो, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार किस-किस के स्वरूप को जानने और उस विधि से उपासना करने से दूर भागते हैं। मनु भगवान् ने लिखा है :—

सहस्र कृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः।
महतोप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥ २–७९॥

अर्थ—इस त्रिक (अर्थात् प्रणव, व्याहृति त्रिपाद युक्त गायत्री) को सहस्र वार ग्राम के बाहर (नदी तीर वा अरण्य में) एक मास जपने से द्विज महापाप से भी छूट जाता है जैसे सर्प केंचली से।

गायत्री से ग्रंथियां कैसे खुलती हैं

अहंकार, अशुद्ध माया का मानो प्रधान-मन्त्री है और सब उसके आधीन है, उसके सहायक हैं। मनुष्य में अहंकार पांव से चोटी तक व्यापक है। यह ओ३म् के स्वरूप को जानकर उपासना करने से अर्पण होता है।

मोह पापों की माता कहलाती है और यह मनुष्य को बालकपन से घुट्टी में मिला है, इसलिये उसका परिवर्तन 'भूः भुवः स्वः' व्याहृति के स्वरूप को जानकर उपासना करने से सर्बत्र प्रेममय हो जाता है।

तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षा अध्याय, प्रथम बल्ली अनुवाक् ५—भूः भुवः स्वः—तायोवेद स वेद ब्रह्म। सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति ॥

व्याहृतियाँ जिसे कथन करती हैं उस प्रकार तीन को जो जानता है, सो ब्रह्म को जानता है। ब्रह्म भावरूप स्वराज्य की प्राप्ति किये हुवे, सर्व देवता उसके अर्थ बलिदान को लाते हैं।

"तत्सवितुर्वरेण्यम" पाद को जानकर उपासना करने से लोभ जो पाप का बाप कहलाता है, निःस्वार्थ और परमार्थ जीवन में बदल जाता है, भक्त निर्लोभी हो जाता है।

क्रोध—जो चाडाल नाम से प्रसिद्ध है, जो समस्त नेकियों को भस्मसात् कर देता है, सुवर्ण के थाल में लोहे की कील है अथवा जो सब ज्ञान उपदेश और बुद्धि को नष्ट कर देता है जैसे छाननी जल की एक बूंद नहीं टिका सकती और जिसकी पांच शक्तियां हैं,

स्वयं अपनी हस्ती रखता है और काम, लोभ, मोह, अहंकार का शस्त्र होकर संसार में प्रयुक्त होता है, "भर्गो देवस्य धीमहि" के दूसरे पाद के समझने और जानने और उपासना करने से वह क्रोध उसका वशवर्ती हो जाता है। भक्त को यह पाद शान्त कर देता है।

काम जिसे अजगर कहा जाता है, जिसने बड़े तपीश्वरों के तप का भंग किया, "धियो यो नः प्रचोदयात्" के तीसरे पाद के जानने, मानने और आचरण से काफूर हो जाता है।

जिज्ञासु—क्या कमाल है ऐसा मन्त्र ! ऐसा जादू ! फिर भगवन् क्या कारण है कि हम लोग सहस्रों, लाखों, करोड़ों जप करते हैं, तब भी हम कोरे के कोरे रह जाते हैं ?

योगीराज – ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति उपासक भक्त अथवा याजक को तब होती है, जब उसमें अपने कर्म क्रियाओं के साथ तप और त्याग दोनों हों। जैसे रोगी के स्वास्थ्य के लिए दवाई और पथ्य दोनों अनिवार्य हैं। जो साधक भक्त ब्रह्ममुहुर्त में जगकर शारीरिक और मानसिक तप से अपने सुकृत श्रेष्ठ कार्यों को करता है उसे ब्रह्मवर्चस मिलता है। बिना तप के यह दात प्राप्त नहीं होती।

जिज्ञासु –कितने ही भक्त लोग प्रातः रात्रि शेष रहे स्नान करते और अपने इष्ट मूर्ति की पूजा करते हैं और जप की माला भी फेरते हैं तब भी उनको यह तेज प्राप्त नहीं होता ।

योगीराज –एक बार एक सेठ ने एक साधु से प्रश्न किया कि सूर्य, चन्द्रमा प्रत्यक्ष देवता हैं, इनकी उपासना करने से सन्तोष रहता है और मन्दिर में महादेव की मूर्ति पर जल चढ़ाते हैं। साक्षात् देव ही इष्ट हो सकते हैं। तो क्या पंचमुखी गायत्री की मूर्ति बनाकर पूजना भी ठीक है ?

तब साधु ने कहा, सूर्य, चन्द्रमा आदि तो प्रत्यक्ष देवता अवश्य है परन्तु इन देवताओं की यह शक्ति नहीं कि अपने उपासक को पाप से रहित कर दें और मन में शान्ति उत्पन्न कर सकें। यह तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो। ऐसी उपासना करने वाले सहस्रों लाखों मानवों को न शान्ति मिली न अब तक पाप से रहित हो सके कारण ?

ये देवता हैं शरीर के। शरीर की इन्द्रियों के। इसलिये इनका प्रभाव शरीर पर हो सकता है, आत्मा पर नहीं। आत्मा चेतन है, उसका इष्टदेव भी चेतन ही

हो सकता है। उस चेतन की आराधना से, वह चेतन देव उपासक को पापों से, पापों के भय से रहित कर देता है। तुम देखते हो, राजा का एक साधारण सिपाही हमारे सामने हो तो हम चोरी कभी नहीं कर पाते, न हम में साहस हो सकता है कि हम किसी को मार डालें अथवा लूट लें। क्यों ?

इसलिये कि वह चेतन शक्ति हम को दण्ड देने वाली हमारे सम्मुख है। सूर्य, चन्द्रमा यदि आत्मा के उपास्य देव होते तो आत्मा भयभीत हो जाती। विषय रूपी चोंर, डाकू भी सामने न आ सकते। यही हाल महादेव की मूर्त्ति का है। उसकी उपस्थिति में कभी उपासक पाप से नहीं डरा। क्योंकि मन तो उस मूर्त्ति को महादेव मानकर महादेव की श्रद्धा करता है परन्तु उसकी बुद्धि में ऐसा विश्वास कभी जमा ही नहीं। यह निर्णय करना तो बुद्धि का काम है। आंख ने उसे मूर्त्ति देखा वैसा प्रतिबिम्ब बुद्धि पर पड़ा।

बुद्धि दर्पण है

बुद्धि तो एक दर्पण है,इसलिए चेतन देव की आराधना के बिना सदा अन्धकार और भय लगा रहेगा। आपकी बालकों की सी सान्त्वना है कि सुवर्ण, रजत,

रुपया आप तिजोरी में रखकर ताला लगाकर घर जा सोये और निश्चिन्त हो गये। आप तो सेठ हो, सत्य कहना, कभी आप की चिन्ता वस्तुतः दूर हुई ? कभी नहीं। तब भी शंका बनी रहती है कि कहीं चोर आकर उसे तोड़ धन-माल निकाल न ले जाए।

प्यारे ! जड़ रक्षा नहीं कर सकता वह चेतन के अधीन है परन्तु जबएक सिपाही अथवा सन्तरीको बंदूक तलवार, वरदी से बंधा, पहरेदार खड़ा कर देते हो तो रात्रि भर निश्चिन्त होकर सोते रहते हो। बचाने वाला चेतन देव ही हो सकता है जिसे आक्रमणकारी का ज्ञान हों सकता है। जिसे ज्ञान ही नहीं वह बेचारा क्या करेगा शक्ति का योग तो ज्ञान होने पर ही हो सकता है।

पंचमुखी मूर्त्ति भी नहीं बचा सकती

गायत्री की पंचमुखी मूर्तिसे भी काम नहीं चलता कल्पना शक्ति तो मन की शक्ति पर निर्भर है। जब मन एक ज़ड़ पदार्थ में अपनेसे अधिक धन शक्ति मान लेता है जिसे वह स्वयं घड़ता,स्थापित करता है जिसमें संकल्प प्रवेश करता है फिर अपने से कैसे अधिक शक्ति का विश्वास कर सकेगा ?

सौम्य ! यदि सत्य की जिज्ञासा है और अपना

कल्याण चाहते हो, अपना उत्थान और सम्मान की लालसा है तो ध्यान पूर्वक सुनो।

किस बुद्धि में प्रेरणा होती है

गायत्री मन्त्र के 'धियो यो नः प्रचोदयात्' से कौन सी बुद्धि (धी) में प्रेरणा होती है ? यह धी वह बुद्धिहै जो ध्यान करने योग्य हो अथवा धारण करने योग्य हों ध्यान भी अन्दर किया जाता है और धारण भी अन्दर ही होता है तो यह बुद्धि अन्तर्मुखी बुद्धि हुई।

प्रेरणा भी अन्दर ही होती है। बाहर की प्रेरणा कानों द्वारा सुनी जाती है और भीतर की प्रेरणा आत्मा द्वारा होती है। प्रेरणा उसे होती है जिसके समीप मनुष्य होता है और प्रेरणा उसकी मानी जाती है जिसके प्रति श्रद्धा होती है तो इस 'धी' का अर्थ हुआ 'श्रद्धामयी बुद्धि' सत्य के धारण और मान करने वाली बुद्धि, धारणावती बुद्धि इसलिये धी का अर्थ बनता है 'श्रद्धा-मयी धारणावती बुद्धि' क्योंकि मन्त्र में पहले 'भर्गो देवस्य धीमहि' (धीमहि—धारण ध्यान करने) की प्रार्थना कर चुके होते हैं।

भर्गः कैसे धारण की जाए

अब भर्गः कैसे धारण किया जाए? भर्ग का उलट है गर्भ। बस जैसे गर्भ धारण किया जाता है।

धारण करता और कराता कौन है

कौन धारण कराता है और कौन धारण करती है ? स्त्री धारण करती है ? और पुरुष धारण कराता है। यह वस्तु क्या होती है ? 'वीर्य'–यह पुरुष से स्त्री को दान रूप से मिलता है। कब मिलता है और क्यों मिलता है ? मिलता तब है जब पुरुष स्त्री में प्रेमावेश होता है और मिलता इसलिये है कि स्त्री सफल जीवन हो, वंश बढ़े, राष्ट्र सेवा करे, स्त्री माता कहलाए और मातृबुद्धि का अधिकार पाए।

इसलिए स्त्री गर्भ की कितनी रक्षा करती है, आहार, व्यवहार, आचार और विचार में और कितना तप और त्याग का जीवन बिताती है। बस यही उपरोक्त अवस्था एक भक्त साधक गायत्री उपासक की होनी चाहिए।

भर्गः प्रभु का वीर्य है

प्रभु का वीर्य 'भर्गः' है। भर्गः के धारण करने पर भक्त का जीवन सफल होता है। इससे भगवान् का नाम और काम भक्त द्वारा बढ़ता है। भक्त इस भर्ग शक्ति को प्राप्त करके समस्त संसार के लिए मातृबुद्धि से सेवा करता है।

भर्गः धारण क्यों नहीं होता ?

अब प्रश्न यह होता है कि भर्गः उपासक में धारण क्यों नहीं होने पाता, जो कि पापों के मूल का नाशक और तेजस्वरूप है।

कोई भी स्त्री केवल पति के प्राप्त अथवा समीप होने से अथवा उससे समागम करने से उसके वीर्यदान को गर्भ में रखने की अधिकारी नहीं बन सकती जब तक उसे रजोदर्शन न आए और वह रजोदर्शन के शुक्ल पक्ष अर्थात् १६ रात्रि तक में गर्भ को धारण तथा प्राप्त कर सकती है,कृष्ण पक्ष में नहीं और फिर रजोदर्शन होने पर भी आवश्यक नहीं कि गर्भ धारण कर सके जब तक कि वह रज शुद्ध न हो। उसमें अरुण परमाणु न हों तो भी धारण नहीं हो सकता।

भक्त में यह अरुण परमाणु और रजोदर्शन क्या है ?

यह रजोदर्शन क्या है और शुद्ध अरुण परमाणु (लाल ज़र्रात) क्या हैं ? जो उपासक में हो तो भर्गः की प्राप्ति में देर ही न लगे। यह विचारणीय बात है।

क–जो लोग अपने अर्थों और कामनाओं की सिद्धि अर्थ गायत्री जप करते हैं,मानो उनका बाँझ स्त्री के समान गर्भ (भर्ग) धारण करना असम्भव है।

ख–जो कामना से तो नहीं करते परन्तु बाह्यमुख और अपनी इच्छा के आधीन जब चाहा जप कर लिय चाहे करते वे प्रतिदिन अवश्य हैं परन्तु उनकी मिसाल ऐसी है जैसे स्त्री को रजोदर्शन तो आता है परन्तु न्यूना धिक और अनियमित समय पर। ऐसी अवस्था जिस प्रकार गर्भ धारण में कठिनाई है वैसे ही भर्ग धारण करने में कठिनाई है।

ग–वे जो ठीक समय और ब्रह्ममुहूर्त में भी श्र प्रीति से जो जप करते हैं परन्तु ध्यानावस्थित एका चित्त से नहीं कर सकते। उनके मन संसारी विषयों दौड़ते रहते हैं। वे ऐसे हैं जैसे वे स्त्रियां जिनको र दर्शन तो ठीक समय पर आता है और उचित मात्रा आता है परन्तु उनके रज में वह शक्ति नहीं जो को धारण कर सके। अरुण परमाणु नहीं। ऐसे वे उपासक भर्गः को धारण नहीं कर सकते। बस समझो कि विषयों में आसक्ति और अहंकार, उपास की अशुद्धि हैं जिससे भर्गः धारण नहीं हो सकत इनसे छुटकारा ही सुर्ख दर्शन (अरुण परमाणु)

समान है। विषयों से ग्लानि, सत्य में पूर्ण श्रद्धा रजो-दर्शन है और अहंकार का अर्पण अरुण परमाणु हैं।

घ—जो लोग जड़ पूजा करते हैं और अवतार का स्वाँग निकाल कर उनका अपमान करते हैं चाहे वे अपनी तरफ से बड़ी श्रद्धा और उत्साह से तन-मन धन लगाकर पूजा करते हैं, वे ऐसे हैं जैसे स्त्री ने बच्चा-दानी निकलवा दी हो। उसे तो गर्भ धारण की इच्छा ही नहीं, ऐसी उपासना वालों को भी भर्गः तेज कैसे प्राप्त हो ?

जिज्ञासु—धारणा और प्रेरणा को कृपया जरा विस्तार से समझाइए।

धारणा, ध्यान और समाधि में भेद तथा विस्तार

योगीराज—योग समाधि में ८ अंग हैं। पांच तों बाह्य अंग हैं तय्यारी के लिये और तीन हैं अंतरङ्ग, जिनको वस्तुतः योगमें प्रवेश अथवा उसका आरंभ कहा जा सकता है। धारणा, ध्यान, समाधि यह तीन अङ्ग अन्तरङ्ग योग के हैं। गायत्री मन्त्र के धीमहि का अर्थ है धारणा और ध्यान। धारण तो किये जाते हैं गुण

ग्रौर ध्यान किया जाता है स्वरूप का, जिसको धारण करना हो ग्रथवा जिसका ध्यान करना हो।

धारणा में तीन तार, ध्यान में दो तार ग्रौर समाधि में एक तार होता है ग्रर्थात् ध्याता, ध्यान ग्रौर ध्येय जिसमें हों, वह धारणा है।

गुलाब का फूल मेरे हाथ में है, मैं ध्याता, गुलाब का फूल ध्येय है। उसमें वृत्ति एक कर देना कि गुलाब के बाहर इधर-उधर ग्रौर कुछ भी प्रतीत न हो, यह है धारणा का पक्का स्वरूप ग्रौर ध्यान में मैं ग्रौर गुलाब का ही फूल रह जाएं। मैं ग्रौर वृत्ति दोनों गुलाब के के फूल में समा जाएं। ऐसी धारणा बाह्य पदार्थों पर भी की जा सकती है, ग्रांख खोल कर भी ग्रौर ग्रांख बंद करके भी, परन्तु यह स्थूल साधना केवल मन को टिकाने के लिये है कि मन ग्रौर विषयों, स्थानों से बिलकुल हटकर एक में लग जावे।

देशबन्धश्चितस्य धारणा ॥ योगदर्शन ३-१ ॥

किसी देश विशेष में चित्त वृत्ति को लगाना धारणा है। पृथ्वी ग्रौर पृथ्वी के पदार्थों में, जल ग्रथवा जल के पदार्थों में, ग्रग्नि, सूर्य ग्रादि प्रकाशमय पदार्थों में, वायु में भी लगाई जा सकती है।

पृथ्वी की कोई मूर्ति बना ली, जल की सूरत में नदी, समुद्र, कूप अथवा जल बिन्दु, अग्नि की सूरत में हवन की अग्नि, दीपक की लाट अथवा सूर्य में, वायु की धारणा प्राणायाम द्वारा। उन सबसे सूक्ष्म धारणा ध्यान कहलाती है।

पदार्थ स्थूल में न वृत्ति जमाई जावे अपितु पृथ्वी के गुण गन्ध में, जल के गुण रस में, अग्नि के रूप में और वायु के गुण स्पर्श में, आकाश के शब्द में चित्त वृत्ति जमाना। शरीर के जहां विशेष स्थान हैं जिनको चक्र कहा जाता है मूलाधार आदि हो अथवा विशेष रूप से हृदय पर, त्रिकुटी पर धारणा की जा सकती है ऐसा अभ्यास पकाते-पकाते दूर के पदार्थों को छोड़कर केवल शरीर पर ही अभ्यास करना और फिर शरीर के अन्दर के तत्त्वों को देखना यह है ध्यान, इस अवस्था में बुद्धि में प्रेरणाएं होती हैं।

प्रेरणाएं किन को मिलती हैं

भक्तों, साधकों, योगियों के जब मन, बुद्धि, चित्त अहङ्कार सात्विक हो जाते हैं अथवा शुद्ध होने लगते हैं तब इन्हें प्रेरणाएं, संदेश आदेश और चेतावनियां मिलने लगती हैं, योगनिद्रा अथवा स्वप्न द्वारा भी।

प्रेरणाएं कैसे मिलती हैं

किसी को सीधी शब्द रूप में, किसी को किसी के द्वारा दर्शन, सिद्ध पुरुष अथवा योगी के द्वारा।

उनकी भी पूर्ण सात्विक अवस्था होती है। वे आकाशवाणी की तरह स्पष्ट-स्पष्ट शब्दों में आदेश सुनते हैं और वह एक बार ही और कोई कोई साधक सन्देश को प्रत्यक्ष वार्तालाप जैसे प्राप्त करते हैं। उनकी रट्ट लग जाती हैं और किसी किसी साधक को घुमा फिराकर पहेली वा बहाना रूप में सुनाई व समझाई प्रतीत होती है।

उनके चिन्ह यह हैं कि जब तो साधक की पूर्ण सात्विक अवस्था होती है तब साधक उसे तुरन्त क्रिया में लाते हैं और जब सात्विक के साथ जितनी रजोगुणी वृत्ति शामिल होती है उतनी उसे क्रिया में लाने में विलम्ब हो जाता हैं। अमल करने का अवसर सोचता रहता है। और जब सात्विक के साथ तामसिक वृत्ति शामिल होती है तो प्रथम तो उसे समझने में देर लग जाती है और फिर आचरण करने पर भी वह थक जाता है, उकता जाता है अथवा संशय में पड़ जाता है, वह सफल नहीं होने पाता। राजसिक वृत्ति में लोकैषणा की वृत्ति जमी होती है और तामसिक में शारीरिक अथवा पारिवारिक मोह अथवा धन मोह की वृत्ति जमी होती है।

प्रेरणाएं कहाँ से आती हैं

प्रेरणा सवितः देव करता है। भर्गः के द्वारा प्रेरणा होती है। ये प्रेरणाएँ सात लोकों से आती हैं। क्रमशः सुनिये :—

(१) शरीर और प्राण सम्बन्धी जितनी प्रेरणाएं हैं वे भूः लोक से चलती हैं।

(२) हृदय में जितनी प्रेरणाएं आती हैं, उनमें किसी से सहानुभूति का आदेश होता है। किसी की सेवा करने का और किसी को उदार बनने का आदेश होता है। यह सब भुवः लोक से आती हैं।

(३) 'स्वः' लोक से उपदेश ज्ञान मिलता है। अगर स्वःलोक जगा हुआ है तो वह याद रखेगा।

(४) त्याग की भावनाओं की तथा बुराइयों के त्याग के बल की प्रेरणाएं महःलोक से आती हैं।

(५) समाधि में बैठा हुआ, ध्यान अथवा विचार में बैठा हुआ, नये से नया ज्ञान उपज रहा है। अन्दर से, वे प्रेरणाएं जनः लोक से आती हैं। सन्त महात्मा जो पुस्तक लिखते हैं, किसी की नकल नहीं करते। उनका ज्ञान ऋतम्भरा बुद्धि से आता है।

(६) श्रद्धा, भक्ति तथा प्रेम की प्रेरणाएं—जो हम भगवान् के प्रति रखते हैं -तपः लोक से आती हैं।

(७) सत्य लोक से बहुत थोड़ा मिलता है। जिसने सत्य को मुख्य समझा और उस पर आचरण किया वह सत्य लोक को जायगा। वानप्रस्थी और संन्यासी कल्याण के मार्ग पर चलने वाले हैं।

सारांश –जितना सूक्ष्म शरीर शुद्ध होगा उतना वह जान सकेगा कि प्रेरणा कहां से आ रही है।

चौथा अध्याय

वर्तमान स्थिति और उसका सुधार

जिज्ञासु –भगवन्! आपने मन्त्रयोग की तरफ सर्वसाधारण का ध्यान आकर्षित करके महान् उपकार किया है परन्तु हम साधारण लोगों को न तो वर्तमान स्थिति का ज्ञान है और न ही यह जानते हैं कि त्रुटियों का कैसे सुधार किया जाये। अतः आपकी बड़ी कृपा होगी यदि इस पर कुछ प्रकाश डालें।

योगीराज –इस समय मानव समाज में अथवा संसार में हम चार प्रकार की अवस्था वाले मनुष्य देखते हैं, एक बच्चे, दूसरे नवयुवक, तीसरे अधखड़ और चौथे बूढ़े।

बच्चे तो राष्ट्र की सच्ची और वास्तविक

विधि और प्रीति के साथ, जप-ध्यान किया जावे तो जैसे अग्नि अपने संग में आई वस्तु के खोट (मल) को तुरन्त जलाकर उसे चमका देती है और जैसे जल के स्पर्श से शीतलता प्राप्त होती है, तृषा शान्त होती है ऐसे ही गायत्री मन्त्र के शुद्ध प्रयोग से मनुष्य की कुवासनाओं का मल जल जाता है और संतप्त हृदय शांत और शीतल हो जाता है। प्रभु करें ! आप की प्रभु स्मरण में प्रीति बढ़े और आप धर्म के कार्यों में प्रवृत्ति और अधर्म से निवृत्ति पाएं।

प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।
प्र यज्ञहोत रानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ।।

अथर्ववेद २०–१४२–२

अर्थ –हे(उषः)पापों को दग्ध करने हारी उषः। हे (महि) पूजनीय ! हे (सुनृते) उत्तम सत्य ज्ञान को धारण करने वाली वेद वाणी ! हे (देवि) ज्ञान प्रकाश देने वाली ! तू (अश्विना) स्त्री-पुरुष, नर-नारी दोनों को (प्र बोधय) भली प्रकार उन्नति के लिये जगा दे, प्रबुद्ध कर उनको ज्ञानवान् बना। हे (यज्ञ-होतः) यज्ञ परस्पर सुसंगत व्यवहारों के प्रवर्तक राजन् ! तू भी (प्र) नर-नारी दोनों को उत्तम ज्ञानवान् बना, चेता। (आनुषक् प्र) तू निरन्तर जगा। (मदाय) हर्ष प्राप्त करने के लिये (बृहत् श्रवः) जो बड़ा भारी यज्ञ, ज्ञान और अन्न है, उसको (प्र) प्रदान कर।

जीवन गीली मिट्टी है

जीवन एक गीली मिट्टी, जैसे भी सांचे में पड़े वैसा प्रगट करेगी अर्थात् फिर संतान एक आदर्श संतान उत्पन्न होगी। माता-पिता जितना बच्चों की बाहर की शुद्धि का विचार रखते हैं, उतने वह सौंदर्य के पुजारी बन जाते हैं। उनकी बाहर की शुद्धि, नवयुवकों और युवतियों को एक प्रकार का फैशन का ही दास और व्यसनी बना देती है। पवित्रता पैदा नहीं होगी यदि पवित्रता मन में, हृदय में नहीं आई। सुन्दर बनाना, सौंदर्य में रुचि (आकार पूजा) तो केवल एक वैश्यावृत्ति को पुष्टि देना है और कुछ नहीं।

सत्यम् शिवम् सुन्दरम्

जो पवित्र है वही सत् है, जो सत् है वही कल्याण है, और शिवहै और जो शिव है वही ही सुन्दर है। इसलिये परमात्मा को "सत्यं शिवं सुन्दरं" कहा गया है।

विषैले सर्प से बचो

जो मनुष्य केवल सौंदर्य चाहता है, वह तो एक विषैले सर्प के समान है जिसका देखना और स्पर्श करना, सङ्ग करना मृत्यु को निमन्त्रित करना है।

प्रभु चरणों में लगाओ

जो स्वयं और दूसरो को मृत्यु के दुःख से बचाना चाहता है वह शिवसंकल्प मन वाला बने। आचार, विचार, व्यवहार में दूसरों का भला सोचे, भला करे और जो परमात्मा और आत्मा के भी दर्शन करना चाहता है वह सत्य का भी पुजारी बने। मनुष्य जीवन में इन गुणों की सफलता तब मिलेगी जब मनुष्य अपने मन और बुद्धि को प्रभु चरणों में लगायेगा।

भुवि भारभूतः

जिस जीव ने मनुष्य जन्म पाकर अपने हाथ से यज्ञ, हवन, दान और सेवा नहीं की और वाणी से प्रभु स्मरण और व्यवहार में मधुर सत्य नहीं बोला और जिसने बुद्धि से दूसरे के हित, कल्याण भलाई का नहीं सोचा, उसका जीवन संसार में एक भार है। वह भावी जन्म में हाथ, वाणी और बुद्धि को प्राप्त न करके, शरीर पर भार ही उठाता फिरेगा। अन्न-जल के लिये पराधीन होगा।

प्यारे ! यही समय है। मनुष्य जीवन अनमोल जीवन है, इसे किसी कारण से भी नष्ट-भ्रष्ट नहीं करना चाहिये। गायत्री मन्त्र ऐसा मन्त्र है कि जिसका,

सम्पत्ति हैं। ऐसी सम्पत्ति की जो व्यक्ति रक्षा करता है, जो उसका मान करता है और अपना सर्वस्व उसके बनाने में लगाता है, वही मनुष्य व्यक्ति, समाज, जाति अथवा देश संसार में सिर ऊंचा कर सकता है।

नवयुवक –युवावस्था सद्गुणों और दुर्गुणों दोनों की जननी है,यह उपजाऊ भूमि की तरह है। जैसा बीज पड़ेगा वैसी स्फाति (फसल) उत्पन्न होगी। इसलिये नवयुवकों (नवयुवक होने वाले १६–१८ वर्ष की आयु वालों) को भी सावधान रहना चाहिये क्योंकि इस अवस्था में एक भयानक शत्रु गुप्त रूप से अर्थात् काम-वासना के अंकुर उत्पन्न होने लगते हैं। उसमें मन का आकर्षण जान पड़ता है और अज्ञान के कारण बहुत-से छोटे बड़े दोषों के आने की सम्भावना रहती है। जिसका पीछे बहुत बड़ा कुफल भोगना पड़ता है। बालकों को आरम्भ से ईश्वर भक्त, आस्तिक बनाना चाहिये यदि माता पिता का सहवास हो और धर्मात्मा गुरु पढ़ाने वाले हों तो फिर युवावस्था स्वर्ग बन जाए। वही युवक युवतियां अपने गुणकर्मानुसार विवाह करें तों एक प्रकार का शुद्ध उत्तम साँचा होंगे।

सुनने के योग्य

मनुष्य का जो जीवन है वह सुनने के योग्य है। मैंने थोड़े दिन हुये भारत टेक पाठशाला के अन्दर लिख कर एक विषय पुत्रियों के लिये दिया कि पशु और पक्षी जितना भी आजीवन पर्यन्त उनके जिम्मे काम है, वह सारे का सारा माता के गर्भ में सीख लेते हैं। वे बाहर कुछ भी नहीं सीखते। यहां तक कि बन्दरी का बच्चा और कुत्ते का पिल्ला यदि नदी में डाल दिया जावे, वह तैरने लग जायेगा जिसने नदी देखी तक नहीं परन्तु मनुष्य का बच्चा माता के गर्भ में केवल बुराई और भलाई सीख लेता है। जितने कार्य माता करती है अथवा विचार करती है उनका प्रति-बिम्ब बच्चे के सूक्ष्म शरीर पर पड़ता है।

मनुष्य का जीवन शिक्षा, परीक्षा और दीक्षा का जीवन है।

स्थूल शरीर से काम करने के लिये सब कुछ सीखता है। टट्टी करना, पेशाब करना, नियम से मूतना आदि सब सीखता है। छोटा बच्चा पशु की न्याई माता की गोद में चौके में मूत देता है उसको पाप नहीं लगता। तो मनुष्य का जीवन शिक्षा का जीवन है। शिक्षा के साथ परीक्षा है।

योरुप वासी लोगों ने जिन्होंने बड़ा काम किया, उनकी शिक्षा नहीं है क्योंकि शान्ति नहीं। अशान्ति के कारण वही लोग हैं जिनको हम शिक्षित कहते हैं।

भारतीय अनपढ़ लोगों में जब अंग्रेजों का राज्य न था, कितना प्रेम था ! बुराईयां कम थीं, मेरी आयु छोटी है परन्तु जो कुछ मैंने देखा है आज पाप बहुत बढ़ गए हैं। लड़की के टक्के कोई नहीं लेता था, आज स्त्रियो का सतीत्व बिक रहा है। योरुप वासियों के विकास ने हमारा ह्रास कर दिया।

परन्तु जब तक दीक्षा न हो, शान्ति नहीं हो सकती। दीक्षा के लिये वेद ने कहा –

"व्रतेन दीक्षामाप्नोति"

य० १९–३०।

दीक्षा व्रत से मिलती है। कारखाने का इञ्जन दीक्षा नहीं दे सकता। दुकानदार से दीक्षा नहीं मिलती। वे शिक्षा दे सकते हैं। जो शिक्षा भी वे देते हैं, वह अविद्या भी नहीं क्योंकि वेद ने कहा :—

"अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययमृतमश्नुते ।।"

यजु० । ४०-१४

अविद्या तो मृत्यु से तराती है विद्या से अमृत पद प्राप्त होता है।

आजकल की पाठशालाओं तथा स्कूलों की न विद्या है न अविद्या है। इसको तालीम कहो, इल्म कहो, जो कहो आप की इच्छा। वेद की दृष्टि में न यह विद्या है न अविद्या।

दीक्षित ही संसार का कल्याण कर सकता है।

दीक्षित मनुष्य और दीक्षित देश ही संसार का कल्याण कर सकता है। दीक्षा के लिये व्रत की जरूरत है। हमारे आत्मकल्याण के लिये बहुत साधन हैं। कथा, सत्सङ्ग यह सब आत्मकल्याण के साधन हैं। इससे मनुष्य के अन्दर जागृति पैदा होती है अर्थात् एक प्रारम्भिक कार्य हो जाता है। इसके बाद सेवा, सहायता और परामर्थ करता है, परन्तु इससे यश मिलता है। यश से एक पग आगे बढ़ाता है। उपदेश से, सत्सङ्ग से रुचि हुई थी, वह धर्म के कार्य में आगे बढ़ता गया, परन्तु इससे आत्मकल्याण पूरा नहीं हुआ।

इसके बाद मनुष्य देव पूजन करता है। इससे मनुष्य के आत्म-भावों का विकास होता है। तीर्थों पर गए, श्रद्धा ले गए, हमारी भावनाएं बनीं।

तप भी साधन है, जप भी साधन है, आत्मकल्याण का। यदि जप को बुद्धि और मन में दाखिल कर दिया तो जप मनुष्य की बुद्धि और मन को पवित्र करता है।

भूर्भुवः स्वः सबके अन्दर है

कोई मनुष्य ऐसा नहीं जिसके अन्दर 'ओ३म्-भूर्भुवः स्वः' न हो। घर में प्रत्येक गृह प्रबन्धक अपने घर के प्राण हैं। 'भूः' की लगन परमेश्वर से रखता है। बच्चा भूखा है तो माँ व्याकुल हो जाती है। बीजरूप सब में 'भूः' मौजूद है।

भुवः—दुःख दूर करने की इच्छा सबके अन्दर विद्यमान है। कौन ऐसा मनुष्य है कि जो अपने परिवार मित्र, सम्बन्धी का दुःख दूर करने की इच्छा न करता अथवा दूर करने का प्रयास न करता हो। फिर—

कौन ऐसा मनुष्य है जो अपने परिवार को 'स्वः' सुख न पहुंचाता हो।

संकुचित मनुष्य

परन्तु साधारणतः मनुष्य संकुचित है। वह अपने परिवार के दुःख-सुख तक ही अपनी सहानुभूति को सीमित रखता है। इस से हम आगे नहीं बढ़ते। जब हम आगे बढ़ते हैं तो हमारा आत्म-कल्याण शुरू हो जाता है। मेरा मन आगे बढ़ कर मुझ से निकल दूसरे में जो मेरापन नहीं है, उसमें मैं दाखिल करता हूं। पुत्र में वीर्य के द्वारा माता-पिता का अहं मम जाता है। रज और वीर्य बनता है। अन्न और धन से।

मैं कब दूसरे का बनूंगा

जब दूसरे के अन्दर अपनी आत्मा दाखिल करूंगा। शास्त्रकारों ने कहा है — 'आत्मनाम् वीर्यं बलम्' दूसरे के अन्दर अपनी आत्मा को दाखिल करना, यह वीर्य है। जिसके अन्दर मैं अपनापन दाखिल करता हूँ, वह मेरा हो जाता है। परन्तु मैं उनका अभी नहीं बना। जब मैंने अपनी कमाई को उसके अन्दर दाखिल किया तो मैं उसका हो जाऊंगा। तब वह मेरे पुत्र समान हो जाएगा।

यह विकास होता है। जप से। दूसरे के सुख-दुःख में शामिल होकर मैं प्रेम करूँगा तो मेरा परिवार बढ़ जायेगा। विकास करना परिवार को बढ़ाना है।

जप और यज्ञ

यज्ञ की अग्नि भी जगाते हैं "भूर्भुवः स्वः" से। परन्तु जप सबसे बड़ा है। जप से बड़ा आचरण है। यज्ञ से मिलता है अन्न और ज्ञान, जप से मिलेगा केवल ज्ञान। (गृहस्थियों से इतर लोग) अन्न नहीं पैदा कर सकते। इसलिये गृहस्थियों को जरूरत है अन्न की। यज्ञ करने वाला संसार के प्राणियों का राजा बनेगा। चारों वेदों के यज्ञ का तात्पर्य केवल यही है कि मेरा विकास हो।

संसार की गति विकास की ओर होगी अथवा ह्रास की ओर

देखने में तो यही आ रहा है। कि दीक्षा नहीं। इसलिए ह्रास ही ह्रास हो रहा है। योरूप वालों ने धन का विकास किया धर्म का ह्रास हो गया। मोटर आदि सब विलास के समान बनाए, धन का विकास हुआ, धर्म का नाश हुआ! सारा संसार लक्ष्मी के पीछे दौड़ रहा है। इसलिये ह्रास, विनाश अवश्यंभावी है।

वेद की आज्ञा

वेद की आज्ञा है धर्म का विकास करो। धर्म ही एक ऐसी वस्तु है जो सदा साथ देती है। मनु भगवान् ने कहा है—

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥

अर्थ—धर्म ही एक ऐसा मित्र है। जो मरने पर भी साथ जाता है शेष सब सङ्गी-साथी, पुत्र-परिवार, माया आदि सङ्ग छोड़ देते हैं।

धर्म का पालन

अतः हम सब को धर्म का पालन करना चाहिये।

दृष्टान्त—गौतम ऋषि वन में रहते थे, बहुत से

शिष्य भी उनके पास रहते थे। उपमन्यु नाम का एक शिष्य उनके पास ब्रह्मविद्या सीखने आया। गौतम ने उसे कहा यह ४०० गौएं हमारी जङ्गल में चराओं जब १००० हो जाएँ तब आश्रम में आना परन्तु भोजन हमारे आश्रम से नहीं मिलेगा। तथाऽस्तु कहकर गौएं हांक कर ले गया। ग्राम से मधूकड़ी मांग कर खाता, दही आदि सब कुछ मिल जाता था। वर्ष बीत गया। आश्रम में गया, गुरु ने देखा बड़ा हृष्ट-पुष्ट हो गया है। कहा-यह कैसे हो गए? भोजन का कैसे करते थे? कहा ग्राम से मांग कर खाता था। कहा-अब जाओ परन्तु ग्राम से माँग कर नहीं खाना। कहा–बहुत अच्छा। अब फिर गया। अब गौओं का दूध पीने लगा। वर्ष के बाद, फिर गुरु से भेंट हुई। गुरु ने पूछा क्या खाते रहे? कहा–गौओं का दूध पीता था। कहा–तूने यह चोरी की। अब फिर जाओ चोरी नहीं करना। अब सोचने लगा अन्ततः निश्चय किया कि जब बछड़े पीलें तो जो झाग थनों से अभी चिपटी रहती है, वही पी लिया करूंगा। वही पीता रहा वैसा हृष्ट-पुष्ट रहा। फिर गुरू के दर्शन हुए। गुरू ने पूछा–क्या खाते रहे ? कहा झाग पीता रहा जो बछड़ों के पी चुकने के बाद बचती थी। कहा–फिर जाओ ! यह झाग भी नहीं पीनी।

अब वर्ष बीत गया, वृक्षों के पत्ते खाता रहा। पतझड़ हो गई तो आक के पत्ते खाने लगा। अन्धा हो गया, गौ की पूँछ को पकड़ कर जाता रहा। एक दिन आंधी आ गई, पूँछ छूट गई। कुएं में गिर पड़ा। एक तिनका आश्रय मिला, उसको पकड़ लिया। वर्ष बीत गया। अब गुरु के पास न जा सका। गुरु को चिन्ता हुई, विद्यार्थियों को भेजा, ढूंढो। ढूंढते-२ विद्यार्थी उस कुएं पर पहुंचे। अन्दर से आवाज दी और अपनी वार्त्ता सुनादी। गुरू आया कहा निकल आओ, तुम्हारे निकलने के लिये मन्त्र बताता हूं।

मन्त्र का प्रभाव

मन्त्र तो मन पर अपना प्रभाव करता है। परमेश्वर को मनुष्य तब जानता मानता है जब आपत्ति आती है। मन से मानना और बुद्धि से जानना होता है। जब तक मनुष्य गुरु को जाने और माने नहीं, अन्धकार का नाश कैसे हो और प्रकाश कैसे प्राप्त हो।

गुरु बनाया नहीं जाता

गुरु बनाया नहीं जाता। गुरु तो जानने और मानने की चीज है। जिसको माना जाता है वही धारण होता है। जब एक चीज धारण कर ली जाती है वह फिर निकलती नहीं।

धारण न करने का फल

परमेश्वर को धारण नहीं किया। इसलिये परमेश्वर हम से निकला हुआ है। धर्म और वेद को धारण नहीं किया इसलिये धर्म और वेद हम से निकले हुये हैं।

वह मन्त्र यही गायत्री मन्त्र था। शिष्य ने माना, धारण कर लिया और गायत्री माता से ज्योति पुनः प्राप्त हो गई। आँखों के खोलने वाला यह मन्त्र है।

यज्ञ के द्वारा मनुष्य की दृष्टि विशाल हो जाती है। बुद्धि जानो बिना जाने के मानना कठिन है। आंखें खुल गईं। प्रसन्नता की हद्द न रही। गुरु ने छाती से लगाया और मस्तक पर हाथ स्पर्श किया। स्पर्श होते ही ब्रह्म ज्ञान हो गया। जब तक दीक्षा न हुई, ब्रह्म ज्ञान न हुआ। दीक्षा के लिये व्रत की जरूरत है जैसा ऊपर वर्णन किया है।

ऐसे व्रती को व्रात्य कहते हैं। व्रात्य वह है जिस ने दीक्षा ली हुई है जिसने परमेश्वर को चारों ओर से ऊपर, नीचे, उत्तर, दक्षिण में कि वह कैसे है, जान लिया हो।

—०—

पाँचवाँ अध्याय

साधक के लिये कुछ मार्मिक बातें

: १ :

उपासक साधक की, यदि अपनी साधना को सफल बनाने की चाह है, तो नीचे लिखी अवश्यक बातों का सदा ध्यान रखें:—

(१) उपासक साधक की कोई भी साधना सफल नहीं हो सकती जब तक वह साधना में सावधान न हो।

(२) आध्यात्मिक साधना तो नियत समय पर की जाती है। परंच सावधानी २४ घण्टे हर क्षण रखनी चाहिये, नहीं तो समय की ठीक की हुई साधना भी निर्बल रहेगी।

(३) किसी भी कार्य के कायिक, वाचिक अथवा मानसिक करने में सावधानी इस बात की चाहिये कि मेरे अमुक कार्य अथवा सङ्कल्प से किसी को हानि तो

न पहुंचेगी और अपने लिये भी जांच करले कि मेरी आध्यात्मिक उन्नति में बाधा तो न पड़ेगी।

: २ :

श्रद्धा—श्रद्धा आन्तरिक गुण है, भक्ति की नींव है। इसका कोई परिणाम अथवा भार नहीं। साधारण जनों में श्रद्धा तो है परन्तु बाह्यमुख वृत्ति के कारण वह नपी तुली होती है।

साधना की सफलता के दो साधन

श्रद्धा और विश्वास दो साधन हैं, मनुष्य की आध्यात्मिक सफलता के— श्रद्धा का स्थान मन है और विश्वास का बुद्धि। अनपढ़ लोगों में विश्वास बजाए बुद्धि में होने के मन में स्थान ले लेता है तो वह अन्ध-विश्वास बन जाता है। इससे उनका मनोविज्ञान–मानसिक बल कमजोर हो जाता है। और पढ़े हुए लोगों में श्रद्धा बजाए मन के बुद्धि में स्थान ले लेती है। तब वह अपनी मापतोल की बन जाती है। उन्हें यथार्थ ज्ञान और भक्ति प्राप्त नहीं होती।

यथार्थ मार्ग

जिन लोगों का विश्वास बुद्धि में और श्रद्धा मन में स्थान रखती है, वह यथार्थ मार्ग पर हैं और वे

अन्तर्मुखी होते हैं, वे ही आत्म-विकास और प्रकाश को प्राप्त करने में समर्थ अथवा योग्य हो सकते है।

: ३ :

बहुत मत सोवें

उपासक साधक लोग यदि सावधान न बने रहे तो उनकी उन्नति होती हुई भी रुक जाती है। प्रायः साधक लोग साधना के एक अङ्ग पर तो अधिक बल देते हैं। दूसरे अङ्गों से अज्ञानी रहते हैं, इसलिये उन्हें सफलता नहीं होती। जिस प्रकार रोगी औषधि पर तो जोर देता है, नियम से खाता है, अत्यन्त कटु भी प्रसन्नता से पी लेता है परन्तु पथ्य नहीं करता। वह क्षणिक स्वस्थ होता है फिर वैसे का वैसा रोगी हो जाता है। इसी प्रकार साधक जागृत चेतनता के समय साधना के द्वारा चेतनता के जिस स्तर पर पहुंच जाता है फिर रात्रि में वह चेतनता प्रायः सदा ही उस स्तर से नीचे उतर आती है क्योंकि निद्रा की चेतनता का स्वभाव ही यही है कि वह जागृत की चेतनता जो जागृत में अब नहीं रही, वह क्षीणता को ले जाती है। (१) इसलिए साधक को बहुत नहीं सोना चाहिये और (२) अचेत होकर भी न सोना चाहिये।

(३) मेरु दण्ड पर चित्त लेटने का बहुत काल तक लेटे रहने का अभ्यास भी नहीं बना लेना चाहिये।

(क) जागृति के समय साधक के मन में जो क्षुद्र भावनाएं उठती हैं, वह भी तामसिक चेतना होती है और वह उसी क्षण साधन की हुई अवस्था, चेतना नीचे उतर आती है। जितनी भी तामसिक चेतनाएं हैं वे क्षीणता में ले जाती हैं। उदाहरण रूपेण—(१) किसी से द्वेष कर लिया। (२) क्रोध में आ गया। (३) वैर भाव बना लिया। (४) किसी की निन्दा में लग गया। (५) किसी के प्रति व्यर्थ कुढ़ता रहा। (६) किसी का अनिष्ट चिन्तन मन में होने लगा।

(ख) राजसिक चेतना भी नीचे उतर आती है। लोभ और अहंकार-वृत्ति अर्थात् अपने मन ही मन में अपना यश सुनते रहना, धन आदि के वायवी दुर्ग बनाते रहना।

(ग) अभ्यास छोड़ देने से अथवा उसमें अनाध्याय करते रहने से।

(घ) अपने स्तर पर पहुंचने में संशय करने अथवा भय लग जाने से भी चेतना नीचे उतर आती है।

यह अवस्था कब तक रहती है ?

प्रश्न होता है, यह अवस्था कब तक रहती है। इसका उत्तर है कि जब तक साधना की हुई चेतना प्राणमय कोष तक रहती है, उसके नीचे उतरने की अवस्था बनी ही रहेगी, वह आगे नहीं जायेगी, नहीं बढ़ेगी। अलबत्ता जब चेतना प्राणमय कोष में परिपक्व हो जाए, तो फ़िर आगे की भूमि में पग रखेगी।

अभ्यास से साधना का लक्ष्य प्राप्त होता है। उस की चेतना के दो रूप हैं। बाहरी रूप तो उसका होता है नई अवस्था का उत्पन्न होना और आन्तरिक रूप होता है नई अनुभूति नया ज्ञान।

रुकावट की निशानी क्या है ?

बाह्य अवस्था जो कल प्राप्त हुई थी, वह रात्रि को निद्रा से अथवा अन्य बताए कारणों से नीचे उतर गई। अब आज उसे उसी अवस्था में अनुभव करना पड़ा या वह कम हो गई या उतना ही समय रही, अधिक न बढ़ी, और निरन्तर उसी अवस्था में आवागमन रहा। उन्नति न हुई और नई अनुभूति जो हुई वह एक बार हुई परन्तु क्रियान्वित न हो सकी।

परिपक्वता का लाभ

असल परिपक्वता का लाभ तो आन्तरिक अनुभूति के आचरण में आ जाने से है। बाह्य की दशा साधक का विश्वास बढ़ाती है, संशय से रहित करती है और भीतर की दशा उसे आत्मिक उन्नति में बढ़ाती है।

प्राण का किसी देश तक पहुंच जाना, नाद अथवा प्रकाश आदि का होना यह सब बाह्य मञ्जिलें और अवस्थाएं हैं।

आन्तरिक अनुभूति क्या है ?

आन्तरिक अनुभूति है—कुवृत्तियों का क्षीण होना, विषयों से घृणा। अनुभूति होती है चेतावनी के रूप में, रहनुमाई के रूप में और यदि परिपक्व न हो तो क्रिया में नहीं आती।

जब परिपक्व हो गई तो उसकी निशानी है विज्ञानमय कोष में उसका साक्षात्-पूर्ण समझ में बैठ जाना, और जब समझ में बैठ गई तो आत्मिक बल प्रभु कृपा से ऐसा उत्पन्न हो जाता है कि बिना किसी सोच-विचार, संशय अथवा बाधा, तुरन्त क्रिया में अपने आप आ जाती है।

प्रायः साधक शिकायत करते हैं कि अमुक भूमि प्राप्त हुई। उस से आगे नहीं बढ़ी अथवा भूमि प्राप्त तो हुई परन्तु जीवन में कोई अन्तर अथवा प्रभाव नहीं दीखता। अथवा अमुक भूमि प्राप्त हुई उस से आगे नहीं मिली। उसके कारण सब ऊपर वर्णित समझे जाने चाहियें। इन से ही साधक अनभिज्ञ रहता है।

अतः साधकों के सुभीता के लिये ये मर्म की बातें पहले खोलकर बता दी हैं। ध्यान पूर्वक पढ़ें और अमल करें।

—०—

मन्त्रयोग—परिशिष्ट नं०—१

(पहला पुष्प)

परिचय—कन्या गुरुकुल खानपुर जि० रोहतक में श्री पं० अभिमन्यु जी संचालक तथा श्रीमती पुत्री सुभाषिणी जी आचार्या के निमन्त्रण पर २–५–५३ से ७–५–५३ तक गुरुकुल की पुण्यभूमि में आचार्य सत्यभूषण जी वानप्रस्थी (वैदिक भक्ति साधन अश्रम, रोहतक) ने यजुर्वेद का पारायण यज्ञ कराया, उस यज्ञ में श्री पूज्यपाद महात्मा प्रभु आश्रित स्वामी जी महाराज के सात लिखित उपदेश श्री आचार्य जी ने पढ़कर सुनाए, क्योंकि श्री महाराज जी उन दिनों व्रत में थे।

एक ही पुष्प की सात सुन्दर कलियां इन्द्रधनुष के रोचक रंगों से चित्रित आज भी मानव हृदय को ऐसे आकर्षित कर रही हैं जैसे वर्षा हो जाने के बाद सूर्य की रश्मियां जब समक्ष आए हुये मेघस्थ जल बिन्दुओं पर पड़कर अद्भुत छटा सी दर्शा कर इन्द्रधनुष बनकर मानव के मुख से अनायास कहलाती हैं 'प्रभु तेरी लीला क्या अद्भुत है', ऐसे

विचार उच्चारण कराती हैं वैसे ही इन कलियों की जब भीनी-भीनी सुगन्ध और रंगत को आप पढ़ें, सुनें अथवा देखेंगे तो प्रभु प्यारे के विचारों की तारतम्यता को आप सप्तरंगी धनुष के रूप में हो पायेंगे। पढ़िये, आनन्द उठाइए। (सत्यभूषण आचार्य)

—०—

पहली पंखड़ी

आशीर्वाद

प्रिय पुत्रियो और महानुभावो ! आज हम सबके सौभाग्य का दिन उदय हुआ है कि पूज्यवर महर्षि दयानन्द जी महाराज को परब्रह्म परमात्मन् देव ने जिस उद्देश्य के लिये भारत में जन्म दिया था और जिन्होंने अपनी घोर तपस्या के बल से आजीवन महा-कठोर ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके प्रभु की निज वाणी, कल्याणदायिनी, अमृत रसपान कराने वाली, लुप्त हुई भगवती वेद श्रुति का पुनरुद्धार और प्रचार किया और आर्यसमाज की स्थापना के समय एक आवश्यक नियम बनाया (वेदसत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है), उस पवित्र वाणी को इस समय आप सब पढ़ें और अनपढ़े प्रेमी, नगरों और शहरों से दूर जगलों में जहां कभी आशा भी नहीं हो सकती, एक तपस्वी त्यागी महात्मा स्वर्गवासी भक्त फूलसिंह जी के आने वाले जन्म दिन के उपलक्ष में सुखों के वर्षाने वाले यज्ञ के द्वारा यजुर्वेद के कर्मयोग, कर्मकाण्ड, कर्म जीवन

बताने वाले मन्त्रों को अपने कानों से सुनने और अपने अन्तःकरण को पवित्र करने का सुअवसर प्राप्त कर रहे हैं।

धन्य हैं सेवा और सहायता करने वाले और धन्य हैं पुत्री सुभाषिणी आचार्या, और संचालक पण्डित अभिमन्यु जी जो पितृ ऋण चुकाने में तन्मय होकर आशीर्वाद के पात्र बन रहे हैं।

परमात्मन् देव इस यज्ञ को और यज्ञ के सेवक, सहायकों के पुरुषार्थ को गुरुकुल की सब कन्याओं, पुत्रियों को विद्या, शिक्षा, परीक्षा में सफल करें।

आज के इस पवित्र समय में मेरी यही मंगल कामना और शुभ आशीष है।

—०—

दूसरी पंखड़ी

बुद्धि बल की विशेषता

यज्ञ की सफलता के लिये चेतावनी—

यज्ञ का लक्ष्य जब मुक्ति न हो तब तक जन्म-जन्मान्तर में सुखदायक साधन सामग्रियों की प्राप्ति कराता रहता है। इसलिये, जिस प्रकार की सामग्री, घृत और समिधा होगी और जिस भावना, श्रद्धा तथा

जितनी मात्रा में भेंट की जावेगी, उसी प्रकार तथा भाव और मात्रा में फल मिलता है।

कल प्रातः कहा गया था कि वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

परम धर्म क्यों?— महर्षि ने परम धर्म क्यों कहा?

संसार और संसार में जो कुछ भी है, पृथिवी से लेकर द्युलोक पर्यन्त और तृण से लेकर सूर्य पर्यन्त, क्या जड़, क्या चेतन, सब का ज्ञान, उनकी क्रिया और भाव का वेद में वर्णन है परन्तु बीज रूप से।

दो प्रकार की विद्या—परा और अपरा

बीज रूप से शास्त्रकारों ने कहा कि वेद में ब्रह्म और धर्म को जानने की विद्या है। ब्रह्म के जानने से मुक्ति और धर्म के जानने से इस लोक परलोक से समस्त सुखों की प्राप्ति होती है।

संसार में जितने भी बड़े से बड़े आविष्कार सृष्टि के आरम्भ काल से आज तक और आज से सृष्टि के प्रलय तक हुये और हो रहे हैं और होंगे अर्थात् एक खिलौने से लेकर परमाणु विस्फोट (Atom Bomb) तक और भूमि के साधारण घास बोने से लेकर हीरे, सुवर्ण, चांदी आदि पर्यन्त वह सब प्राप्त और व्यय

करने का ज्ञान और कर्म एक धर्म में ही आ जाता है। जिसे अपरा विद्या कहते हैं।

दूसरा ज्ञान है केवल ब्रह्म, जीव और प्रकृति का साक्षात् रूप जानने का जिसे ब्रह्मविद्या अथवा परा विद्या कहते हैं।

मनुष्य जन्म दुर्लभ है

इन दोनों प्रकार की विद्याओं को संसार का कोई भी प्राणी सिवाय मनुष्य के नहीं प्राप्त कर सकता। इसलिए मनुष्य जन्म बड़ा दुर्लभ जन्म है। इसे सन्तों ने हीरा जन्म भी कहा है। जिस प्रकार हींरा छोटा सा होता हुआ सब मूल्यवान् धातुओं से अधिक मूल्य रखता है, ऐसे ही मानव भी जिसका आचार, भार और बल, हस्ती, सिंह, अश्व, खर, वृषभ आदि से अति न्यून है, फिर भी उन सब को अपने वश में कर लेता है। इसे प्रभुदेव ने ऐसी कौन-सी दात और शक्ति प्रदान की है ? और क्यों कि है ! और किस कर्म के बदले में की है ?

यह तीन प्रश्न हैं जो सबको बड़े ध्यान से जानने और गांठ बांधने योग्य हैं।

शारीरिक बल, मानसिक बल और बुद्धि बल

देखो ! संसार के सब प्राणियों में हस्ती, आकार भार और शारीरिक बल में सब से बड़ा माना जाता है

जो अपनी सूँड से बड़े-बड़े पेड़ों को उखेड़ देता है। परन्तु सिंह जो इससे आकार में बहुत छोटा और बल और भार में भी तुच्छ है, वह सिंह बड़े-से-बड़े हस्ती पर आक्रमण करके उसे फाड़ देता है। और मानव जो सिंह की अपेक्षा कुछ वस्तु भी नहीं, मानव उसे भी फांद कर पिञ्जरे में बाँध रखता है। क्या कारण ?

उत्तर हस्ती महान् कामी है इसलिये उसका शारीरिक बल होते हुये भी मानसिक बल नहीं। और सिंह जितेन्द्रिय है जो अपनी आयु में एक बार सन्तान उत्पन्न करता है। उसका शारीरिक बल न्यून होते हुए भी मानसिक बल, जितेन्द्रियता और ब्रह्मचर्य के कारण से इतना बल बढ़ जाता है कि हस्ती को मार डालता है। और मानव में इन दोनों से विशेषता है बुद्धिबल की।

मानव बुद्धि के बल से हस्ती पर भी सवारी करके उसे अंकुश से मार चलाता है और सिंह को भी फांद लेता है। इससे भी अधिक वह संसार के समस्त प्राणियों और समस्त वस्तुओं को अपने वश में कर लेता है।

यही बल—बुद्धि बल, ज्ञान बल ही प्रभु की विशेष दात है जो मानव को मिली है। इसी बुद्धि के

विकास के लिये आप कन्याएँ इस गुरुकुल में, घर परिवार को छोड़कर, आई हो। उसे कैसे बढ़ाया जाए ?

— ० —

तीसरी पंखड़ी

मानव में विशेष दात तो बुद्धि है। क्यों दी ? किस कर्म के बदले में दी ?

सत्यासत्य के विवेक के लिये, भले और बुरे को जानने के लिये, आत्मा और आत्मीय को समझने के लिये। संसार में क्या 'वरेण्य' है और क्या अवरेण्य है ? किसे स्वीकार करना है और किसे अस्वीकार ?

संसार के जितने भी कार्य हैं, प्रजा की रक्षा के लिये (शासन), प्रजा के पालन के लिये (व्यापार कला कौशल और शिल्प), रोगों की निवृत्ति के लिये (वैद्यक), पापों और बुराईयों से बचाने, सुचेत रखने के लिये (विद्या), सुतराम् कोई कला बुद्धि के बिना नहीं चल सकती।

इसलिये वैदिक धर्म में बालक अभी माता के उदर से बाहर आता है कि उसे शुद्ध पवित्र करके जातकर्म संस्कार में उसके कानों में नौ मन्त्र पढ़े जाते हैं जिनमें सबसे उत्तम माँग बुद्धि के लिए की जाती है।

एक मनुष्य करोड़पति है। उसकी बुद्धि में जरा

विकार आया नहीं कि उसका सब अधिकार विधान के अनुसार छिन जाता है। राजा अथवा महाराजाधिराज की बुद्धि में दोष आ जाए तो उसे सिंहासन से उतार दिया जाता है। एक वैद्य की बुद्धि ठिकाने न हो तो रोगी मृत्यु का ग्रास बन जाए। विद्वान हो अथवा बलवान् सब बुद्धि की स्वस्थता से ही संसार का कार्य कर सकते हैं और सुखी बन सकते हैं। यह इतनी बड़ी सम्पत्ति है जिसके बिना मनुष्य का मूल्य एक कौड़ी के बराबर भी नहीं रहता।

किस कर्म का बदल है ? आप देखते हो यदि यह बुद्धि, प्रभु की दी हुई, किसी विशेष कर्म के बदले में न होती तो सबकी एक जैसी बुद्धि होती। जैसे गर्दभ, अश्व, गौ, वृषभ में जो-जो बुद्धि है, वही बुद्धि सब गर्दभों, अश्वों, गोओं और बैलों में और सर्वदेशों के गर्दभों, अश्वों में एक जैसी है। परन्तु मनुष्य की बुद्धि में बड़ा अन्तर है। एक से दूसरे की बढ़-चढ़ कर है।

बुद्धि कई प्रकार की है

एक मनुष्य वे हैं जिनकी बुद्धि तो है परन्तु मन्द बुद्धि है। दूसरे की बुद्धि तो तीव्र है परन्तु दुर्बुद्धि है। तीसरे में कुबुद्धि है, चौथे में मिथ्याबुद्धि है, पाँचवें में

संशयात्मिका बुद्धि है, छठे में कुतर्क बुद्धि है वितण्डा-वाद की बुद्धि है।

इसी प्रकार जिनकी बुद्धि अच्छी है उनमें भी किसी की तीव्र, किसी की सूक्ष्म, किसी की मेधा बुद्धि, मातृ-बुद्धि आदि होती है। इसलिए ही जान पड़ता है कि प्रभु की यह दात मनुष्य के लिये जो विशेष है, बड़े ही पुण्य कर्म का फल है। उस फल को सब सज्जन विचारो। हम प्रतिदिन कहते हैं :—

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधया अग्ने मेधाविनं कुरु॥

—०—

चौथी पंखड़ी

प्यारी पुत्रियो और प्यारे सज्जनो ! कल (तीसरी पङ्खड़ी को कृपया देखिये) मैंने कहा था कि मनुष्य को जो विशेष दात बुद्धि की प्रभु देव ने प्रदान की है, वह सब अपने-२ कर्मानुसार है। जैसे प्रत्येक प्राणी की आकृति, रूप रंग जुदा-२ है, ऐसे ही बुद्धि भी जुदा-२ है। जिस प्रकार आकृति के रंगों में भेद है, कोई गौरवर्ण, कोई कृष्णवर्ण, कोई गन्दमी, कोई श्यामल कोई रूपवान्, कोई कुरूप, कोई श्यामल और कृष्ण होते हुए भी बड़ा प्यारा लगता है और कोई गौर रूपवान् होते

हुये भी नहीं भाता। ठीक इसी प्रकार बुद्धि है।

मनुष्य का पतन कराने वाली, रसातल में पहुंचाने वाली भी बुद्धि है और संसार में नेकनाम और सरताज बनाने वाली भी बुद्धि है।

आज महात्मा गांधी, महर्षि दयानन्द अथवा अन्य महापुरुषों का नाम क्यों पूजा जाता है, उनकी जय बड़ी-बड़ी सभाओं में बुलाई जाती है। उनके नाम में ऐसा जादू है कि बिना जय बोले, सभा में बैठे मनुष्यों की तृप्ति नहीं होती। उनके काम, उनके नाम में उत्साह, तृप्ति और प्रसन्नता होती है। उनका नाम सब को प्यारा लगता है। अरबों मनुष्य हैं परन्तु विरले मनुष्यों का नाम प्यारा लगता है।

बुद्धि तो बड़े-बड़े वैज्ञानिकों की उन से अधिक प्रसिद्ध है। एक वे हैं जिनकी बुद्धि को मनुष्य हर समय फटकारता रहता है।

मैंने कल कहा था कि सब सज्जन विचार करें। यदि किसी को याद रह गया हो और अवकाश भी मिल गया हो और विचार किया हो तो कृपा करके कह देवे।

(परन्तु ऐसी बातों पर कौन विचार करें, कोई

घर के धन्धों से मुक्त हो तो करे। गृहस्थी को तो बना बनाया मसाला चाहिए—सम्पादक)

सुधारक बुद्धि की निशानी

नहीं तो यह तो मैं जानता हूं कि वही विचार कर सकते हैं जिनकी बुद्धि सुधारक बुद्धि होती है। उनकी निशानी यह होती है कि प्रथम वे अपना सुधार करते हैं, अपनी छोटी से छोटी त्रुटि, न्यूनता और दोष को भी अपने में नहीं रहने देते। अपना दोष अपने प्रति समालोचना सुन कर वे सुनाने वाले के आभारी रहते हैं) उन्हें प्रसन्नता होती है और वही दूसरों का सुधार अपनी योगयुक्त बुद्धि से करते हैं अर्थात् युक्ति से करते हैं, कटाक्ष अथवा लठ मार कर नहीं करते।

और जो लोग दूसरों के सुधार के तो इच्छुक रहते हैं, परन्तु आप कोरे के कोरे रहना चाहते हैं, वे कोरी पण्डिताई और कटाक्ष करने वाले होते हैं। उन की यही निशानी है और तजवीजें सोचते और सभाएं बनाते रहते हैं।

बुद्धि का मिलना किसी दान का फल नहीं होता, न धन, अन्न, वस्त्र अथवा घोड़ा आदि के दान का फल है। यह सूक्ष्म अन्तःइन्द्रिय है। इसलिये सूक्ष्म अन्तः भावों का फल है, अस्तु।

मातृबुद्धि किसको प्राप्त होती है ?

जिनमें निष्काम भाव से मातृबुद्धि होती है जैसे माता अपनी सब सन्तानों का हित सच्चे दिल से करती है, बिना सन्तान को खिलाये, उसके कल्याण और उन्नत किये बिना चैन नहीं आता और जितना अधिक निर्बल अथवा छोटा बच्चा हो उसके लिये और भी ज्यादा चिन्ता करती है, इसी प्रकार जो मनुष्य अथवा व्यक्ति संसार अथवा देशभर के मनुष्यों का बिना जातिभेद के हित और कल्याण में अपना जीवन लगा देता है, अर्पण कर देता है उसे ही भावी जन्म में मातृत्व मातृबुद्धि प्राप्त होती है।

किसको किस प्रकार की बुद्धि मिलती है

जो योगाभ्यास करते हैं, उनको मेधा बुद्धि प्राप्त होती है। जो प्रभुभक्ति करते हैं उन्हें पवित्र और विशाल बुद्धि प्राप्त होती है।

जितेन्द्रिय होकर जो वेदाभ्यास और वेद आचरण करते हैं, जिनकी वेद में श्रद्धा और भक्ति है उनको सूक्ष्म बुद्धि मिलती है। धर्मात्मा आदमी को तीव्रबुद्धि मिलती है।

प्रभु के दर्शन केवल योगी को नहीं होते, न केवल

विद्वान् को होते हैं, न केवल धर्मात्मा को होते हैं। परमात्मदर्शन उसे होते हैं जों योगी, विद्वान् और धर्मात्मा हो। तीनों गुण उसमें हों। जैसे इन पुण्य कर्मों का फल अपनी-२ बुद्धि की विभिन्नता है वैसे ही पाप कर्मों का फल नीच बुद्धि है।

यों समझिये कि जो मनुष्य जन्म को पाकर अपने शरीर, पुत्र-परिवार के मोह में फंसे रहते हैं। अपना ही सुख और हित सोचते हैं और करते हैं, उनको अगले जन्म में मन्दबुद्धि मिलती है और जो लोग मनुष्य जंन्म को पाकर जितेन्द्रिय न रह कर काम वृत्ति में, काम वासना को पूरा करने में सुख बुद्धि रखते हैं उनको कुबुद्धि मिलती है।

जो लोंग बुद्धि से कमाते हैं उनकी बुद्धि दुर्बुद्धि हो जाती है।

जो क्रोधी उतावले होते हैं उनको संशयात्मिक बुद्धि, अहंकारियों की मिथ्या बुद्धि, कृपण वृत्ति वालों की संकीर्ण बुद्धि - यह सब प्रकार की बुद्धियाँ अपवित्र बुद्धियां कहलाती हैं।

आओ ! हम पड़ताल करें, हमारी बुद्धि की किस श्रेणी में गणना है। मिश्रित वृत्तियों वाले की मिश्रित बुद्धि होती है।

सारांश—मनुष्य का जन्म दुर्लभ है, उससे दुर्लभ अति दुर्लभ तीव्र और पवित्र बुद्धि का मिलना है, उसका एक ही सुगम उपाय है कि मनुष्य का जन्म भी मिल जावे और बुद्धि भी पवित्र मिल जावे। यह फिर।

पांचवीं पंखड़ी

सुगम सुलभ साधन

चौथी पंखड़ी में अन्तिम वाक्य यह था कि मानव जन्म दुर्लभ है परन्तु तीव्र और पवित्र बुद्धि का पाना उस से भी दुर्लभ है। ऐसे जन्म के पाने का सुगम उपाय क्या है, यह आज बताना है।

सुलभ सुगम मार्ग सबको प्रिय है

प्रत्येक मनुष्य स्वभाव से सुगम सुलभ का ही इच्छुक है। कठिनाई और परिश्रम पसंद नहीं करता, क्योंकि अल्पज्ञ है।

परमेश्वर की अपार दया

इसलिये परमेश्वर ने भी अपार दया की कि इसके जीवन के लिये अत्यन्त ही सुगम और सुलभ साधन बना दिये। आकाश में सूर्य को बना दिया और बिना हमारे किसी परिश्रम अथवा प्रार्थना के वह अपने आप

प्रकाश और ताप को हम सब जीवों तक पहुंचा देता है। वायु प्राण जहाँ भी हम हों, अपने आप हमें मिलती रहती है। वर्षा आकाश से हमारी करोड़ों अरबों एकड़ भूमि में अपने आप जल सींचती है। पृथिवी माता हमारे सब खाद्य पदार्थों को क्या अन्न और क्या फल मेवा, अपनी ही शक्ति से गर्भ से लेकर बढ़ने पकने तक की क्रिया आप ही करती है। हमने पौधे को खींच-खींच कर ऊपर नहीं बढ़ाया। जो कार्य मासों अथवा वर्षों में होने वाला होता है, वह तो पृथिवी माता आप ही करती है और मानव केवल घण्टों का काम करते हैं। बोया और काट लिया।

यदि मनुष्य को इन जीवनोपयोगी वस्तुओं के लिये स्वयं परिश्रम करना पड़ता तो कैसे सूर्य से जो $9\frac{1}{2}$ करोड़ मील की दूरी पर है पहुंच कर प्रार्थना करता अथवा प्रकाश वा ताप वहां से ला सकता। फिर किस चीज में लाता। पवन और जल को कैसे प्राप्त करता।

वाह रे प्रभो ! वाह ! तेरी लीला क्या अद्भुत है !

तू तो दया का सागर है। दया सिन्धु तेरा नाम है। पुत्रियो और प्यारे सज्जनो ! प्रभु की दया ही सुगम और सुलभ है। जरा और भी देखो।

प्रभु की शान निराली

मनुष्य माता, पिता अथवा स्त्री और पुरुष ने प्रेमावेश में आकर मिनटों और सैकण्डों में गर्भाधान किया। इस से अधिक कुछ भी परिश्रम नहीं किया, परन्तु ९ मास तक यह धड़ कौन घड़ता रहा। कितना सुन्दर शरीर, आँख, नाक, कान, जिह्वा, ओठ, हस्त, पाद और उनमें अस्थि, मास, नस और नाड़ी क्या किसी माता ने बनाई। आहा! प्रभु ने कैसे बनाया। अन्दर क्या-क्या होता रहा। किसी को पता भी है? कहाँ से पलता रहा और कैसे बढ़ता रहा? फिर पैदा हुआ तो माता को पैसा उठा कर कहीं से दूध खरीदना नहीं पड़ा यदि खरीदना पड़ता तो आज कोई दरिद्र, निर्धन, कङ्गाल माता कैसे करती?

ओहो! अद्भुत प्रभु! तेरी शान निराली है। निर्धन हो व धनी, राव हो व रङ्क, ब्राह्मण हो व शूद्र —सब माताओं के बालक उत्पन्न होने से भी पहले दूध के मटके भर देता है और जब भी बालक रोता है. माता बिना किसी सङ्कोच के दया से उमड़ कर अमृत का झरना अपने बालक के मुख में दे देती है।

वाह री –प्यारी माँ

वाह री प्यारी माँ! तेरे दान की भी कोई सीमा नहीं। जितनी बार बालक मांगे तू देने पर तत्पर

रहती है और जितना देती है उतनी प्रसन्न होती है। तुझे देते हुए आनन्द ही आनन्द आता है। यही आनन्द उसी सच्चिदानन्द प्रभु से तुझे मिल रहा होता है नहीं-नहीं प्रभुदेव स्वयं हर समय तेरे हृदय में दया के सागर को उमड़ा रहे होते हैं और उस बालक के पालन-पोषण के लिए अपना रूप तुझे दे रहे होते हैं। तू भगवान् की प्रतिमा रूप बनी हुई होती है। नहीं तो अनखुट भण्डार एक अल्पज्ञ मनुष्य कैसे चला सकता है। अनखुट (अखण्ड) तो भगवान् आप ही हैं।

अद्भुत् मशीनरी

प्यारी पुत्रियो ! ज़रा इससे और आगे बढ़कर देखो। कितनी अद्भुत मशीनरी भगवान् ने मानव को प्रदान की है, कितनी सुगम और कितनी सुलभ प्रभुदेव की दया है। यदि मनुष्य को खाने के लिये भी मुख को खोलना पड़ता, एक हाथ से ग्रास तोड़ता और दूसरे से मुख ऊपर उठाता तो बेचारे के दोनों हाथ ही व्यस्त रहते। क्या लीला है ?

मुख अपने आप खुल जाता है चाहे अन्धा भी हो और अपने आप चबाया जा रहा है और ग्रन्थियों (Glands) से लुआब-पानी उसे गून्थने और फिसलाने के लिये, रस बनाने के लियं, उचित मात्रा में अपने आप

गिर रहा है। वरन् बिना पानी ग्रास का रस ही कैसे बन सकता। फिर किसी को पता नहीं कि आमाशय में जाकर कैसे रस, रक्त अस्थि मांस, मज्जा, मल आदि बन रहा है। मनुष्य को तेल के कोल्हू की तरह कुछ परिश्रम करना पड़ता तो कहाँ करता। अन्दर तो जा नहीं सकता, बाहर बना नहीं सकता।

ओ दयालु प्रभो ! तेरी दया बेअन्त है ! तेरी दया बेअन्त है !

मेरे धर्म के प्रेमी आर्यो ? आप ही बतलाओ, यदि श्वास भी हम को सङ्कल्प से लेना पड़ता तो सत्य कहना, क्या कोई कार्य मनुष्य कर सकता ? कि श्वास लेने में ही रह जाता। एक दमा के रोगी को देखो, जब वह बेचारा श्वास खींचने लगता है तो बेकार होकर इसी काम में लगता है।

वाह रे भगवान् ! महिमा महान् करुणा निधान !! तेरी विचित्र लीला !!!

हम खाते हैं, बोलते हैं काम करते जाते हैं. श्वास अपने आप ही आता और जाता रहता है। धन्य हो प्रभो ! धन्य हो !

एक और भी

अच्छा एक बात और सुन लो। जैसे उदर पूर्ति के लिये निर्धन और धनी को अनाज बिना पैसा के नहीं मिल सकता। यदि श्वास और प्राण वायु भी हमें खरीदनी पड़ती और प्रभु एक पैसा ही एक श्वास की कीमत रख देते तो २१६०० श्वास जो प्रत्येक मानव प्रतिदिन २४ घण्टे में लेता है, (एक श्वास न आए तो मृत्यु हो जाती है।) २१६०० पैसे, अथवा ३३७ रु० ५० पैसे प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन देना पड़ता। और यदि प्रभु इस से भी कम करके एक पाई प्रति-श्वास कर देते तो ११२रु०५० पैसे देने पड़ते। निर्धन तो क्या धनी भी कहाँ से इतना दैनिक देता, अपना और अपने परिवार का एक दिन में दिवालिया हो जाता।

अब बोलो उस प्रभु की दया का कोई अन्त है। बस समझ लो निश्चय से समझ लो। पूर्ण विश्वास करो कि जिस ऐसे महान् प्रभु ने हमारे बाहर के शारीरिक जीवन के लिए अपने आप सुलभ और सुगम साधन बना दिये हैं उसने अवश्य ही हमारी आत्मा के लिये भी अत्यन्त सुगम साधन बनाया होगा।

उस साधन का नाम है उस प्यारे भगवान् की भक्ति। भगवान् करता है दया और हम करें भक्ति।

वह दया करके अपना प्रेम दर्शाता है, हम भक्ति करके अपना प्रेम प्रगट करें। यही केवल और केवल मात्र यही सुलभ और सुगम साधन है। जो नहीं करता वह कृतघ्न और पशु और जड़ पत्थर समान है।

भक्ति क्या है, कैसे की जावे, यह फिर।

—०—

छठी पंखड़ी

परतन्त्र मानव

प्यारी पुत्रियो और भद्रपुरुषो !

प्रभु की लीला क्या अद्भुत है कि समस्त प्राणियों और समस्त योनियों में अति क्षुद्र जन्तु जो स्वेदज हैं, मल और पसीना से पैदा होते हैं वे तो पैदा होते ही स्वतन्त्र हैं, किसी के आधीन नहीं और मानव जो सर्वश्रेष्ठ और उत्तम योनि कहलाता है और समस्त संसार और संसार के समस्त प्राणियों और देवताओं को भी वश में कर लेता है और जिसकी प्राप्ति दुर्लभ मानी गई है, वह उत्पत्ति काल से, जन्म से, जन्म से ही निःसहाय, परतन्त्र पैदा होता है।

नर कौन है ?

इससे अधिक आश्चर्य क्या होगा ? मानव योनि नर योनि कहलाती है। "नयति इति स नरः" जो दूसरे को ले जाने वाला हो, उसे नर कहते हैं।

मानव दूसरे प्राणी को ले जाने वाला है, कहां और कैसे ? बांध कर ले जाता है और जहां अपनी ज़रूरत पूरी होती देखता है वहां ले जाता है।

निःसहाय पैदा करने का रहस्य

प्रत्येक मनुष्य के बच्चे को प्रभु ने इसलिये निःसहाय पैदा किया कि अपनी योनि को श्रेष्ठ समझ कर कहीं अभिमान में न आ जाए और दूसरों से उपेक्षा न करे और अपने स्वामी को न भूले। यही गुर और यही रहस्य है मनुष्य को निःसहाय बनाने का। अपनी रक्षा और नेतृत्व के लिये दूसरे नर की आवश्यकता रहेगी। वह अपनी अवस्था को याद रखे।

देखिये ! जितने भी पशु और पक्षी जब जन्म लेते हैं, पृथ्वी पर प्रगट होते हैं, तब सब चुपचाप होते हैं। उनके जन्मने का किसी को ज्ञान नहीं होता। परन्तु जब मनुष्य का बच्चा जन्म लेता है और उसकी झिल्ली

उतरती है तो वह निःसहाय जिसको अपनी माँ तक का ज्ञान नहीं होता, भूमि पर पड़ा हुआ, श्वास-प्रश्वास जप और पुकार को अपने जीवन का सहारा बनाता है।

मालिक असली माँ को याद करे

किस नाम का जप करता है, किसको अपनी पुकार सुनाता है? उसके दांत नहीं, उसकी वाणी में बोलने की सामर्थ्य नहीं, आंखों में पहचान नहीं, कानों में किसी शब्द के सुनने की समझ नहीं, परन्तु कण्ठ से एक ही शब्द की बार-बार रट लगाता है वह रट अथवा जप पवित्र प्रणव का जप होता है। अ, उ, और म् जो सुनने वालों को ऊआं-ऊआं के रूप में सुनाई देता है। वह तो वास्तव में अपनी असली मां को, मालिक को याद कर रहा है। वह शिशु निःसहाय शिशु जब-जब जागता है और जब उसे भूख लगती है तो ऊआं, सरदी लगे या गरमी, ऊआं। सुतराम इसी जप में ही उसे नींद आ जाती है और इसी जप में ही वह जागता है।

जब तक निःसाय रहता है, इसी पवित्र ओ३म् नाम का जाप करता और अपने प्रभु के सामने पुकार करता रहता है परन्तु :—

और सहारा मिला अवस्था बदली

जब उसे और सहारा मिलने लग जाता है तब उसकी अवस्था भी बदल जाती है। तब यह नाम उससे छूट जाता है। फिर जो कोई सिखाता है वही बोलता है।

मनुष्य और पशु के जन्मकाल का भेद

यह तो सब की समझ में आ गया होगा कि मनुष्य का जन्म माता के चरणों में नमस्कार से हुआ और श्वास ओ३म् नाम के पुकार से हुआ। पशु पैदा हुआ तो पांव पहले निकाले और उसका सिर पहले ही पांव में था और मनुष्य पैदा हुआ तो उसका सिर अपनी माता जीवन आधार माता के पवित्र चरणोंमें नमस्कार करता हुआ बाहर आया।

पशु का जीवन पांव से पता चलता है और मनुष्य का जीवन सिर से चलता है अर्थात् पशु अपनी मंजिल पावों से तय करता है और मानव मस्तक बुद्धि के ज़ोर पर अपना जीवन यापन करता है।

मनुष्य की पवित्रता नमस्कार और पुकार (प्रार्थना) भक्ति से आरम्भ होती है और भक्ति में ही अर्पण से समाप्त होती है।

वेद ने कहा : ---

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्त ँ शरीरम् ।
ओ३म् क्रतोस्मर । क्लिवे स्मर । कृत् ँस्मर ।। य० ४०।१५

अर्थात् आत्मा अमर है, शरीर का अन्त भस्म हो जाना है, इसलिये मानव ! ओ३म् को याद कर, अपने किये कर्मों को याद कर ।

भक्ति का आरम्भ माता को नमस्कार से, पिता को नमस्कार से; फिर गुरु को नमस्कार से, अन्त में परमात्मा को नमस्कार से होता है यह है बाह्य विधि । आन्तरिक विधि है –पहले वाचक जप से आरम्भ होकर, मानसिक जप और अन्त में ध्यान समाधि में चुप लीन हो जाना ।

बच्चा जन्म से पवित्र, सफल और संसार के विषयों से अनभिज्ञ होता है इसलिये वह ओ३म् प्रणव का जप करता हुआ आता है और योगी जब योग साधन से संसार के विषयों को ज्ञान से छोड़ देता है तब वह भी पवित्र ओ३म् का जप और ध्यान करता और समाधिस्थ हो जाता है ।

गुरु की आवश्यकता

कहा है "ध्यानं निर्विषयं मनः" –मन को विषयों से खाली कर देने का नाम ध्यान है और जब मध्यकाल में मनुष्य बढ़ता बढ़ता ओ३म् नाम को भूल जाता

है, संसार के विषय-वासनाओं में रुचि दिखाने लगता है तब उसे अपने जीवन को सुरक्षित करने के लिये किसी पथ प्रदर्शक, सहायक गुरु की जरूरत पड़ती है।

शिक्षा, परीक्षा, दीक्षा

जीवन के किसी भी विभाग में चलने, बढ़ने, तथा उन्नति करने के लिए और उसमें सफल होने के लिये उसे शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है। वह बिना किसी शिक्षक के नहीं सीख सकता। चाहे वह शरीर सिद्धि का कार्य हो, अर्थ कमाने, मन बुद्धि को विकसित करने अथवा अपने आत्मा को जानने का हो।

शिक्षा के साथ परीक्षा और आत्मा के लिये दीक्षा की जरूरत पड़ती है। किसी गुरु से दीक्षित होना पड़ता है।

यह मध्य की अवस्था मनुष्य को गुरु चरणों से गुरु शरण में ले जाती है। चूंकि कोई भी संसार का कार्य बिना बुद्धि के नहीं चल सकता, इसलिए बुद्धि के विकास के लिए, उसकी पवित्रता के लिए, पापों और बदकारियों से बचाव के लिए, बुद्धि की तीव्रता, सूक्ष्मता और मेधा बुद्धि बनाने के लिए उसे बुद्धि के देवता की शरण लेनी चाहिए।

"अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देववयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठांते नम उक्तिं विधेम ॥
यजुर्वेद अध्याय ७ मन्त्र ४३

के भावार्थ में ऋषि दयानन्द लिखते हैं :-

कोई भी पुरुष परमात्मा की प्रेम भक्ति के बिना योग सिद्धि को प्राप्त नहीं होता और जो प्रेम भक्ति युक्त हो कर योगबल से परमेश्वर का स्मरण करता है, उसको बह दयालु परमात्मा शीघ्र योग सिद्धि देता है।"

और फिर

४० अध्याय मन्त्र १६ में इसी मन्त्र के रूप को यों दर्शाया है "जो सत्य भाव से परमेश्वर की उपासना करते हैं, यथाशक्ति उसकी आज्ञा का पालन करते और सर्वोपरि सत्कार के योग्य परमात्मा को मानते हैं उनको दयालु ईश्वर पापाचरण मार्ग से पृथक् कर, धर्म युक्त मार्ग में चला के विज्ञान देकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करने के लिये समर्थ करता है, इस से एक अद्वितीय ईश्वर को छोड़ अन्य किसी की उपासना कदापि न करें।

देवताओं की आवश्यकता

परमेश्वर ने मनुष्य के बच्चे को शरीर पालन करने के लिए तो माता-पिता देवाताओं का साहारा

उनके कर्मानुसार दिया परन्तु इनके अतिरिक्त अन्य देवताओं के सहारे की भी आवश्यकता है। प्रभु ने आँख, नाक, कान, जिह्वा आदि का सहारा सब मनुष्यों को एक जैसे देवताओं का सहारा दिया।

आँख का देवता सूर्य है, आँख किसी की भी हो वह बिना सूर्य की सहायता के नहीं देख सकती। नाक को सहारा वायु का है, बिना वायु कोई भी प्राणी नहीं जीवित रह सकता न श्वास ले सकता है। नाक का देवता पृथ्वीहै, जिससे गन्ध लेता है, कान बिना आकाश की सहायता के एक भी शब्द नहीं सुन सकता। जिह्वा रस लेती है, यह जल देवता के बिना रस नहीं ले सकती।

मानो प्रभु ने शरीर की बाह्य इन्द्रियों के लिये स्थूल देवता बनाए और अन्दर की इन्द्रियों, मन, बुद्धि के लिये भी, जिनके बिना यह इन्द्रियां कोई काम नहीं कर सकतीं, देवता बनाए।

अतः जो मानव मन और बुद्धि को युक्त करके उनके देवता की शरण में जायेगा तो उसके मन, बुद्धि पवित्र हो जायेंगे और विकास करेंगे। आ यों समझो, मेरी आँख खुली है और सूर्य नहीं है तो आंख कुछ नहीं देख सकती और सूर्य तो प्रकाशित है मैंने आँख मूंद ली है तो भी आंख नहीं देख सकेगी।

ठीक इसी प्रकार मन बुद्धि सोए हुए हों तो उन का दवता पास होते हुए भी उनका विकास अथवा उनको पवित्र नहीं कर सकेगा।

बुद्धि का देवता

बुद्धि का देवता सविता है, मन इन इन्द्रियों का सवितः है ये दोनों मिल जावें और सवितः देव की उपासना करें तो जैसे अग्नि की चिंगारी लगने से वस्तु जल जाती है ऐसे ही इस सविता देव की उपासना से मन बुद्धि के पाप जल जाते हैं और जैसे जल के स्पर्श से सन्तप्त हृदय शान्त हो जाता है। ऐसे मन बुद्धि संसार के विषयों से सन्तप्त हुए सविता देव के ब्रह्मा-नन्द रस से शान्त और शीतल हो जाते हैं।

गुरु मन्त्र

इस लिये वैदिक धर्म में आध्यात्मिक अथवा ब्रह्मविद्या का आरम्भ गुरु अपने शिष्यों को यज्ञोपवीत देते समय पवित्र गायत्री मन्त्र से कराता है। यह मन्त्र गुरु मन्त्र है। वेद माता और वेद मुख है।।

गायत्री की महिमा

यह मन्त्र भक्ति प्रधान मन्त्र है। यह मन्त्र मानो एक सरणी है जैसे सरणी से मन्द से मन्द तलवार

अथवा चाकू रगड़ा जाए तो उसकी जंग (मल) तुरन्त दूर हो जाती है और उससे अग्नि निकलने लगती है और वह शुद्ध पवित्र, तेज और चमकीला हो जाता है। ठीक इसी प्रकार गायत्री मन्त्र, जिसका देवता सवित: है, इसका श्रद्धा विधि सहित जप करने से भर्गः का तेज, उपासक के जन्म-जन्मान्तरो, के विचारों पापों को दग्ध कर देता है और उसकी आत्मा को चमका देता है, प्रकाशित कर देता है।

सब लोगों को गायत्री की शरण में जाना चाहिए

अतः सब लोगों को, ब्रह्मचारियों, गृहस्थियों, वानप्रस्थियों को इस पतित पावनी गायत्रो की शरण में जाना चाहिये और इसके द्वारा उपासना करके अपने जीवन को पवित्र बनाना चाहिए। जब गायत्री माता की शरण से बुद्धि पवित्र हो जावे मेधा तीव्र, पवित्र, सूक्ष्म, विशाल बन जावे तब वे केवल ओ३म् का जप करके ध्यान समाधि में प्रवेश कर जावेंगे। जब तक ध्यान समाधि की अवस्था न आवे तब तक गायत्री का जप अपनी-अपनी योग्यतानुसार उस विधि से करना चाहिए जो **गायत्री रहस्य'** आदि पुस्तकों में वर्णित है।

—०—

सातवीं पंखड़ी

प्यारी पुत्रियो और भद्र पुरुषो ! आज यजुर्वेद के पवित्र यज्ञ की पूर्णाहुति है। परन्तु आज का उपदेश सब लोगों की पकड़ में न आयेगा। केवल पिछले उपदेशों की पूर्ति के लिये ही, आज उपदेश सुनाना है। क्योंकि लिखकर सुनाया जा रहा है और इनको छपवाने का भाव भी प्रगट किया गया है। वरना आजके उपदेश को वही सज्जन समझ सकते हैं जो अपने महान् शरणदाता परमेश्वर की पकड़ में रहना पसन्द करते हैं। प्रभु की शरण जिन्हें अपनी बाड़ जंचती है और जो प्रभु चरणों में प्रीति रखते हैं जिन्हें पापादि कार्यों से घृणा है और जो पुण्य और सत्कर्मों में ही अपनी शान और अपना गौरव समझते हैं और जिन्हें यह मनुष्य जन्म सचमुच दुर्लभ जन्म प्रतीत होता है।

जिन बेचारों ने मन लगा कर सन्ध्या, उपासना, भगवद्भजन, जप, व्रत अनुष्ठान कभी किया ही नहीं, केवल नमस्ते कहने वाले को आर्य समझ रखा है, वे कैसे अपने दिल या दिमाग में ऐसे उपदेश बिठा सकते हैं।

मेरे प्यारे आर्य भाइयो! जरा महर्षि दयानन्द जी

महाराज की भक्ति और भाव को पढ़ो और सुनो और फिर ध्यान देकर अपनी पड़ाताल करो।

प्रार्थना मन्त्रों के दूसरे मन्त्र :—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

के अर्थ महर्षि ने यों किये हैं :—

अर्थ :—जो स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करनेहारे सूर्य चन्द्रादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो उत्पन्न हुये सम्पूर्ण जगत् का प्रसिद्ध स्वामी एक ही चेतन स्वरूप था, जो सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व वर्तमान था जो इस भूमि और सूर्य आदि को धारण कर रहा है। हम लोग उस सुखस्वरूप शुद्ध परमात्मा के लिए ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्ति किया करें।

मैंने एक दिन बतलाया था कि बुद्धि का मिलना मनुष्य के लिए प्रभु की एक विशेष दात है। जैसे मनुष्य का जन्म मिलना दुर्लभ है, जन्म-जन्मान्तर के पुण्य कर्मों का फल है ऐसे ही इससे भी अति दुर्लभ पवित्र, विशाल, सूक्ष्म, मेधा और तीव्र बुद्धि का मिलना है। बुद्धि, धन-लक्ष्मी-सम्पत्ति की तरह उनके दान का फल नहीं। मैंने बताया था किस-२ कर्म का बदल यह

भिन्न-भिन्न प्रकार की बुद्धि मिलती है (देखो चौथी पंखड़ी) और कल मैंने कहा कि सविता देव की उपासना भक्ति द्वारा यह सब प्रकार की पवित्र बुद्धियां प्राप्त हो सकती हैं।

योग चार प्रकार का है

मैंने कहा था योगाभ्यास से मेधा बुद्धि प्राप्त होती है। यह गायत्री मन्त्र-मन्त्रयोग कहलाता है।

योग चार प्रकार का है—हठयोग, राजयोग, लययोग और मन्त्रयोग।

मन्त्रयोग सुगम है, शेष तीनों योग कठिन हैं। मन्त्रयोग को सब मनुष्य सुगमता से कर सकते हैं। इसे भक्तियोग भी कहते हैं।

कल आप को ऋषि दयानन्द महाराज के भाष्य से सुनाया था कि कोई भी पुरुष परमात्मा की प्रेम-भक्ति के बिना योगसिद्धि को प्राप्त नहीं होता। और जो प्रेम भक्ति युक्त हो कर योगबल से परमेश्वर का स्मरण करता है, उसको वह दयालु परमात्मा शीघ्र योग सिद्धि देता है।

तनिक ध्यान से सुनिये ? योग का अन्तरङ्ग धारणा, ध्यान और समाधि होता है। इस गायत्री मन्त्र में दूसरे पाद "भर्गो देवस्य धीमहि" का अर्थ है—

"उस सुख स्वरूप प्रकाशमय सवितः देव के पाप विनाशक भर्गः तेज को हम (धीमहि) धारण करें और उस पवित्र तेज का हम ध्यान करें।

ध्यान की परिपक्कव अवस्था का नाम समाधि होता है। समाधि का फल ज्ञान की प्राप्ति होती है। उस सच्चे ज्ञान का अनुभव प्रेरणा के रूप में बुद्धि में होता है जिसका तीसरा पाद गायत्री में "धियो यो नः प्रचोदयात्" है।

इस ध्यान योग से तो मेधा बुद्धि मिलती है और यह मन्त्र, समर्पण मन्त्र भक्ति का है। भक्ति से विशाल और पवित्र बुद्धि मिलती है। सूक्ष्म बुद्धि जितेन्द्रीय रह कर वेदाभ्यास और वेदाचरण से प्राप्त होती है। यह मन्त्र वेद मुख और वेद माता के नाम से प्रसिद्ध है। वेदारम्भ संस्कार में गायत्री से वेद आरम्भ होता है। इसलिए इसके अभ्याससे सूक्ष्म बुद्धि की प्राप्ति होती है।

मनु भगवान ने तो यहाँ तक लिखा है कि ब्राह्मण केवल गायत्री के जाप से ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता हैऔर यह भी लिखा कि जों उपासक भक्त एक सहस्र गायत्री का विधि और श्रद्धापूर्वक नित्यप्रति जप करता है, वह एक मास के जप से पापों से, पाप वासनाओं से ऐसे मुक्त हो जाता है जैसे सर्प कैंचली से छूट जाता है।

यदि तीन वर्ष पर्यन्त जप करे तो वायु के समान स्वतन्त्र, स्वेच्छाचारी हो जाता है

मैंने कहा था कि तीव्र बुद्धि मिलती है धर्मात्मा बनने से। गायत्री के उपासक के अन्दर जब भक्ति का प्रवेश होने लगता है तो उसका स्वभाव सरल, और बुद्धि पवित्र और हृदय, मन विशाल हो जाता है, तब वह अपने आप उससे अनायास धर्म के कार्यों में तनमयता और अधर्म से निवृत्ति कराने लग जाती है। एक और बुद्धि कही थी--मातृबुद्धि। जिस समय भक्त उपासक भूर्भुवः स्वः के स्वरुप को जान जाता है तो उसकी बुद्धि संसार के सब प्राणियों के लिये जीवन दान देने वाली और सब के दुःखों को अनुभव करने और हरने वाली और सब प्राणियों को ऐसा सुख देने वाली हो जाती है जैसे मां अपने सब बच्चों के लिये दुःख सुख में एक हो जाती है।

प्रेम भक्ति और योगाभ्यास दोनों जिनके लिये ऋषि ने अति प्रेम से भक्ति विशेष करना लिखा है, वह साधारण समझ की चीज नहीं कि पुस्तक से मन्त्र पढ़कर याद कर लिया और जप करने लग गया।

लोगों में तो इतना आलस्य, प्रमाद और अहंकार है कि परमेश्वर की पूजा में इतना भी समय नहीं देना

चाहते जितना शौच के लिये जङ्गल में आने जाने और शौच करके शुद्ध होने तक का समय लगाते हैं।

किसी से पूछो, सन्ध्या करते हो। अजी! मन्त्र नहीं आते। जप करते हो, हां कभी पांच दस बार बोल लेता हूं।

बहुत लोग तो ऐसे हैं जिन्हें गायत्री मन्त्र भी नहीं आता--कितनी घोर अज्ञानता है--आवे भी भला कैसे जब लोगों में यज्ञोपवीत की तीन तारें पहनने का भय है तो वे गायत्री मन्त्र कहां से लेवें।

गायत्री तो गुरुमन्त्र है, यह तो गुरु देता है, सिखाता है। गुरु इस मन्त्र का कैसे उपदेश करे, किसको करे और शिष्य इसका जप कैसे करे। यह सब बातें शास्त्रों में और महर्षि ने संस्कारविधि में लिख दी हैं। कोई स्वाध्याय करे और आचरण करे तो बेड़ा पार हो जावे

गुरुकुलों में अथवा अन्य स्थानों पर जब बालक गुरु से यज्ञोपवीत, उपनयन और वेदारम्भ संस्कार कराता है, तो गुरु उसे यह विश्वास दिलाता है कि हे बालक! आज से सावित्री तेरी माता है और परमेश्वर (आचार्य) तेरा पिता है। बालक को जो विश्वास और प्रेम माता-पिता में होता है और किसी में नहीं होता। उसका सर्वस्व धन सम्पत्ति नहीं होता बल्कि माता पिता

ही उसका सर्वस्व होते हैं। इसी लिये आचार्य बालक से कहता है, 'सावित्री तेरी माता है, परमेश्वर तेरा पिता है।

यदि बालक, बालिकाएं सचमुच इसी कथन पर विश्वास रखकर सावित्री द्वारा प्रभु की शरण लेवें तो उनका जीवन, जन्म, नाम और स्थान, माता–पिता की कोख सब सफल हो जावें।

ओ३म् महामन्त्र है यह निवृत्ति मार्ग का सूचक है। गायत्री मन्त्र गुरुमन्त्र है यह प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों का सूचक है।

भगवान हम सब को सुमति और योग्यता प्रदान करें कि हम महर्षि के उपकार से लाभ उठाकर जीवन सफल करें।

मैं सत्य कहता हूं जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य (सविता) प्रत्यक्ष अपने प्रकाश से दिन कर देता है, ठीक उसी तरह गायत्री का सविता उपासक के हृदय में आत्म प्रकाश कर देता है। यदि वह सच्चे दिल और सच्चे भाव से और विधि पूर्वक जप करे तो पांचों शत्रु काम और क्रोध जो घातक हैं, लोभ और मोह जो बाधक हैं और अहंकार जो पातक हैं, उसका कुछ भी न बिगाड़ सकें।

विधि से तात्पर्य केवल जप करने अथवा आसन लगाने की विधि नहीं, परन्तु इन घातक, बाधक, और पातक शत्रुओं से बचाओ की भी क्या-क्या विधि है ? यह बिना जानकार और होशियार गुरु के प्राप्त नहीं हो सकती।

गुरु कैसा हो ?

गुरुमन्त्र उस गुरु से लिया और सीखा जाता है जिसमें तीन प्रकार की शक्ति-दीक्षा देने की हो। संभाषण दर्शन और स्पर्शन की और जो उपासना के योग्य बना सके।

अपने संभाषण से मन्त्र के शब्दों की केवल शब्द से जानकारी न कराए, अपितु अर्थ की जानकारी करादे। अर्थ का तात्पर्य यहां उल्था नहीं, अपितु पदार्थ Object है, उसे शब्द के स्वरूप के अर्थ का रूप समझा दे यह पहली मञ्जिल मन्त्र दीक्षा कहलाती है।

दूसरी मञ्जिल दर्शन शक्ति-गुरु अपनी दृष्टि द्वारा शिष्य की आंखों में दृष्टि एक करके उसके मन में शब्दार्थ के वास्तविक स्वरूप और भाव को प्रवेश करादे। इसे अग्नि दीक्षा कहते हैं।

तीसरा स्पर्श द्वारा—जैसे Injection किया जाता है। अपने हाथों के स्पर्श से अपनी शक्ति का संचार कर दे यह है देव दीक्षा।

हर एक उपासक को अपनी योग्यतानुसार ही अधिकारी जान दीक्षा मिलती है। एकदम बिना अधिकार के नहीं।

अधिकार कब प्राप्त होता है ?

यम-नियम के पालन से ही अधिकार की योग्यता प्राप्त होती है।

आजकल जप करने वाले लोगों को इसी लिये सफलता नहीं मिलती कि पूर्ण विधि का उनको ज्ञान नहीं होता वरना मनु भगवान् ने जो शीघ्र सफलता लिखी है, वह क्यों सत्य न हो जाती।

प्रभुदेव हमें इस योग्य बनाएं कि हम अपने मानव जीवन का मूल्य समझ और सफल कर सकें।

—०—

छठा अध्याय

परिशिष्ट नं० २

यज्ञोपवीत का रहस्य

[१३-४-५३ को वैदिक भक्ति साधन आश्रम में एक यज्ञोपवित संस्कार हुआ—यज्ञोपवित के रहस्य को मार्मिक और सरल शब्दों में श्री महाराज जी ने प्रगट किया। यह बड़ी गूढ़ फ़िलासफी है। साधारण जन

और आजकल तो पढ़े लिखे भी इस ओर ध्यान नहीं देते। तीन धागों को गले की बला समझ कर या तो धारण नहीं करते या फेंक देते हैं। ऋषियों ने और स्वयं वेद भगवान् ने यज्ञोपवीत धारण को द्विजों के लिये अनिवार्य ठहराया-देखिये यजुर्वेद अध्याय १९ मन्त्र ३१। इस रहस्य को समझने और अपनाने का प्रयत्न करें।]

--सम्पादक

मानव की शिक्षा

मानव की शिक्षा उसके पैदा होने से १६ वर्ष पूर्व आरम्भ होती है। पशु की गर्भ में आने से शुरु होती है। पशु को सीखने में २-४-६-८-१०-१२ मास लगते हैं। मनुष्य को सीखने में १६+७५ ९१ वर्ष लगते हैं। तब मनुष्य की शिक्षा पूर्ण होती है। यदि उस शिक्षा में से कुछ न्यूनता अथवा त्रुटि इस काल में रह गई तो जब तक वह काल पूरा नहीं होगा, वह मनुष्य नहीं बन सकेगा।

मनुष्य के बाद पितर और पितर के बाद देव, फिर ऋषि, फिर साधु बनने की बारी आयेगी, इसके बाद वह सिद्ध हो जायेगा और मुक्त हो जायेगा।

पशु ने केवल अपने पेट के लिए करना है। परमात्मा ने उसको १२ मास में सब कुछ सिखा दिया।

मेष का बच्चा १२ मास, अजा (बकरी) का बच्चा ६ मास, कुक्कुट २-३ मास और पक्षी आदि को जो ज्ञान भोग का चाहिये, वह माता के गर्भ में सीख लेता है। परन्तु मनुष्य के लिये कहा :–

मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद।

माता-पिता का कर्तव्य

माता-पिता वह जो मति दे सके। जो स्वयं बुद्धिमान् नहीं, मूर्ख है, वह क्या मति देगी। अतः आजकल की प्रायः सन्तानें मतिमान् नहीं हो रहीं।

पिता वह जो आज्ञाओं का पालन करना जानता हो और स्वयं करा सके वरना अनाज्ञाकारी सन्तान दुःख का कारण बन जायेगी। यदि पिता आज्ञाओं का पालन कर चुका है तो उसकी सन्तान सम्तान होगी।

साम्य अवस्था को डोलने वाले विषय

आपका अथवा मेरा मन जिस समय साम्य अवस्था में हो आँखें मूंद लें। सब इन्द्रियां सो जायेंगी। परन्तु साम्यावस्था को डांवाडोल करने वाली निम्न पांच चीजों में से कोई न कोई अवश्य होगी।

बच्चा –साम्य अवस्था में पड़ा था–आँखें खोली, माता को देखा, व्याकुल हो गया। जो मन पहले

सौम्य, शान्त पड़ा था, अब अशान्त हो गया। अशान्त करने वाली सबसे पहली चीज़ हुई रूप।

आवाज़ सुनी, माँ ने कहा—राम ! झट उठ बैठा। जो मन निस्तब्ध पड़ा था अब शब्द सुनते ही व्याकुल हो उठा तो दूसरी व्यथित करने वाली वस्तु हुई शब्द।

अब तीसरी अवस्था देखिये। माता ने नहीं पुकारा, पुकारा तो सुना नहीं। माता ने हाथ लगाया। बच्चा जग गया। अब स्पर्श ने जगा दिया।

अपने काम में व्यस्त था, नासिका में सुगन्ध आई, सूजी का हलवा तैयार है तो गन्ध ने मन को हिलाया, उठा कि हलवा खाऊं, डगमगा गया।

चीज़ सामने है, आँख ने देखा खाने की है। जिह्वा पर आई मीठी लगी, मिठास ने मन को हिला दिया।

तो हमने देखा कि हिलाने वाली पांच चीजें हुईं रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द। यही पांच विषय कहलाते हैं। इन पांचों का ज्ञानेन्द्रियों के साथ सम्बन्ध है।

विषयों के गुलाम

ये इन्द्रियां हमारे वश में नहीं आतीं। हमारी इन्द्रियां हमारे वश में नहीं। यह विषयों के पीछे दौड़ती

हैं, हम विषयों के गुलाम बने हुए हैं। जो विषयों के गुलाम हैं, वे स्वाधीन कभी नहीं हो सकते, वे पराधीन ही रहेंगे।

यज्ञोपवीत इस दासता से बचाने के लिये है?

इस दासता और दीनता से बचाने के लिये यज्ञोपवीत की ये तीन तारें हैं।

विषयों का निवास स्थान

विषयों का निवास स्थान भूर्भुवः स्वः लोक हैं। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ लोक में ये विषय रहते हैं।

गुरु का उपदेश

गुरु ने यज्ञोपवीत के बाद जो पहला उपदेश दिया वह था गायत्री का, जो ज्ञानेन्द्रियों से ब्रह्माण्ड के साथ (पिंड को) मिलाने वाला था। यदि ज्ञान इन्द्रियां गुरु के अधीन हो जाएं तो गुरु जो भरेगा वह उसके अन्दर समा जायेगा। संसार के अन्दर जो कुछ है वह गायत्री के अन्दर बन्द है।

संसार में कई काम आसान हैं कई कठिन

(१) जैसे संसार में देखना आसान, मानना कठिन है।

मानना मन का काम है। हज़ारों को मरते देखा पर हम मानते नहीं मौत को– कि हमने भी मरना है।

(२) मैंने सुना—जैसा करोगे वैसा भरोगे— सुनना आसान समझना कठिन है-समझना बुद्धि का काम है।

(३) कहना आसान—करना कठिन है।

दूसरे को मत सताओ, चोरी न करो। यह कहना आसान परन्तु जब अपना मौका आए तो दूसरे को सता ही देंगे और चोरी भी कर लेंगे।

वास्तव में कवि ने ठीक कहा है :—

कहना करना दो हैं भाई। करने की है नेक कमाई।
कहना कह कह जावे थक। करना पहुंचे मंज़िल तक॥

नोट :-कर्ना एक प्रकार का पुष्प भी है जिसकी गन्ध दूर तक जाती है।

(४) खाना आसान -खिलाना कठिन है। खाना जिह्वा का काम है।

(५) रोज़गार छीनना आसान है, रोजगार दिलवाना कठिन है।

गायत्री मन्त्र क्या है ?

यह गायत्री मन्त्र कठिनाइयों को दूर करने वाला है, समस्याओं का समाधान करने वाला है। इसके

अन्दर वह शक्ति है जो सब कुछ करा देती है। जब मनुष्य के अन्दर का कपाट खुल जाता है वह सबकुछ कर देता है और कर सकता है।

हमारे अन्दर दो चीजे हैं, समझने वाली बुद्धि और मानने वाला मन। बुद्धि का बड़ा विकास हुआ, रेडियो बना बुद्धि से, ऐटम बम बना बुद्धि से। वायुयान बना और उड़ा बुद्धि से, परन्तु मन का विकास नहीं हुआ।

हृदय को बनाएं

रक्त दिल से जाता है, दिल सब जगह पहुंचाता है। हृदय न बना तो शरीर में रक्त कैसे जायेगा। अतः अब ज़रूरत है हृदय को बनाया जावे। मस्तिष्क में ज्ञान और हृदय में ज्ञान वाला बसता है।

गायत्री में जो भूर्भुवःस्वः हैं, वे व्याहृतियां हैं। व्याहृति कहते हैं उसको जो व्यापक हो।

भूः=प्राण, भुवः=दुःख विनाशक, स्वः=सुखस्वरूप। ये सब के सब हृदय में हैं, तो परमेश्वर का स्थान हृदय है। बस यदि हमारे हृदय के प्रकाश का विकास नहीं हुआ तो सारा शरीर कमज़ोर होगा। इसलिये सारा संसार कमजोर है।

इसलिये हम उसके पास जायेंगे जो भूर्भुवःस्वः का स्वामी है, वह "सविता" है, जो हमारी बुद्धि को चला रहा है।

यज्ञोपवीत का रहस्य

तो हम क्या समझें और क्या मानें ? ये तीन तारें यज्ञोपवीत की क्या बताती हैं ? एक-एक तार तीन-तीन लड़ (सुत) की है। ये ९ तारें हैं। इस शरीर में ९ द्वार हैं:-२ आंख, २ नाक, २ कान, १मुख, १गुदा, १मूत्र इन्द्रिय। ये ठीक हो जाएं तो सब कुछ ठीक हो जाए।

यज्ञोपवीत के ठहराने के ३ स्थान हैं। पहला बोझा कंधे पर है, दूसरा हृदय पर जहां यज्ञोपवीत को गांठें रहती हैं, तीरसा कटि स्थान पर जहां तक यज्ञोपवीत पहुंचता है।

संसार में काम वही करेगा जिसकी कमर कसी हुई हो, जो सदा कटिबद्ध हो। और फिर वही सफल होगा जो लक्ष्य को सदा याद रखेगा। मार्ग में आने वाली रुकावटों को सामने रखते हुए उनकी शक्ति को अनुभव करके उन पर प्रहार करेगा। तो जब तक दिल न हो, काम कैसे सिद्ध होगा? दिल पर यज्ञोपवीत की

गांठें रहने का भाव यही है कि उलझनों और ग्रन्थियों से सदा सावधान रहना।

मनुष्य के ऊपर ३ प्रकार के बोझ हैं। बोझ का भार कन्धों पर पड़ता है इसीलिये तो विवाह संस्कार में यज्ञ की कार्यवाही आरम्भ होने से पूर्व वरवधू जब यज्ञ कुण्ड की प्रदक्षिणा करते हैं तो वर आगे होता है वधू पीछे। वधू का हाथ वर के कन्धे पर होता है और वधू जबान से यह कहती हुई कि मेरा भार अब तेरे कन्धे पर होगा, आगे बढ़ती है और प्रभु से प्रार्थना करती है,

प्रमे प्रतियानः पन्थाः कल्पता ७
शिवाऽरिष्टा पतिलोकं गमेयम् ॥

तो कन्धे पर तीन तारें रहती हैं वहाँ से ऊपर ज्ञान-इन्द्रियां शुरू होती हैं। ६१ वर्ष के बाद अर्थात् संसार में प्रगट होने के ७५ वर्ष बाद जब मानव देव बन जाता है, संन्यास ग्रहण कर लेता है. तो यज्ञोपवीत की जरूरत नहीं रहती, उतार दिया जाता।

तीन भार–तीन ऋण

तो तीन भार–तीन ऋण कौन से हैं ?

सर्व प्रथम माता–पिता का ऋण है। जो माता पिता का भक्त नहीं, उस पर माता–पिता की छत्रछाया

नहीं रहती। यदि अपने माता-पिता को अपनी सेवा से प्रसन्न किया तो वह सारी आयु सुखी रहेगा।

दूसरा ऋण देवों का है। अन्न, जल,प्राण आदि सब देव हैं। ये दाता हैं सदा देते ही रहते हैं। शारीरिक बल, प्राण बल आदि इन्ही की कृपा से प्राप्त होता है। मनुष्य जितनी वायु खराब करता है उतना वह ऋणी है। मनुष्य श्वाँस से, पसीना से, मलमूत्र से, श्लेष्म से, थूक से, नाक से हर समय वायु को अशुद्ध ही कर रहा होता है और फिर वे जो सिगरेट आदि से वायु को विषैला करते हैं वे तो महान् ऋणी बनते हैं अतः हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम जल को, पृथिवी को, वायु को शुद्ध करें। कैसे करें ? अग्नि देवता है, अग्नि के द्वारा शुद्ध करें। अग्नि में डाली हुई वस्तु-सामग्री-अन्न जल वायु को शुद्ध करती हुई सर्वत्र पहुंच जायगी।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।।गीता३-११।
इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः
।।गीता ३-१२।।

तुम इस यज्ञ से देवताओं को सन्तुष्ट करते रहो और

वे देवता तुम्हें (वर्षा आदि से) सन्तुष्ट करते रहेंगे। इस प्रकार परस्पर एक दूसरे को सन्तुष्ट करते हुये (दोनों) परम श्रेय अर्थात् कल्याण प्राप्त करलो ॥११॥

क्यों कि यज्ञ से सन्तुष्ट होकर देवता लोग तुम्हारे इच्छित भोग तुम्हें देंगे। उन्ही का दिया हुआ उन्हें वापस न देकर जो केवल स्वयं उपभोग करता है, अर्थात् देवताओं से दिये गये अन्न आदि से पञ्चमहा-यज्ञादि द्वारा उन देवताओं का पूजन किये बिना जो व्यक्ति खाता–पीता है, वह सचमुच चोर है। ॥१२॥

यह भाव सिखाता है गुरु। गुरु फिर मिलाता है परमेश्वर से।

समझाने वाला है गुरु ऋषि आदि। जो गुरु से लिया है उसे दूसरे को देंगे यह ऋषिऋण चुकाना है यह तीसरा ऋण है।

मनुष्य का भार सिर पर है पशु का भार पीठ पर है। मज़दूर भार पीठ पर उठाते हैं, पशु का काम करते हैं। जिसकी बुद्धि है उसके सिर पर भार है। हमको माता-पिता ने कन्धें पर उठाया। स्त्री का बोझ जैसा पहले कह चुके हैं, पुरुष के कन्धे पर है। स्त्री का बोझ बड़ा बोझ है। वह पति की सर्व सम्पत्ति की

स्वामिनी है और रक्षा करती है। स्त्री का नाम है धर्म-पत्नी। धर्म तो धन के बिना नहीं होगा।

अब दूसरा है हृदय संसार में तुम्हारा जीवन तीन प्रकार का हो जैसा कि संस्कृत के विद्वान् ने कहा है

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पंडितः।

हमारी आंख पराई स्त्री को माता समान, पराये धन को मिट्टी के ढेले के समान और सर्व प्राणियों को अपने समान देखे।

ये चीजें हैं मानने की। जब मान जाएँ तो समझ लो कि तुम्हारा विकास है।

तीसरी चीज है कटि। कमरकसी रहे। सर्वप्रथम अपने राष्ट्र के लिये, भूमि माता को सदा स्वतन्त्र देखो और रखो। दूसरी कसी रहे अपनी सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के लिये। और तीसरे मातृ भाषा के लिये। जो इन तारों को धारण करके आचरण करेगा वह अमर बन जायगा।

—०—

मन्त्र योग-दूसरा भाग

पहली धारा

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

रोग, निदान और औषधि

संसार में रोग बहुत हैं, उनके प्रतिकार--इलाज भी बहुत हैं। रोगी सब हैं, कोई किसी रोग में ग्रस्त, कोई किसी में ग्रस्त है। उसके लिये यह भी आवश्यक नहीं कि उस वैद्य की औषधि सेवन करे जो स्वयं रोगी रहा हो। वैद्य रोग का निदान कर सके, औषधि बता सके और रोगी से सद्व्यवहार कर सके। परन्तु

आध्यात्मिक रोग

मानसिक, आध्यात्मिक रोग ऐसा है जिसमें सब लोग ग्रस्त हैं और उसका प्रतिकार वही करेगा जो इस रोग से स्वस्थ हो चुका हो, निवृत्त होचुका हो। औषधि

एक ही है। बुद्धिमान् वैद्य वही है जो रोग के कारण कों समूल नष्ट कर दे।

विकारों के कारण

विकारों के कारण केवल पांच ही हैं --

काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार। इन से पृथक्-पृथक् कई प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। मनोवैज्ञानिक और आत्मज्ञ लोग जो इन रोगों से विमुक्त हो गये, उन्होंने कारणों की चिकित्सा की।

चिकित्सा

उनकी चिकित्सा एक ही है। दो चीजें हमारे पास हैं, एक साधना और दूसरी उपासना। साधनाएं अनेक हैं, किन्तु उपासना की विधि एक है उपासक एक प्रकार के और साधक विविध प्रकार के हैं। विविध प्रकार की साधनाओं से मनुष्य का अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा और फिर वह उपासना के योग्य हो सकेगा। साधना पहली वस्तु है जिसका परिणाम अन्तःकरण की शुद्धि है

उपासना चौथी मंजिल है

पहली मंजिल अन्तःकरण की शुद्धि, दूसरी वैराग्य, तीसरी चित्त की एकाग्रता और चौथी उपासना

सना है। जब हमारी तीन मंजिलें तय हो जायेंगी तो हम चौथी मंजिल के योग्य हो जायेंगे।

अन्तःकरण की शुद्धि का अन्तिम अर्थ यह हुआ कि वह राग और द्वेष से शून्य हो जाए, रहित हो जाए जब तक राग है तब तक रोग है और जब तक द्वेष है तब तक क्लेश है अतः अन्तःकरण की शुद्धि तभी होगी जब वह राग और द्वेष से शुद्ध हो जाएगा

अन्तःकरण शुद्ध क्यों नहीं होता?

साधनाओं का अन्तिम परिणाम अन्तःकरण कीं शुद्धि है। अन्तःकरण शुद्ध इसलिए नहीं होता कि उसमें आसक्ति है। साधन से आसक्ति है, साध्य से नहीं। यज्ञ करने वाले को यज्ञ से आसक्ति है। इसे आङ्गल भाषा में अटैचमेंट कहते है जिसके दूसरे अर्थ हैं कुर्की के। यह आसक्ति (attachment) सचमुच दिवालिया कर देती है। 'इदमग्नये इदन्न मम, कहते हुए हमारा मन शुद्ध नहीं होता। क्योंकि हमारा उससे लगाव है।

खारिज करने के दो अर्थ हैं, एक विक्रय कर देना, दूसरे दान कर देना। जैसे कन्या को जामाता के पास दान कर दिया।-कन्या को दे तो दिया परन्तु "तार" आना-जाना बना रहता है। यदि कोई वस्तु विक्रय

कर दी जाए तो चाहे फिर उसे आग लग जाए; कुछ हो जाय विक्रय करने वाले को परवाह नहीं रहती। परन्तु कन्यादान से मनुष्य अपनी जिम्मेदारी से कुछ हलका हो जाता है।

'मैं जप करता हूं, तप करता हूं, इसमें मेरा मम नहीं, अहम् खड़ा हो जाता है। दान और यज्ञ में मेरा मम है तो अन्तःकरण शुद्ध होने में नहीं आता।

भक्ति और उपासना कठिन है

मत कोई समझे कि भक्ति और उपासना सुगम अथवा सुलभ है। इसलिये शास्त्रकारों ने कहा है कि पहले अन्तःकरण को शुद्ध करो, फिर वैराग्य हो जायगा।

बच्चे के हाथ में स्वर्ण मुद्रा है, उसे एक मोदक (लड्डू) दे दो वह स्वर्ण मुद्रा दे देगा परन्तु जब उसे स्वर्ण मुद्रा की पहचान हो जाए, जब उसका मूल्य और महत्त्व उसे मालूम हो जाए, तो चाहे एक के स्थान पर १०० मोदक दे दो वह किसी भी अवस्था में मुद्रा त्याग नहीं करेगा। ऐसे ही परमेश्वर का ज्ञान हो जाने पर साधक परमेश्वर के बदले में संसार के विषयों को कभी स्वीकार नहीं करेगा। जन्म-जन्मान्तर के शुभ संस्कारों के बाद वैराग्य की प्राप्ति होती है

फिर चित्त की एकाग्रता और फिर उपासना होगी। तो उपासना कितनी कठिन है।

मैल कब दूर होती है ?

जो जाप कर रहे हैं वे यह न समझें कि यह भक्ति है। भक्ति से मल विकार दूर होते हैं। हमारे मनों पर तो जन्म-जन्मान्तर की मैल चढ़ी हुई है। यह कैसे दूर हो ? जाप तो ऐसा है जैसा साबुन लगा कर तन्तुओं से मैल उखेड़ना। ऋषियों ने लिखा है कि प्रातः की संध्या से रात्रि के और रात्रि की संध्या से दिन के पाप दूर हो जावेंगे। ये पाप, ये भूलें अथवा त्रुटियां जो अनिवार्य हैं, वे रात्रि और प्रातः की संध्या से छूट जायेंगे। यह रूमाल के समान है जिसको थोड़े से जल से प्रतिदिन अल्प-सा साबुन लगा कर प्रक्षलन किया तो झट साफ हो गया। परन्तु—

जिस कुर्ते को अथवा चादर को मैंने कई दिन शरीर पर ओढ़े रखा, शरीर का पसीना तथा मैल आदि उसमें घुस गया तो वह न तो थोड़े साबुन से और न थोड़े जल के प्रक्षालन से साफ होगी। उसके लिये तो पर्याप्त परिश्रम करना पड़ेगा। काफी साबुन लगेगा। चोले, चादर को थपेड़ना पड़ेगा, पानी भी काफी लगेगा तब

जाकर वह शुद्ध होगा और जिस खेस को ६ मास पर्यन्त मैंने धोया ही नहीं, जिस के तन्तु-तन्तु से अन्दर मैल घुस गई है, वह तो धोबी के खुम्भ (भट्टी) पर चढ़ेगा, आग से तपाया जायगा; और उसे बार-बार मार खानी पड़ेगी छांटना पड़ेगा, तब कहीं जाकर मैल दूर होगी।

परन्तु हमारी और आपकी मैल तो जन्म-जन्मान्तरों की मैल है और प्रति क्षण बढ़ती जा रही है। लगभग दो अरब वर्ष तो बीत गए इस सृष्टि को बने, अब तक तो हम मुक्त नहीं हुए और न जाने कितने जन्म और लगेंगे इस मैल को दूर करने के लिए। मन्त्र-योग का मार्ग तो सुगम है पर मन्जिल बहुत दूर है, बड़ा लम्बा मार्ग है।

उपासना के फल

उपासना एक है परन्तु उसके फल तीन हैं। सर्वप्रथम "दुःखों से दूरी" दूसरे "आनन्द की प्राप्ति" और तीसरे "मुक्ति की उपलब्धि।" जब पाप न करेंगे, पुण्य करेंगे तो पहला और दूसरा फल मिलेगा। मुक्ति तब होगी जब दोनों से ऊपर हो जायेंगे।

गायत्री का महत्त्व

मनुष्य को बाँध रखा है अहंकार और वासना ने। इनकी ग्रन्थी खोलने वाला कोई चाहिए। शास्त्रकारों ने कहा है कि यह ग्रन्थी खुलेगी गायत्री मन्त्र से। इसी में गायत्री का महत्त्व है कि यह अहंकार और वासना की ग्रन्थियों को खोल देता है। परम गुरु परमेश्वर ने मनुष्य के साथ सबसे पहला सम्बन्ध जो जोड़ा वह था शब्द द्वारा। शब्द से अर्थ और ज्ञान की प्राप्ति होती है क्योंकि शब्द में अर्थ और ज्ञान का नित्य का सम्बन्ध है। परमेश्वर ने इसी लिये सर्व प्रथम यही मन्त्र दिया।

"गायतो मुखाद् उदपतति इति गायत्री" गायत्री गाने की चीज़ है। बीमारियों और विकारों को दूर करने के लिये गायत्री को गाया। माता बच्चे को लोरी देकर, घण्टी की ठक ठक करके सुलाती है। तो परमात्मा ने भी गायत्री को गाकर ही अपने प्रिय बालकों को आनन्द दान किया।

गायत्री के अर्थ

गायत्री में दो शब्द हैं "गय" और 'त्र"। "गय" के अर्थ हैं, प्राणों अथवा इन्द्रियों का बल। "त्र" के

अर्थ है रक्षा करने वाला अर्थात् वह मन्त्र जो प्राणों और इन्द्रियों के बल की रक्षा करने वाला हो।

गायत्री के ५ अवसान

गायत्री के पांच अवसान हैं—

१. ओ३म्, २. भूर्भुवः स्वः, ३. तत्सवितुर्वरेण्यं, ४. भर्गो देवस्य धीमहि, ५. धियो यो नः प्रचोदयात्।

मानव के पांच आन्तरिक शत्रु हैं– १. अहंकार, २. मोह, ३. लोभ, ४. क्रोध, ५. काम। यह सब अहंकार की समिति (Cabinet) है। अहंकार मुख्य मन्त्री है, मोह गृहमन्त्री है, लोभ अर्थमन्त्री है, क्रोध विदेश मन्त्री है और काम प्रान्तीय शासन मन्त्री। यह समिति पराजित की जा सकती है यदि गायत्री के इन पांच अवसानों के स्वरूप को समझ कर उनकी उपासना की जाय। अर्थात् "ओ३म्" के स्वरूप को जानकर उपासना करने से अहंकार को विलीन किया जा सकता है। "भूर्भुवः स्वः" इन तीन व्याहृतियों के स्वरूप को जानकर उपासना करने से मोह को सार्वजनिक प्रेम में परिवर्तित किया जा सकता है। इसी प्रकार "तत्सवितुर्वरेण्यं" के स्वरूप को जानकर उपासना करने से लोभ का, जो पाप का बाप है, दुर्ग भस्मसात् किया जा सकता है। त्रिशूलधारी क्रोध पर "भर्गो-

देवस्य धीमहि' के स्वरूप को जानकर उपासना करने से जो प्रहार होगा उससे वह क्रोध नीचा हो जाएगा अर्थात् समाप्त हो जाएगा। 'काम" बुद्धि को अपने आवरण से आच्छादित कर देता है, इस आच्छादन को धियो यो नः प्रचोदयात्" के स्वरूप को जानकर उपासना करने से हटाया जा सकता है। मानो एक पूर्ण गायत्री मन्त्र द्वारा उपासना करने से इन पांचो आन्तरीय शत्रुओं पर विजय प्राप्त होकर मानव निरभिमान, निर्मोही, सन्तुष्ट, शांत और जितेन्द्रिय बन जाता है।

परमात्मा निराकार है, वहां इन्द्रियों की रसाई नहीं। बुद्धि उसके पवित्र दरबार तक पहुंचा सकती है अतः सर्वप्रथम "धियों यो नः प्रचोदयात्" के स्वरूप को जाना जाए ताकि हमारी बुद्धि इस योग्य हो जाए कि हमारा भगवान् के दरबार में बैठना स्वीकार हो जाए।

अध्यात्म मार्ग बड़ा कठिन है। साधना के लिए जन्म-जन्मातर चाहियें। हम यदि इस जन्म में एक वृत्ति को भी बदल सकें तो हमारा जीवन सफल हो गया समझो।

दूसरी धारा

गायत्री में परमेश्वर का स्वरूप

गायत्री में २४ अक्षर हैं, संसार में २४ विद्यायें हैं और संसार २४ तत्त्वों का बना हुआ है। "यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे" यह लोकोक्ति है। जो ब्रह्माण्ड में है वही पिण्ड में है। संसार २४ तत्त्वों से बना है तो हमारा शरीर भी २४ तत्त्वों का बना हुआ है अतः हमारा गायत्री के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है।

अन्तःकरण शुद्ध क्यों नहीं होता ?

नित्य प्रति जो अपने इष्ट का दर्शन करे और उसका अन्तःकरण शुद्ध न हो तो इसका यह अर्थ है कि उसका इष्ट नहीं है। जड़ बुद्धि से की हुई परमेश्वर की उपासना में उसे चेतन परमेश्वर आशीर्वाद नहीं देता और जो चेतन बुद्धि से जड़ की उपासना करता है, उसको मूर्त्ति अथवा जड़ उपास्य देव आशीर्वाद नहीं दे सकता।

स्वांग करने वाले

हमने मूर्ति ही नहीं बनाई अपितु चेतन को भी

मूर्ति बना लिया। राम बनाया, कृष्ण बनाया। राम-लीला अथवा जन्माष्टमी के समय हम लोगों ने चेतन जीव को जो बोलने वाला है उसको राम बना दिया अथवा कृष्ण बना दिया। ऐसे स्वांग रचने वाले को महर्षि ने लिखा दश सहस्र ब्रह्महत्या का पाप लगता है।

यदि हमको भगवान् बनाने की शक्ति है तो भगवान् तो हमें नहीं बना सकता। यह हमारी भूल है। अब उस भूल को निकालने के लिये मैं निवेदन करता हूं, दिखा तो नहीं सकता। जब देवता और ऋषि आदि भी न दिखा सके। अपितु मैं उसका वर्णन करूंगा।

५७ वर्ष ६ महीने तक इस गायत्री का निरन्तर जाप करते हुए जो मैंने धीरे-धीरे अनुभव किया और नवरात्रों में मैंने इस गायत्री का नया अनुभव किया। अनन्त ज्ञान, और अनन्त ब्रह्म है। एक अल्प जीव उस अनन्त ब्रह्म को कैसे पा सकता है।

ज्ञान का लाभ

उस ज्ञान का लाभ यह है कि उससे प्रभु चरणों में विश्वास बढ़ता और श्रद्धा उपजती है और इससे पवित्रता और सरलता आती है, सूर्य और चन्द्रमा जो

इतने पवित्र हैं उनको भी ग्रहण लग जाता है तो मनुष्य को पूर्ण ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है ? हमें तो उदर पूर्ति के लिये पाव भर अन्न अथवा जितनी मात्रा से पूर्ति हो सके पर्याप्त है। इसी प्रकार जितनी मात्रा में पवित्रता और ज्ञान से हमारी शांति हो जाए, वह पर्याप्त है। अब विस्तार से सुनिए---

शरीर, प्राण और आत्मा

जप में शब्द शरीर है, अर्थ प्राण है और भाव आत्मा है। इसलिये शास्त्रकारों ने कहा है 'तज्जपस्तदर्थ-भावनम्।' भाव न रहे तो प्राण रह जाता है। वह पर्वत समान बन जाता है। जो लोग भाव रहित अर्थ को जानते हुए उसका जप करते हैं उनको सांसारिक व्यावहारिक सिद्धि होना तो सम्भव है और जो अर्थ भी नहीं जनते वे प्रायः मृत समान हैं। जड़ वस्तु भी काम आती है, जिस अंग को मैं अनजाने घुमाता हूं उसके अन्दर शक्ति जरूर आयेगी। जो ऐसे जाप करते हैं उनकों आसुरी शक्ति मिलेगी।

मन्त्र का देवता

प्रत्येक मन्त्र का अपना-अपना देवता है, केवल इस मन्त्र का ही नहीं। पृथिवी का देवता है, अन्तरिक्ष का

भी देवता है। भूलोक का देवता अग्नि है, 'भूरग्नये प्राणाय स्वाहा", भुववायवेऽपानाय स्वाहा" –अन्तरिक्ष का देवता वायु है, द्युलोक का आदित्य देवता है। यजुर्वेद में पशुओं और पक्षियों का देवता जुदा-जुदा बताया गया है। देवता वह है जो अपनी शक्ति तथा दिव्य गुण अपने उपासक को दे।

हमारे शरीर में देवता आत्मा है। मेरी आँख का देवता सूर्य है, यदि आत्मा उसका देवता होता तो अन्धा भी देख सकता। मेरे कान का देवता आकाश है, यदि आत्मा होता तो बधिर भी सुन सकता इत्यादि।

अब देवता को समझना है। अब इस मन्त्र का ऋषि विश्वामित्र, छिन्द गायत्री और देवता सविता हैं। जब दोनों चेतन, आत्मा और परमात्मा एक हो जाएं, तब समझें कि जाप का प्रभाव पड़ गया, यदि मेरे कान और जिह्वा (वाणी) एक हो जायें तो मेरे मन और बुद्धि एक हो जाएंगे।

सविता के अर्थ : सविता के अर्थ बहुत हैं, कम से कम ३० अर्थ तो मैं बता सकता हूं। सविता का अर्थ है पैदा करने वाला, स्वामी, उसका ज्ञान रखने वाला, बिगड़ी को संवारने वाला, अन्तर्यामी। वह सविता मुरम्मत भी कर सकता है बिगड़ी को संवार

भी सकता है। इसलिये हम देखेंगे कि यह केवल ब्रह्मांड का देवता नहीं, प्रत्युत मन्त्र का देवता है, हमारी बुद्धियों का देवता है और मेरा भी देवता है। सर्व संसार के प्राणियों में बुद्धि है, मैं उनसे सम्बन्ध जोड़ सकता हूं। क्योंकि जो देवता मेरी बुद्धि का है वही अन्य प्राणियों की बुद्धि का भी है।

जैसे कल्पना करो मेरे घर टैलीफोन लगा हुआ है और सब के घर में भी लगा हुआ है। टैलीफोन पर बात करने से पहले मैं कन्ट्रोलर को बुलाऊंगा —तो सविता का अर्थ है कंट्रोलर (Controller)। मैं आप से बात करना चाहता हूं, आपके टैलीफोन का नम्बर है २५३। मैंने कंट्रोलर (Controller) को कहा २५३। कंट्रोलर ने आप के टैलीफोन के साथ सम्बन्ध जोड़ दिया आप की घन्टी बज गई। इसका नाम है "धियो यो नः प्रचोदयात्" अर्थात् प्रेरणा। आपकी बुद्धि में प्रेरणा हो गई। आप को घण्टी (प्रेरणा) के द्वारा सूचना मिल गई। सूचना मिलते ही आप ने यन्त्र उठाया, कान से लगाया और टेलीफोन मुख यन्त्र (mouth piece) को मुख से लगा कर बोले, "हैलो ! कौन साहब हैं; कहां से बोल रहे हैं" ? यदि मेरे परिचित हैं तो आप मेरी वाणी को पहिचान जायेंगे। अब

कंट्रोलर मध्य से हट गया और हम एक दूसरे से बात-चीत करने लगे।

परमात्मा ने सूर्य को सविता बनाया। सूर्य की किरणें अनेक हैं। कहीं उसकी किरणें सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाश दे रही हैं। कहीं रंगत दे रही हैं, कहीं तपा रही हैं और कहीं पका रही हैं। एक ही समय में सब काम सूर्य करता है। तो सूर्य का भी सविता उत्पादक, प्रेरक, परमात्मा एक ही समय में सब काम करता है, शासन भी करता है संहार भी करता है, उत्पादन भी, तपाना—कर्मफल देना और पकाना भी। वह सर्व-शक्तिमान है। कभी-कभी अपनी सर्वशक्तिमत्ता का परिचय भी दे देता है कि जीव भ्रमित न हो जावें। आज्ञा की चुपके-चुपके वायु, बन्द हो जाए। पवन बन्द हो गया, थम गया, ग्रीष्म ऋतु थी।

बम्बई से कलकत्ता तक, कुमारी अन्तरीप से नेपाल तक—हिमालय की ऊंची से ऊंची शिखर तक पवन बन्द हो गया। एक पत्ता तक भी न हिला। रात्रिभर वायु न चली, हाहाकार मच गया, अत्यन्त गरमी हुई, निद्रा न आई। प्रातः को समाचार-पत्रों में छपा, रात्रि भर वायु की गति बन्द रही, सारे देश में एक कुहराम सा मच गया। प्रभु की लीला बड़ी विचित्र है, वह

कैसा जबरदस्त शासक है। इस एक क्रिया से भगवान् ने सर्वसाधारण को, आस्तिकों को, नास्तिकों को एक शिक्षा दी—अपनी शक्ति का परिचय दिया। नास्तिकों को चेतावनी दी ! कि सावधान हो जाओ, अनुभव करो और मानो कि कोई ऐसी शक्ति है जो जगत् पर शासन कर रही है और जो पवन से भी सूक्ष्म है, जो उसे भी बन्द कर देती है। आस्तिकों को सूचना दी कि "आस्तिको ! विश्वास करो, ब्रह्मांड का रचियता देखो ! क्या कुछ कर दिखाता है।"

चार प्रकार के योग

योग चार प्रकार का है (१) हठ योग, (२) लय-योग, ३ राज-योग और (४) मन्त्र-योग।

योग से सिद्धि प्राप्त होती है। कइयों को जन्म से, कइयों को औषधि से, कइयों को मन्त्र से, तप से अथवा समाधि से प्राप्त होती है। महर्षि पतंजलि अपने योग-दर्शन में लिखते हैं :—

जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः॥

योग—४। १

अर्थात् जन्म से होने वाली, औषधि से होने वाली, मन्त्र से होने वाली, तप से होने वाली और समाधि से होने वाली—ऐसे पांच प्रकार की सिद्धियां होती हैं।

व्याख्या—जन्म से होने वाली सिद्धि—जब प्रा

मर कर एक योनि से दूसरी योनि में जाता है तब उसके प्रारब्ध कर्मानुसार उसके शरीर और इन्द्रियों में अपूर्व प्रकार की शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। जैसे कपिल, वेदव्यास, कबीर, नानकादि महानुभावों को जन्म से ही कई सिद्धियाँ प्राप्त थीं।

(२) औषधि से होने वाली सिद्धि—जब मनुष्य किसी औषधि के सेवन से अपने शरीर का कायाकल्प कर लेता है, तब उसके शरीर के अनेकों मल विकार दग्ध हो शरीर में अपूर्व शक्तियों का सञ्चार तथा प्रादुर्भाव हो जाता है जैसे सोम याग से प्रजा राजा की बुद्धि को और राजा लोग प्रजा की बुद्धि को अपने अनुकूल बना लेते थे। 'अकरकरहा' को मुख में रख लो, अग्नि फको, मुख नहीं जलेगा।

चूल्हे के नीचे डाल दो, ताप नहीं लगेगा। कई लोग जिनकी हलवाइयों से शत्रुता होती है तो चुपके से इसी अकरकरहा को उनके चूल्हे में डाल देते हैं, वे बेचारे मनों लकड़ी जलाते हैं, परन्तु सेंक नहीं लगता कढ़ाई ठण्डी की ठण्डी रह जाती है।

(३) मन्त्र से होने वाली सिद्धि—जब मनुष्य विलक्षण सामर्थ्य प्राप्त करने के लिये किसी मन्त्र का विधिवत् अनुष्ठान करता है तब उसके चित्त, शरीर

और इन्द्रियों में विलक्षण शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है, इसे मन्त्रजा सिद्धि कहते हैं। जैसे श्री स्वामी विरजानन्द जी तथा उनके परम सुयोग्य शिष्य श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ने गायत्री जाप द्वारा सिद्धि प्राप्त की। (विस्तार से इसके सम्बन्ध में जानना हो तो "मन्त्रयोग" के दोनों भागों का आद्योपान्त स्वाध्याय करें।)

(४) जब मनुष्य शास्त्रोक्त तप का विधिवत् अनुष्ठान करता है, अथवा अपने कर्त्तव्य पालन करने में भीषण से भीषण कष्ट को सहर्ष सहता और धर्म का परित्याग नहीं करता, तब उसके चित्त, शरीर और इद्रियों में अलौकिक आभा आ जाती है, जिसको "तपजा" सिद्धि कहते हैं। जैसे महात्मा बुद्ध ने ६ वर्ष घोर तप करके सिद्धि प्राप्त की।

भगवान् राम ने १४ वर्ष पिता की आज्ञा का पालन करने में वनवास में कितने कठोर और भयंकर कष्ट सहे परन्तु अवज्ञाकारी नहीं बने, भारद्वाज और विश्वामित्र आदि ने तप से सिद्धि प्राप्त की।

(५) समाधि--

समाधि के पूर्व दो अंग

"भर्गोदेवस्य धीमहि" में धीमहि के अर्थ हैं ध्यान

करें अथवा धारण करें। तो समाधि के पूर्व वाले दो अंग धारणा और ध्यान इस मन्त्र में आ जाते हैं।

"तत्सवितुर्वरेण्यं" के प्रदर्शित भावानुसार उसको वर लें तो समाधि आ जायगी। तो यह मन्त्र योग सुगम है।

सविता का अर्थ

अब पुनः सविता का अर्थ करता हूं। 'स' से सूक्ष्म 'व' से शून्य और 'त' से रक्षा करने वाला। सूक्ष्म से शून्य, अवस्था में रक्षा करने वाला—यह अर्थ हैं सविता के। संसार की कोई भाषा ऐसा अर्थ नहीं कर सकती। गर्भ के कष्ट से छुड़ाने वाला और गर्भ में ले जाने वाला भी इसके अर्थ हैं।

यदि देवता इस मन्त्र के अन्दर समाया हुआ है तो मन्त्र भी गर्भ से छुड़ा देगा। स्वयं वेद भगवान् इसकी साक्षी देता है :—

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्म-वर्चसं मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

अथर्व—१९-७१-१।

तो यह मन्त्र स्पष्टतया संसार के झंझट जाल से छुड़ा ब्रह्मलोक तक पहुंचा देता है।

सविता का और अर्थ है कर्म फल दाता। यह कर्म से हमको बांधकर ले आता है। वेद ने कहा, सुषुम्णा किरण जीव के साथ रहती है।" जब जीव शरीरों को छोड़ के विद्युत, सूर्य के प्रकाश और वायु आदि को प्राप्त होकर जाते हैं और गर्भ में प्रवेश करते हैं तब किरण उनको छोड़ देती है।" यजु० ३५–३ ॥

हम अपना सम्बन्ध उस सविता के साथ जाग्रत में, स्वप्न में, शून्य अवस्था में ज़ोड़ दें। जिसका मैं उपासक हूं वही मेरा बनाने वाला, वही मेरा स्वामी, वही बिगड़ी को संवारने वाला है। जिसकी बुद्धि सुधर गई उसका सब संसार सुधर गया। जिसकी बुद्धि बिगड़ गई उसका संसार बिगड़ गया। माता बच्चे को संकेत करती है, प्रेरणा करती है, माता के संकेत को समझने वाले की प्रशंसा से माता की प्रशंसा है।

समझ बुद्धि में आयेगी।

अब सविता को हम सम्भालें। ऐसा सम्भालें जैसे आत्मा को इन्द्रियों ने सम्भाला हुआ है। सब इन्द्रियां आत्मा का काम करती हैं। यह आत्मा आंख में, कान में, वाणी में सब में समाया हुआ है। अब बताऊंगा यह सविता भूः, भुवः, स्वः आदि में समाकर क्या काम कर रहा है।

तीसरी धारा

सूक्ष्म से शून्य अवस्था में रक्षा करने वाला देवता को जान लेने का फल

देवता के जान लेने से मन्त्र सार्थक हो जाता है। कि किस लिये यह मन्त्र है। क्या उसका फल है।

इस मन्त्र का देवता सविता है। सविता देव ही गर्भ में लाता और गर्भ के बन्धन से छुड़ाता है। कर्म फल देना और मुक्ति देना यह काम सविता देव ही करता है। गायत्री मन्त्र दोनों काम करता है।

व्याहृतियां लगा देने पर यह मन्त्र भक्ति का प्रधानमन्त्र बन जाता है। "तत्सवितुर्बरेण्यं" से आरम्भ मन्त्र भक्ति का मन्त्र नहीं बनता। वह तत् कौन है, यह जान सकें उसके लिये व्याहृतियां लगा दीं और उसके साथ सिर लगाया "ओ३म्"।

गायत्री का सिर

सिर का चित्र लेने से ही मानव के नाम, काम, धाम सबका ज्ञान हो सकता है, ऐसे "ओ३म्" के ध्यान से ही परमात्मा के नाम, काम, धाम, का ज्ञान

हो सकता है। वैसे परमात्मा के तो अनन्त नाम हैं। विष्टा भी परमेश्वर का नाम है, मूत्र भी परमेश्वर का नाम है। मूत्र का अर्थ है दुःख से तराने वाला-रक्षा करने वाला, बचाने वाला। मूत्र बन्द हो जाये तो पता लग जाए। विष्टा-विष के दूर करने वाले का नाम विष्टा है। गुदा क्या है ? विष्टा को दूर करती है। हस्त भी परमेश्वर का नाम है, पाद भी परमेश्वर का नाम है। उसका निज नाम ओ३म् है।

निरादर मत करो

किसी भी चीज़ का निरादर न करना चाहिये और न ही किसी वस्तु का तथा पदार्थ का निरादर करना चाहिये। जब यह याद हो जाये कि "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" तो कभी निरादर हो नहीं सकता। आदित्य ब्रह्मचारी ऋषिदयानन्द ने नन्ही बालिका के आगे सिर झुका दिया, उनको समझ आ गई कि यह मातृ शक्ति है जिसने राम, कृष्ण और हनुमान को पैदा किया।

इसलिये महर्षि दयानन्द महाराज ने लिखा "सब सत्य विद्या और विद्या से जो पदार्थ जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर।" जगन्नाथ विष देने वाले को क्षमा कर दिया, "यह लो १५) रु०

मार्ग व्यय, निकल जा, नहीं तो पकड़ा जायेगा।" जब तक सृष्टि रहेगी ! उनकी महत्ता, उनका बड़प्पन. उनकी उदारता स्थिर रहेगी। दिए तो १५)रु० परन्तु उनकी भावना उनको पुजवा रही है।

इसलिए गायत्री मन्त्र के साथ "ओ३म्" लगाओ। "ओ३म्" सिर है। नाम और काम तो परमेश्वर के अनन्त हैं परन्तु निज नाम एक है और वह "ओ३म्" है।

विद्वानों ने "ओ३म्" के १९ अर्थ किये हैं हम तो केवल एक अर्थ याद रखें, 'रक्षा करने वाला।" हमें यही चाहिये।

वह रक्षा किसकी करे ? बल हीन की। सब प्राणी बलहीन हैं, कोई शरीर में कमज़ोर कोई बल में कमज़ोर ज्ञान में सभी कमज़ोर हैं।

रक्षा दो प्रकार से

इसलिये परमेश्वर 'ओ३म्" नाम वाला हमारा रक्षक है। पर रक्षा एक तो सामान्य रूप से और दूसरा विशेष रूप से करता है।

ओ३म् का महत्त्व

ओ३म् "अव्" धातु से बना है जिसके अर्थ रक्षा के हैं। अव के अर्थ नीचे के भी हैं। भक्त को नीचे गिरने

से ओ३म् रक्षा करेगा। भक्त चाहता है मेरी रक्षा पाप से हो। ओ३म् में अ है, अ गुप्त रूप से सब अक्षरों में विद्यमान हैं। बच्चा नौ मास गर्भ में रहा, बोला ही नहीं परन्तु गर्भ से निकलते ही जब ऊं आं-ऊं आ न बोले तो सबको भय लग जावे। तो ऊं क्या हुआ–जिन्दगी और जीवन हुआ। ऊं का न होना मृत्यु। वेद कहता है–

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
यजु० अ० २५। म० १३॥

अर्थात्-ओ३म् ही आत्मिक, शारीरिक और मानसिक बल का दाता है। ओ३म् की ही सब विद्वान् लोग उपासना करते हैं और उसके न्याय, नियम और शासन को मानते हैं। ओ३म् का आश्रय लेना अर्थात् उसकी छत्रछाया में आना अमृत सुख को लेना है। अक्षय, अविनाशी सुख अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होना है। उससे विपरीत अथवा विमुख होना मृत्यु आदि महान् दुःखों का कारण है। ओ३म् को जो लोग नहीं मानते उनकी मृत्यु ही है। ओ३म् को उल्टा दी तो मूआ (मृत) बन जावेगा। मुसलमानों का खुदा है अल्लाह है। उलटा करें तो हल्ला (शोर) बन जावेगा अतः जो मुसलमान अल्लाह को नहीं पूजते वे सदा

उदण्डता-हल्ला मचाया करते हैं। गॉड (God) का उल्टा डॉग (Dog) है, (God) गॉड परमात्मा, (Dog) डॉग कुत्ता है। जो ईसाई गोड की इबादत (उपासना) नहीं करते, वे कुत्तों से प्यार करते हैं। उलटे काम करते हैं। 'अ' अक्षर बेलगाम है। क्' में मिलकर 'क' बनकर उसका काम तो कर देता है पर अपने को प्रकट नहीं करता 'क्' में जान अथवा प्राण डाल देता है तो 'अ' भूः है।

भूः का महत्व

भूः का अर्थ है प्राण, प्राण के बल के बिना न जड़ चल सके और न चेतन। न साईकल चले और न मोटर। मनुष्य का डाला हुआ प्राण अकड़ा देता है जैसे मोटर का पहिया, फुटबाल आदि; परन्तु परमेश्वर का प्राण डाला हुआ नम्र बना देता है। मनुष्य का डाला हुआ प्राण निकल जावे तो वस्तु ढीली हो जावे। और परमेश्वर का डाला हुआ निकल जावे तो वस्तु अकड़ जाये। फुटबाल अथवा मोटर साईकल के पहिये में छिद्र हो जाये तो प्राण निकल जायें परन्तु परमेश्वर का डाला हुआ प्राण शरीर के नौ छिद्रों के खुले रहने पर भी बाहर नहीं निकलता। जो संसार में निर् प्राण हैं वे उस प्राणदाता के आधार से निकल गये हैं, वे अकड़ गये हैं। कपड़े को माया लगा दें तो अकड़

जावेगा। तो संसार में अकड़ा देने वाली और भगवान् से नास्तिक बनाने वाली चीज़ माया है। इसलिये जीवनाधार को कभी न भूलो नहीं तो शव के समान अकड़ जाओगे और शमशान की अग्नि के भेंट किये जाओगे।

'भूः' का अर्थ हुआ प्राणाधार परन्तु प्राणाधार और भी हैं। प्राण की रक्षा के लिए हमें अन्न चाहिए। अन्न पृथ्वी से पैदा होगा अतः 'भूः' का अर्थ पृथ्वी भी है।

पर पृथ्वी का दिया हुआ अन्न, फल किसके आधार बनेगा, जिसके कर्म होंगे। तो 'भूः' का अर्थ है 'कर्म'।

इस 'भूः' के कितने अर्थ हैं और इस भूः' में सविता देव समा कर काम क्या करता है। जिस प्रकार शरीर में व्यापक आत्मा की इतनी शक्ति है कि कान में सुनने का, आँख में देखने का काम करती है; इसी प्रकार गायत्री के सात शब्दों 'भूः, भुवः, स्वः, सवितः, वरुण, भर्गः और देव', में सविता देव प्राण, दान, दुःख हरण, सुख दान गुप्त प्रेरणा, न्यायाधीश, पथप्रदर्शन और दाता का काम करता है। विस्तार से सुनिए :

१- खुरासान में भगी (भगदड़) पड़ गई। एक

हिन्दू वहां से दौड़ गया। उसको मारने के लिए पठान दौड़े। कद्दू की लता में वह छिप गया और वे आगे बढ़ गए। इस कद्दू की लता ने हमारे पूर्वजों को बचाया था, इस लिए तनेजा लोग कद्दू नहीं खाते उसके मान के लिए।

२- दिल्ली की गलियों में एक पागल फिर रहा था। गली के बच्चे उसके पीछे हो लिए, तालियां बजाते हू-हू करते उसे शहर से बाहर कर दिया। पागल ने कुतुब साहब की लाठ की ओर मुख कर लिया। कुछ दूर तक बच्चे भी उसके पीछे-२ चले गये। शनैः-शनैः सब बच्चे अपने-अपने घर को लौट गये परन्तु एक बच्चा धुन के साथ उसके पीछे-पीछे हो लिया। वह पागल लाठ पर चढ़ गया। बच्चा भी उसके पीछे तीन मंजिल तक चढ़ गया। बच्चे ने देखा मेरे साथ कोई साथी नहीं है पागल ने बच्चे को पकड़ लिया, बच्चे के प्राण खुश्क होने लगे। पागल ने बच्चे से कहा—"तुम्हें नीचे फैंकता हूं" और करीब था कि बच्चे को नीचे फैंक देता, परन्तु जिसके भगवान् हों रखवाले उसको कौन हैं मारने वाले। बच्चे को सूझ आ गई, झट कहा, 'ऊपर से नीचे छलांग लगाना भी कोई बहादुरी है, वीरता तो यह है कि नीचे से छलांग

मारे और उपर आ पड़े। पागल ने झट कहा "क्या तुम्हें ऐसी छलांग लगाना आता है" ? बच्चे ने कहा, "हाँ" देखो अभी छलांग लगाता हूं और तुम्हारे पास आता हूं।" पागल ने कहा "अच्छा लगाओ।" बच्चा झट नीचे उतरा और पागल वहां बच्चे की छलांग की प्रतीक्षा में खड़ा रहा। नीचे उतरते ही बच्चे ने ऐसी दौड़ लगाई कि घर जा पहुंचा और जो बच्चे अभी गलियों में फिर रहे थे उनसे अपनी बुद्धिमत्ता की डींगें मारने लगा कि किस तरह मैं, बचकर आ गया हूं परन्तु वास्तव में वह सविता देव 'भूः' बनकर बच्चे की बुद्धि में प्रविष्ट हुआ और उसने बच्चे की जान बचाई।

३- एक समय की बात है। सिन्धु नदी में एक बरात नौका में जा रही थी, नौका डूबने लगी। बरात डूब गई परन्तु एक शिशु नौका के तख्ते पर पड़ा बहता चला जा रहा था, तीन दिन और तीन रात तख्ते पर बहता चलता रहा। सर्वरक्षक-प्रभु भूःरूप में उसके पास रहा, नदी के किसी जन्तु ने, धूप ताप आदि ने अथवा भूख प्यास ने उसे नहीं सताया, वह अंगूठा चूसता रहा। वह प्राणाधार स्वयं भूः बनकर बालक की रक्षा करता रहा, किसी जीव जन्तु को उसे कष्ट देने की आज्ञा न थी और न ही धूप का ताप उसे व्याकुल कर सका।

अंगूठा चूसते रहने से भूख भी उसे सता न सकी। जामपुर नगर के नीचे दरिया बह रहा था, एक धोबी कपड़े धो रहा था उसने बच्चे को बहता हुआ देखा, उसके सन्तान नहीं थीं, उसने बच्चे को उठा लिया और घर जाकर अपनी पत्नी को दिया। पत्नी बहुत खुश हुई उसने उसको अपने बच्चे की तरह पाला। जितनी आयु उसकी थी, परमेश्वर उसका जिम्मेदार था।

४- कैप्टिन देवकीनन्दन (आचार्य जी के नज़दीक के सम्बन्धी) दूसरे महायुद्ध में बर्मा में फौज के साथ थे। शत्रु की सेना समीप आ पहुंची। कमाण्डर ने आज्ञा दी, भागो। एक मोटर साइकल पड़ा था कैप्टिन देवकीनन्दन और एक व्यक्ति झट उसपर सवार हो गए और उस को चला दिया। मोटर साइकल चल पड़ी और वे दूर निकल गये। शत्रु की फौज से तो बचे, पर आगे एक चट्टान आ गई मोटर साइकल को बन्द करना देवकीनन्दन को न आता था। आगे मार्ग की रुकावट देख कर घबरा गये। साइकल पर चिल्ला कर हाथ मारा और कहा—अब मरे। देवकीनन्दन गायत्री का उपासक था, भगवान् की अद्भुत लीला। हाथ एकदम उसी स्विच पर पड़ा जिस से मोटर साइकल एकदम ठहर गई और दोनों सवार सुरक्षित नीचे उतर आए।

५- शोरकोट स्टेशन पर आधी रात को गाड़ी से एक देवी उतरी जो भूषणों से लदी हुई थी। एक ट्रङ्क वस्त्रों और आभूषणों का साथ था। एक बच्चा बगल में था। शोरकोट स्टेशन से बारह लील दूर है। देवी के घर वाले शायद समय पर सूचना न मिलने से स्टेशन पर न पहुंच सके। देवी ने टांगा किराया पर किया और शोरकोट रवाना हो गई। अकेली सवारी थी। टांगे वाले ने देवी के सामान और आभूषणों को भांप लिया था। नियत बदल गई, सड़क से टांगा दूसरी तरफ ले जाने लगा। देवी ने पूछा - इधर कहां जाते हो ? कहा—इधर शोरकोट है इधर से जल्दी पहुंचेंगे। जंगल में थोड़ी दूर जाकर टांगे को खड़ा कर दिया और नीचे उतर कर लड़के को छांटा मारा इस विचार से कि देवी को लड़का प्यारा है, उसको बचाने के लिए वह सब कुछ छोड़ देगी। देवी ने साहस किया छांटा छीन लिया। बच्चे को नीचे रख दिया और मुकाबला करने लगी। वह दौड़ा जान बचाने के लिए। पत्थर पड़ा हुआ था, पत्थर उठाने लगा। पत्थर के नीचे से एक सर्प ने शूं किया, टांगों से जकड़ लिया और अब टांगे वाला एक तरफ सर्प से जकड़ा खड़ा है दूसरी तरफ देवी छांटा लिए खड़ी है, बच्चा भूमि पर

पड़ा है। इस अवस्था में कुछ समय बीता, प्रातः काल हो गई, तहसीलदार शोरकोट उधर से गुज़रा। उसने जब यह दृश्य देखा तो सर्प कोचवान को छोड़कर बिल में घुस गया। देवी के वृत्तान्त सुनाने पर टाँगे वाले को पकड़ लिया और देवी को घर पहुंचा दिया। यह है प्राण की रक्षा। भगवान् की क्या विचित्र लीला बनी कि सर्प को कोचवान को केवल जकड़ रखने की ही आज्ञा थी, डंक मारने की नहीं।

६ - प्राण के साधन की रक्षा कैसे करता है यह शेख सादी ने लिखा है। ज़ंगल में एक लंगड़ी लोमड़ी पड़ी है--कहा कि भगवान् तू जो प्रजापति है यह कहां से खाएगी। बैठ गया परमेश्वर की परीक्षा करने। देखा कि एक सिंह ने मांस के बड़े टुकड़े को लाकर लोमड़ी के सामने रख दिया और वह खाने लग गई-कहने लगा, 'वाह भगवान्! तेरी लीला! सिंह अपने पेट से निकाल कर लोमड़ी को ला दे!

कहा--अभी कमी है। अन्न तो खा लिया। जल कैसे पीयेगी? छमा-छम वर्षा हो गई। गढ़ा भर गया। लोमड़ी ने जल-पान किया।

देखो भाइयो! वह प्राण रक्षक भूः किस प्रकार प्राणों के साधनों की रक्षा करता है अन्न और जल

प्राण के साधनों को कैसे प्रस्तुत किया। वाह भगवान्! आप धन्य हो !

हमारा यदि विश्वास हो जाए तो मन टिक जाए।

—०—

चौथी धारा

प्रभु चरणों में अनुराग, पूर्व कर्मों का फल

परमेश्वर में प्रीति करने के अनेक साधन हैं। परन्तु यह याद रखो कि प्रभु चरणों में अनुराग और प्रीति सब के भाग्य में नहीं, गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

प्रभु नाम अमूल्य है जो दाम बिना बिकाए।
तुलसी अचरज देखिए, गाहक कोई न आए॥

भाई ! प्रभु का नाम अमूल्य भी है और मिलता भी बिना दाम के है परन्तु आश्चर्य तो यह है कि इस सौदे का ग्राहक कोई नहीं। सत्सङ्ग लगा हुआ हो, वेद कथा हो रही हो तो उपस्थिति इने-गिने व्यक्तियों की होगी परन्तु खेल तमाशा हो, रास लीला हो रही हो, स्त्री के वेष में कोई नटिया नाच और गा रही हो, सहस्रों इकट्ठे हो जायेंगे। पैसे भी देंगे, रात्रि का विश्राम भी बरबाद करेंगे, वहां तो जायेंगे अवश्य

परन्तु हरि चर्चा में कोई विरला ही शामिल होगा। कारण भी श्री गोस्वामी जी ने स्वयं ही बता दिया—

तुलसी पूर्व पाप सो हरि चर्चा न सुहाय।
जैसे ज्वर के वेग से भूख विदा हो जाय॥

विषय वासनाओं का ज्वर इतना वेग से चढ़ा हुआ है कि प्रभु कीर्तन तथा सत्सङ्ग में उपस्थित होने को मन ही नहीं करता।

हम लोग जो यज्ञ करते हैं, जप, तप, करते हैं, सेवा और उपकार करते हैं, सत्संग में आते हैं तो हमारे अन्दर प्रेम और भक्ति भाव है जो हमको सांसारिक व्यवहार से पृथक् करके इधर लगाता है। यह जन्म-जन्मान्तर के पुण्य कर्मों का फल है।

विश्वास कैसे बढ़े

विधि यह है कि जिन संस्कारों से प्रेरित होकर हम शुभ कर्म करते है, उनको दृढ़ करें। विश्वास तब बढ़ेगा और संगठित होगा जब जप और आराधना के समय हम उन घटनाओं को स्मरण करें जिनमें प्रभु की शक्ति का चमत्कार तथा अनुपम लीला का आविष्कार होता है। यह स्मृति ही है जो दुःख से

छुड़ा कर सुख में ले जाती और जो दुःख में दुःखी भी करती है। यह एक वृत्ति है। सब वृत्तियां छूट जाएं तब भी स्मृति रहती है। अन्त समय तक रहती है।

स्मृति की उत्पत्ति

स्मृति सूक्ष्म संस्कारों से पैदा होती है और प्रायः स्वप्न में आती है। गांठ बांधने वाली चीज़ स्मृति है, अच्छी को याद करना, बुरी को भुला देना। मैं जप में बैठता हूं तो ऐसा प्रवाह चल पड़ता है कि कुछ पता नहीं चलता। कभी तो एक शब्द पर अड़ जाता हूं, और कभी रोते-रोते ही समय बीतता है।

मेरे शहर में एक धनी सेठ आर्य समाज का प्रधान था। बड़ा आदमी था। उसके अन्दर इतनी चतुराई और योग्यता थी कि अयोग्य से अयोग्य पुरुष को भी दक्ष और चतुर बना देता था और वह स्वयं इतना योग्य था कि जहां अपनी बहियों में लेखा बनाता वहां उनकी प्रतिलिपि भी बनाता था। उधार नहीं देता था। लवण, अन्न और रुई का व्यापार करता था। ईमानदारी इतनी कि जिसने ५०००) अमानत रखी उस पर चार आने प्रतिशत सूद देता था और उस रुपया को अपने कार्य में न लगाता। वह सलर और

कराची आठ आने सूद पर भेज देता। वह अपनी जगह इसको सेवा करें कि इतना धनो है और उधर लोगों में प्रसिद्ध धर्मात्मा कहलाए। उसका पिता भी भक्त था। एक बार उसने बाजार में किसी सब्जी विक्रेता से सब्जी तुलवाई, दुकानदार ने कहा–भक्त जी ! पहले दाम रखो फिर सब्जी उठाओ। वह पुत्र पर नाराज हुआ। पुत्र ने कहा कि दुकानदार ने ठीक कहा है, धनी होकर पैसे पास नहीं रखते। जब मैं उधार नहीं देता तो लोग हमें क्यों उधार दें। पिता को कहा, पिता जी ! मेरी मृत्यु तो सफर में होगी। मैं उधार नहीं देता कि मेरी मृत्यु के पीछे आपको कष्ट न हो।

मृत्यु भी उसकी ऐसे हुई कि वह डाक्टर के साथ वायु सेवन के पश्चात् लोटकर घर आया। लारी को माल से भराया और स्त्री को कहा कि हवन कुण्ड, समिधा आदि रख दो और खिचड़ी तैयार करो, मैं स्नान कर लूं। नलके को खोला, धड़ाम से गिर पड़ा, वहीं समाप्त हो गया। डाक्टर साहिब दौड़े-दौड़े आए, देखा मरा पड़ा है।

प्राण रक्षक प्रभु

१–उसकी स्त्री गर्भवती थी। नवां मास था। आषाढ़ मास की बात है। उसके सेवक तथा शिष्य बहुत थे परन्तु वे समय पर आते थे, और उसकी गौ

और बछड़ी को उसकी सराय में पानी पिलाते थे। एक दिन वह आषाढ़ मास में सो रही थी, स्वप्न आया कि बछड़ी को पानी नहीं पिलाया ! फिर देखा चाबियाँ खड़ी हैं फिर वहीं स्वप्न आया, फिर सो गई, फिर वही स्वप्न आया। तीसरी बार एक ही स्वप्न के आने पर वह उठी, चाबियां उठाई। हैरान ! कि क्या बात है। यहां कोई आया नहीं। अन्दर से स्फुरना हुई देख, बछड़ी प्यासी न मर रही हो ! सराय बहुत दूर थी, पानी कभी उसने भरा नहीं था। परमात्मा ने उसे बल दिया, चलती गई। दरवाज़े को खोला, बछड़ी को निकाला। बछड़ी का अन्दर से निकलना था कि धड़ाम से छत्त नीचे गिर पड़ी। वाह रे प्राण रक्षक प्रभु ! तेरी लीला क्या विचित्र है, तूने बछड़ी को बचाना था, जब तक कि बछड़ी बाहर न निकाली गई, तूने छत्त को कैसे रोके रखा ?

वह कन्ट्रोलर सविता देव, प्राणों का रक्षक, आयु को निश्चित करने वाला, किस प्रकार से एक तुच्छ जीव की भी रक्षा करता है। १९३५ ई० में क्वेटा 'बलोचिस्तान' में जब रात्रि को लोग सो रहे थे, अकस्मात् एक भूकम्प आया और सम्पूर्ण नगर धड़ाम से गिर गया। एक तार बाबू दिन को ड्यूटी देकर रात्रि को सोया। सारी रात सोता रहा, उसको ज्ञान ही

नहीं कि संसार में क्या हो रहा है। जब प्रातः हुई तो उसने अपनी सेवा पर जाना था। जाग कर उठा कि चाय पी कर नौकरी पर जाये। अतः बस्त्र बदले और अपने कमरे से बाहर निकला ही था कि धड़ाम से कमरे की छत नीचे गिर पड़ी। बहरा जब देखा तो सब नीरव संसार दृष्टि में आया। आश्चर्य में था कि रात ही रात में क्या हो गया ? अनायास मुख से निकला, वाह प्रभो ! तेरी लीला ! शायद मेरे सोते समय तक तू छत को आप ही, मानो हाथ की टेक दिये रोके हुए था। मेरे उठने की देर थी कि तूने अपना हाथ निकाल दिया और छत गिर पड़ी। धन्य हो भगवान् ! मेरा जीवन बचाने के लिए तू स्तम्भ बन गया। तेरी रक्षा के ढंग निराले हैं।

विश्राम उसके भोग में था, छत खड़ी रही। उठने की देर थी, एक पग रखा और छत धड़ाम से नीचे गिर पड़ी। जहां हमारी बुद्धि की तर्क शक्ति समाप्त हो जाती है, वहां से परमेश्वर की शक्तिमत्ता का आरम्भ हो जाता है।

जो व्यक्ति श्रेष्ठतम कर्म करता है वह दूसरे के जीवन को बढ़ाता अथवा उसको जीवन दान देता है। जो दूसरे के जीवन को हरता है, वह महान् पापी है।

२- अखबारों में पढ़ा। हैदराबाद के समीप गाड़ी दरिया में जा पड़ी। एक स्त्री गिर पड़ी, बच्चा उसकी छाती पर पड़ा था, वह स्त्री मर गई। उसका शव दरिया में तैरता जाता था, बच्चा उसपर तैरता जाता था चिपटा हुआ। शव को किसी मीन, मच्छ आदि दरियाई जन्तु ने नहीं खाया। खाता कैसे? वह 'भूः' उस बच्चे के प्राणों की जब रक्षा कर रहा था तो प्राणों की रक्षा के साधन के पास कौन भटकता? अद्भुत लीला है तेरी प्रभु !

इसका नाम है 'भूः'। भूः से सविता निकल जाये तो 'भूः' का आधार केवल मिट्टी रह जाये। सवितः के 'भूः' में प्रवेश होने से जड़ भी चेतन नजर आता है। चेतन जीवन शक्ति देकर बचाता है।

जल को वर्षाने वाला, ऊपर को उठाने वाला। जगदुत्पादक—यह सब कुछ सवितः ही है।

तो भक्ति कैसे हो ?

अब जो ऋषि दयानन्द महाराज ने लिखा कि अपने आत्मा और अन्तःकरण के साथ भक्ति करें, तो कैसे करें? अन्तःकरण में मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार शामिल है। अर्थ के समय सब घटनाएं हमारे सामने आ जाएं। अब हमें न समय बांधने की जरूरत है व

माला की गिनती की। 'ओ३म्' कहते ही ओत-प्रोत हो जाएं। उसकी कैद में आजाएं अर्थात् समाधि में आजाएं। वह जो रक्षक है, कैसे रक्षा करे। 'ओ३म्' हमारी बाड़ बन जाए तो आगे निकल ही नहीं सकते।

परमेश्वर की अद्भुत शक्ति

हम आकार तो कम कर सकते हैं परन्तु तोल कम नहीं कर सकते। जैसे बरमा प्रैस में रूई की गांठों का आकार अर्थात् स्थान जो रूई अपनी असली अवस्था में घेरती है वह तो, कम हो सकता है दबा देने से, परन्तु तोल वही का वही रहता है, परन्तु परमात्मा का बरमा प्रैस ऐसा है कि जिसमें आकार भी कम हो जाएं, तोल भी। जैसे बड़ के बीज में विशालकाय बड़ अपने तने, डंडियों, शाखाओं, फूल, पत्तों और बीज के साथ पूर्णरूप से समा रहा है परन्तु दबी हुई अवस्था में। आकार बीज का इतना सूक्ष्म और विकसित अवस्था में इतना विशाल! कैसी अद्भुत शक्ति है।

ऐसे ही 'ओ३म्' तो बीज है। यदि भक्त में 'ओ३म्' को समझने और विस्तार करने की शक्ति

आजाए तो यह उसको मोक्ष देने वाला बन जाता है। अतः

सावधान

जब तक बीज का तरु नहीं बना सकते, 'ओ३म्' का जाप मत करो। सावधान रहो तुम्हें 'ओ३म्' का तब तक जाप करने का अधिकार नहीं। पहले गायत्री का जप करो। 'ओ३म्' का जप तो अधिकारी कर सकता है अतः अधिकारी बनो। श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज ने 'सन्मार्ग दर्शन' में लिखा कि गायत्री का सबको अधिकार है। शास्त्रकारों ने यहां तक लिख दिया कि परमेश्वर ने प्रकृति को दोहा तो पहले 'अ' निकला, फिर दोहा तो 'उ' निकला, फिर दोहा 'म्' निकला। फिर दोहा 'भूः' निकला, फिर दोहा तो 'भुवः' निकला, फिर दोहा तो स्वः' निकला। फिर दोहा तो "तत्सवितुर्वरेण्यं" निकला, फिर दोहा "भर्गोदेवस्य धीमहि' निकला, फिर दोहा तो 'धियो यो नः प्रचोदयात्' निकला। माखन सारा निकल आया, शेष छाछ रह गई जो जीव के भोगार्थ छोड़ दी, यह सारा संसार छाछ है वेदों का सार गायत्री है और गायत्री का बीज ओ३म् है। तो

ओ३म् का अधिकारी कौन ?

ओ३म् का अधिकारी वही है जो एक तत्त्व का अर्थात् 'ओ३म्' का ज्ञान रखता है। उस माता को देखो जिसका बच्चा मर गया। जब आकार सामने आया रो पड़ी। ट्रंक खोला; कपड़े देखे, रो पड़ी। हमारी ऐसी अवस्था होनी चाहिये कि हम जिस भी चीज को देखें उसी में ही हमें ओ३म् की याद आजाए और प्रेम पैदा हो जाए।

हमारी भक्ति, यश और स्वार्थ के लिये है; परमेश्वर के लिये नहीं। दुनियां में सब को सेवा की जरूरत हैं, दीन दुःखी आदि सब को सेवा की जरूरत है। परमात्मा को सेवा की जरूरत नहीं वह बेज़रूरत है। मनुष्य को उसकी सेवा की ज़रूरत है कि वही बनना चाहता है जो वह है। इसलिये उस परमेश्वर की पूजा अथवा आराधना - सेवा करे।

साधु महात्माओं के पास लोग दर्शन करने जाते हैं कि लोग उनको भगवान् का रूप समझते हैं। अंधे, लूले, लंगड़े आदि के चर्म (चाम) को देखने नहीं आते। सन्त पूछते हैं, क्यों नहीं आये भाई ! कहते हैं— महाराज ! बड़ा दुःखी हूं।

वह परमात्मा भूर्भुवः स्वः है और कुछ नहीं है। यही मानव को बनना चाहिये।

पांचवीं धारा

दुःख विनाशक प्रभु का दण्ड

भूः से आगे दूसरा शब्द भुवः है। जहां प्राणी को जीवन की इच्छा है वहां दूसरी इच्छा यह भी है कि हमें दुःख न हो। परमेश्वर का नाम दुःख विनाशक है, दुःख-दाता नहीं। परमेश्वर हमारे पापों का साथ-साथ फल नहीं देता। उसकी अद्भुत लीला यह है कि परमेश्वर दण्ड तो देता है परन्तु एक तो माता-पिता के रूप में और दूसरे देता है गुरु के रूप में, वह राजा बनकर दण्ड नहीं देता और न ही फांसी की सजा देता है और न अपनी राजधानी से बहिष्कार कर देता है।

मृत्यु क्या है ?

मृत्यु किसी कर्म का फल नहीं, वह केवल भोग का वियोग है। भोग की समाप्ति का नाम मृत्यु है। राजा किसी दोष के बदले में फांसी का दण्ड देता है, परमेश्वर नहीं देता। कितनी बड़ी दया है उसकी !

परमेश्वर के दया स्वरूप को जानें

परमेश्वर के दया के स्वरूप को जानना भी बहुत कठिन है। परमेश्वर की दया के स्वरूप को जान

जाएं तो हम एक दूसरे से कभी घृणा न करें और न क्रोध करें। इस समय सारा संसार दया चाहता है. न्याय दूसरे के लिये चाहता है, दया अपने लिये। इसलिए परमेश्वर का जो सर्वत्र प्यार है, वह प्राणीमात्र के लिए दया है। इसलिए परमेश्वर ने विस्तार-रूप से दया को फैला दिया। उसे दया का सागर कहा है। परमेश्वर की दया है कि वह तत्काल दण्ड नहीं देता और बताता भी नहीं।

मनुष्य के अन्दर दण्ड भोगने की शक्ति नहीं इस वास्ते उसकी दया का इच्छुक रहता है। परमेश्वर ने दया की कि दण्ड को भुगतने के लिए औषधियां पैदा कर दीं। कहा कि सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि सब वसु और सब धातु औषधि हैं। बिच्छु का विष बिच्छु की औषधि है, सर्प की मणि सर्प काटे की औषधि है। गौ का गोबर, दुग्ध, गधी का दुग्ध आदि सब औषधि हैं।

इस से बढ़कर मानव का संकल्प, विचार की और महात्मा, धर्मात्मा, सत्यवादी भी जो आशीर्वाद देता है, औषधि हैं।

पाप क्या है ?

औषधि का अर्थ है दोष-धी, जो दोषों को धो दे।

एक व्यक्ति को भगन्दर हुआ। यदि लोगों को यह मालूम हो जाए कि भगन्दर अमुक पाप का फल है तो वह कभी मुख न दिखा सके। हां जो आध्यात्मिक मार्ग पर चलते हैं उनको यह ज्ञान हो सकता है कि भगन्दर क्यों हुआ। धर्महीन आचरण करने का नाम पाप है।

एक प्रकार की वे भूलें हैं जिनका सम्बन्ध प्रकृति के साथ है। यह एक पाप है, भूल है और दूसरी प्रकार की भूलें वे हैं जिनसे ईश्वर की आज्ञाओं को न मानना अथवा भंग करना है। इन दोनों कार्यों से दुःख पैदा होता है।

परमेश्वर की आज्ञा है कि मैं सब से प्रेम करता हूं, तुम सब से प्रेम करो। मैं हिंसा नहीं करता, तुम हिंसा न करो। परमेश्वर की आज्ञा है, सत्य बोलो। मैंने भंग किया, तो मैं क्या रोगी हो जाऊंगा? नहीं किसी और प्रकार से उसका फल मिलेगा।

दुःख कैसे होता है?

अज्ञान से हमें दुःख होता है, अथवा अशक्ति से दुःख होता है अथवा अभाव से। तो दुःख के तीन कारण हैं अज्ञान, अशक्ति, अभाव।

अथवा मानव दुःखी होता है शारीरिक निर्बलता

मानसिक बल की कमी से, बौधिक निर्बलता से तथा सामाजिक निर्बलता भी दुःख का कारण है। राजनैतिक निर्बलता भी मानव के दुःख का एक कारण होती है।

गोरक्षा न करने का परिणाम

गोरक्षा न करने से दुग्ध-घृत की कमी हो गई और हमारे अन्दर शारीरिक तथा मानसिक निर्बलता और अपवित्रता आ गई। अब हम गोरक्षा आन्दोलन भी करते हैं और चिल्लाते भी हैं 'गोवध बन्द हो' उसके लिए सत्याग्रह भी करते हैं परन्तु हमारा व्यवहार गोरक्षा का समर्थन नहीं करता। करनी कथनी के विपरीत है। वाणी से तो "गोमाता की जय" बुलाते हैं परन्तु न चमड़े के व्यवहार को बन्द करते हैं और न ही अपने घरों से चमड़े के जूते. बूट, सूटकेस, हैंड-बैग, पेटियां आदि निकालते हैं, न उनका परित्याग करते हैं और न घरों में गौ रखकर उसकी सेवा करते हैं।

वेद की आज्ञा

वेद में आया गौ एक देवता है जिसका तिरस्कार करने से सब प्रकार की निर्बलता एं आती हैं।

कलकत्ता में जब पहले पहल अंग्रेज आया तो अपने देश से एक प्रकार की वस्तुओं का भरा जहाज़ लाया, परन्तु कोई भी भारतीय लेने को तैयार न हुआ। जहाज़ वापस चला गया। उस समय लोगों को संदेह था कि यह हमारे सारे धर्म को बिगाड़ते हैं, था तो अज्ञान; परन्तु उसका मूल धर्म था। गवर्नर जनरल और सम्राट की परवाह न की। अब अंग्रेज़ तजवीज़ें सोचने लगे कि किस प्रकार हमारा व्यापार इनमें चमके।

मसाई जाति

अफ्रीका में जब अंग्रेज गए तो प्रश्न हुआ कि हम इनको कैसे बसाएं। वहां एक जाति है जिसको मसाई कहते हैं। उनमें प्रथा है कि वह बच्चे का विवाह नहीं करते जब तक कि वह सिंह को न मार दे और मारे भी कैसे, ललकार कर उसको फाड़ दे। वहां एक लोकोक्ति है कि मसाई का बच्चा जब सिंह को ललकारता है तो सिंह के कान नीचे ढीले हो जाते हैं। वह अन्न नहीं खाते। मांसाहारी हैं। पशुओं को सूआ मार कर उसका रक्त पीते हैं। पशु निर्बल हो कर गिर पड़ता है। वह मसाई धनुष बाण साथ रखते हैं।

दुःख का करण

परमेश्वर की आज्ञाओं को भंग करना, न मानना, प्रकृति के नियमों का तोड़ना —यह सब दुःख के कारण हैं। अतः रोगों का कारण है देवताओं से दूरी। एक रोग वे हैं जो चलते-फिरते लगें और एक वे हैं जो सुला दें। देवताओं से दूरी का भाव है प्रकृति का निरादर।

रोगों की औषधि

परमेश्वर का निज़ाम (प्रबन्ध) पूर्ण है। जहां रोग है वहां औषध साथ मौजूद है। पर्वतों में विच्छु बूटी होती है जिसके स्पर्श-मात्र से बिच्छु के डंक की सी जलन सारे शरीर में पैदा हो जाती है। साथ ही एक प्रकार की पालक होती है जिसके मल देने से सब जलन सहसा शान्त हो जाती है। परमेश्वर का नाम 'भुवः' है, उसने दुःख दूर करने के साधन भी साथ-साथ जुटा दिये। यहां तक कि मनुष्य का थूक भी औषध है। कोई फोड़ा-फुंसी जो नाभि से ऊपर हो उस पर अपनी बासी थूक लगाते रहो, आराम आ जायेगा। नीचे के फोड़े-फुंसी पर अपना मूत्र ही औषध है। हमारा शरीर चलता फिरता चिकित्सालय है। हमारे अन्दर की

बीमारी जहां है वहां औषधि है। Diabeties (ज्यावे-तुस या मधुमेह) की औषध अपना मूत्र है। नकसीर बहे, उसको ठीकरी पर लगा दो, जला दो, उसी को सूंघ लो नक्सीर बन्द हो जायगी, औषध है।

सप्तर्षि वैद्य

हमारे शरीर में सप्तर्षि बैठे हैं—

"सप्तऋषयः प्रतिहिताः शरीरे" —यजु० ३४-५५

उनकी कुटियाएं बनी हुई हैं—

(१) भरद्वाज की कुटी वाम कर्ण में (२) गौतम की कुटी दक्षिण कर्ण में (३) जमदग्नि की कुटी वाम नेत्र में (४) विश्वामित्र की कुटी दक्षिण नेत्र में (५) कश्यप की कुटी वाम नासिका में (६) वशिष्ठ की कुटी दक्षिण नासिका में और (७) अत्रि की कुटी मुख में है।

यह सब शारीरिक और मानसिक रोगों के वैद्य हैं और रोग दूर करते हैं।

विश्वामित्र का काम है सर्वप्रकार के रोगों का इलाज प्रार्थना द्वारा करना। विश्वामित्र गायत्री मन्त्र का ऋषि है। तो जिन पापों के कारण से गठिया अथवा कष्ठमाला से भयानक रोग भी क्यों न हों, भी प्रार्थना से दूर होते हैं।" विश्वामित्र देवसवितः

तानिपरासुवं—' का मन्त्र भी यही निर्देश करता है।

दो प्रकार का वायु चलता है। समुद्र से और पृथ्वी से। समुद्र से चलने वाला वायु हमारा जीवनाधार है और पृथ्वी से चलने वाला वायु हमारे अन्दर के दोष दूर करता है।

छटी धारा

पांचवी धारा में बता चुके हैं कि परमेश्वर दुःख विनाशक है। दुःख हमारे कर्मों से पैदा होता है। परमेश्वर दया करके उन दुःखों को हरता है। किस प्रकार से हरता है ? इससे पूर्व बताया जा चुका है कि मानव प्रकृति के नियमों को तोड़ता है अथवा परमेश्वर की आज्ञा को नहीं मानता वा भंग करता है तो दुःख होता है। कहीं २ दोनों मिल जाते हैं तो दोनों प्रकार का दुःख मिलता है। मैं इसको विस्तार से कहुंगा।

मानव का सम्बन्ध आहार से है, व्यवहार से है, फिर विचार और आचार से है आहार का संबन्ध प्रकृति के साथ है, व्यवहार का सम्बन्ध परमेश्वर की आज्ञाओं से होता है। जब मानव व्यवहार के नियम भंग करता है तो शारीरिक और आर्थिक दोनों प्रकार की हानियां हो जाती हैं। एक व्यक्ति को आर्थिक

कष्ट है परन्तु शरीर में कोई कष्ट नहीं, दूसरा वह है जिसको शरीर का कष्ट है आर्थिक नहीं, तीसरा वह है जिसको आर्थिक और शारीरिक दोनों कष्ट हैं।

करदनी खेश आमदनी पेश

एक साधारण व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के साथ भाईवाल बना। दोनों ने व्यापार किया। वह चले बंबई को और वहां सट्टा लगाया तो एक लाख रुपया आ गया। दोनों बड़े प्रसन्न हो गये। एक होटल में ठहरे। दोनों का एक दूसरे पर विश्वास था, परन्तु

माया फिसला देती है

धन से आँखें चुन्ध्या जाती हैं। माया मन को ललचा देती है, फिसला देती है, पतन कर देती है। जिसके पास रुपया था उसके मन में लोभ आ गया कि मैं पचा जाऊं। उसकी सन्तान भी नहीं थी। भाईवाल को किसी काम पर भेज दिया। उसके दूध में विष मिला दी। वह प्रातः मर गया। उसका दाह-संस्कार कराया। लोगों के सामने रोया-पीटा भी। लोगों के पूछने पर फूट-२ कर रोया। दस सहस्र रुपया उसके बच्चों को दे दिया, उनके साथ सहानुभूति रखी। अब

उसके पास ९० सहस्त्र रुपया था। काम करता गया और बढ़ता गया। परमेश्वर की कृपा हो गयी। स्त्री गर्भवती हो गयी। पुत्र उत्पन्न हुआ, खूब पढ़ाया, ग्रेज्यूएट बनाया। विदेश में भेजा, वहां से हो आया। उसकी आशाएं बढ़ गई थीं। विदेश से लौटते ही रुग्ण हो गया। अब एक नहीं, दो नहीं, बीसियों डाक्टर आते रहे, चिकित्सा शुरु हुई, परन्तु—

रोग बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।

चिन्ताएं लग गयीं। अब व्यवहार बन्द हो गया। मुनीम आनन्द से खाने लगे। अन्त में डाक्टरों ने भी जवाब दे दिया और कहा कि इसको योरुप ले जाओ, शायद स्वस्थ हो जाए। अब अवस्था यह हो गई कि लोगों में मान तो था पर धन नहीं रहा। लड़के ने देखा पिता रोता है। बालक हंस पड़ा और कहा, पिता जी! मैं आप का भाईवाल हूं ५००) मेरा बाकी है, ८९५००) तुम्हारा खर्च हो गया है। यह ५००) मेरे संस्कार पर लगा देना। अब रोना धोना व्यर्थ है।

"करदनी खेश आमदनी पेश"

जैसा कोई करता है वैसा उसके सामने आता है।

वैराग्य हो गया

बालक चल बसा। शमशान में गये, उसका दाह.संस्कार किया और वैराग्य हो गया। सखर में साध बेला में साधु बन गया। उसने प्रतिज्ञा करली कि हर स्थान पर यही उपदेश करना है। अब जहां जाता है, वहां यही उपदेश करता है।

परिणाम

भाइयो. पहले तो व्यवहार के अन्दर परमेश्वर की आज्ञा का भंग किया, विश्वासघात किया, चोरी कीं, फिर असत्य किया। यह भी परमेश्वर की आज्ञा का भंग किया। प्रकृति के नियम का भंग किया कि उस से अन्न खाया और सन्तान पैदा की। इसलिए

सावधान रहो ! ऐसे कर्म करो कि जिसमें हिंसा न हो, कुटिलता और टेढ़ापन न हो। उसमें कुटिलता भी थी, हिंसा भी थी, टेढ़ापन भी और असत्य भी था।

हिंसा का फल

अभी पढ़ा है (यजु० ३५–१–भावार्थ) जो मनुष्य ब्रह्मनिष्ठ की हिंसा अहंकार के कारण से करता है वह तत्काल पागल हो जाता है, जो लोभ के कारण हिंसा करता है तो उस का धन नष्ट हो जाता है और जो

मोह के कारण हिंसा करता है तो वह लोथ की तरह पड़ा रहता है, अधड़ंग हो जाता है।

पापों का फल कैसे मिलता है

प्रकृति और अध्यात्म का विज्ञान जुदा-जुदा है। जो महान् पुरुष हैं, वे आँख के समान हैं। जैसे आँख में एक धूलि का कण पड़ कर दुःखी करता है वैसे महान् पुरुषों की छोटीसी भूल भयंकर परिणाम पैदा करती है। उदाहरणार्थ—बीरबल ने अकबर को हिन्दू न बना कर जाति को कितनी क्षति पहुंचाई। इसलिये साधाररण आदमियों के लिये भगवान ने बड़ी छूट रखी है। बड़े-बड़े व्यापारी अथवा कला-कौशल के अधिपति जो करोड़ों में खेलते और लाखों दान करते हैं, उनके पाप क्रेन (Crane) पर तुलते हैं, साधारण दुकानदारों के पाप तराज़ू पर और ब्राह्मणों संन्यासियों और महात्माओं के पाप सर्राफ के कांटे पर तुलते हैं। संन्यासी महात्माओं के पापों को भगवान् एक-एक करके चुनता है। साधारण लोगों के पाप इकट्ठे कर देता है।

सविता भुवः रूप में

परमेश्वर जो सविता है, वह भुवः रूप में कैसे आया, यह देखिये निम्न सच्ची घटनाओं से :—

(१) एक नवयुवक वैष्णव कुल का था जिसके कुल में पितामहों से मांस सेवन तो एक ओर रहा, किसी ने स्पर्श तक भी न किया था। एक बार उसके कान में बड़ी पीड़ा, खुजली और व्याकुलता हुई। बहुत वैद्यों की दवाई की, स्वस्थ न हो सका और न ही किसी ने रोग के कारण का ठीक निदान किया। अत्यन्त व्याकुल हुआ। जब-जब दर्द पड़ता, ढ़ाई मार-मार कर रोता।

प्रभु प्रेरणा का विलक्षण ढंग

एक दिन अकेला बैठा था। मन में एक वेगवान् तरंग उठी। मांस खाने के लिये मन चाहने लगा। फिर विचारता कि मैं वैष्णव का पुत्र हूं, कभी जन्म से खाया नहीं, आज यह क्यों बुरा विचार उत्पन्न हो रहा है। परन्तु मन का वेग सह न सका, उठा और एक नानबाई से कटोरे में पका हुआ मांस खरीद लाया।

भक्त की लाज रखी

और अब कोठड़ी में द्वार बन्द करके अकेला किसी को पता न लगे, खाने की उसने धारणा की और द्वार बन्द करने लगा कि सामने से पिता जी आते दीख पड़े। झट दौड़ कर मांस को छिपाना चाहा

और कोई स्थान न सूझा। मांस के कटोरे को नीचे रख कर अपना कान और सिर उस पर रख कर छिपा दिया और लेट गया। दर्द तो उसे था ही। पिता को मालूम था। इस प्रकार लेट जाने से अपना दोष (पाप) छिपाना बहुत उचित समझा। ज्यों मांस के पास हुआ, तो एक कानखजूरा कान से निकल कर मांस की गध पर कटोरे में आ पड़ा और वह तुरन्त स्वस्थ हो गया। वैष्णव युवक की प्रभु ने लाज रखी।

(२) मैं मनसूरी १९४८ में गया। वहाँ की समाज का प्रधान एक चण्डूक था जो स्यालकोट का रहने वाला था। कलकत्ता, बम्बई में उसकी कोठियां, दुकानें थी। उन्होंने सुनाया बहुत समय बीता कि जवानी में मुझे एक फोड़ा निकला, दवाई करने पर भी स्वस्थ न हुआ। ऐसा बिगड़ा कि अन्त में मेरा पिता प्रभु से प्रार्थना करता है कि इसको उठा ले। आर्थिक अवस्था हमारी क्षीण हो रही थी। कार्य-व्यवहार करने वाला मैं था, बड़ा था। पैसा पास न रहा। एक साधु भिक्षा मांगने के लिए आया। जब उसने मेरे पिता से भिक्षा मांगी; पिता उदास हो गया। उनका मुख पीला पड़ गया। साधु ने कहा, क्या बात है?

मेरे पिता ने कहा—'महाराज ! मेरा पुत्र रोगी पड़ा है बहुत काल बीत गया है। अब आप आशीर्वाद दें कि वह अब मर जाए ताकि दुःख से दूर हो जाए।' साधु ने कहा कि एक दवाई बताता हूं, एक पैसे की कालपी मिश्री लेनी है। मेरे पिता को जङ्गल में ले गया, एक बूटी दिखाई। कहा कि अमुक नक्षत्र में इस बूटी को उखेड़ कर घोट कर वह कालपी मिश्री मिला कर पिला देना। जब नक्षत्र आया तो मेरा पिता उसी जंगल में वही बूटी उखेड़ने गया, पर क्या देखा कि वहां तो बूटी है नहीं। भाग्य !

वाह प्रभु तेरी दया

बड़ा व्याकुल हो गया। घर वापस आया और आकर मुझे कहा कि बच्चा ! अब तू नहीं बचता। अब मैंने कहा—दादी ! तू भी बूढ़ी है, प्रार्थना करो, मैं मर जाऊं।

कुछ दिन बीत गए, अन्धेरी चली उनके घर की ओर। थोड़ी देर के बाद क्या देखा कि चारपाई के पास वही बूटी पड़ी है। मेरी दादी ने कहा, क्या है। वही नक्षत्र था। उस बूटी को घोट कर पिलाया, मैं स्वस्थ हो गया।

वाह प्रभु तेरी दया ! तेरे बचाने और दुःख दूर

करने के ढंग निराले हैं !

जहां मेरा रोग हटा, वहां हमारी आर्थिक अवस्था सुधरने लगी।

यह है सविता का प्रवेश भुवः में। कैसे रोगी के पास उस बूटी को लाया और वहां आकर टिकाया।

भगवान् की अद्भुत् लीला !

सातवीं धारा

सर्वत्र प्रवाहिणी प्रेरणा

मनुष्य को परमेश्वर की प्रेरणा अथवा किसी भी प्राणी को परमेश्वर की प्रेरणा होती है, वह मस्तिष्क में होती है. इस प्रेरणा को सभी तो समझ नहीं सकते। यह प्रेरणा सर्वत्र प्रवाहिणी है।

मानव तीन प्रकार के

गुणों के आधार पर मानव तीन प्रकार के हैं और इसलिये प्रेरणाओं के समझने में भी अन्तर रहता है। एक वे लोग हैं जो तमोगुण प्रधान हैं, वे तो परमेश्वर की प्रेरणाओं को समझने में असमर्थ हैं। उन्हें ज्ञान ही नहीं कि प्रेरणा कोई शक्ति है।

दूसरे वे लोग लोग हैं जो रजोगुणी हैं। रजोगुणी लोगों को परमेश्वर की प्रेरणा स्वप्न के समान मालूम होती है। जैसे स्वप्न देखता है और उसे मिथ्या समझ लेता है।

तीसरे वे लोग हैं जो सतोगुणी हैं. वे लोग परमेश्वर की प्रेरणा को सुनते और समझते हैं और उस पर आचरण करते हैं। परन्तु,

यह आवश्यक नहीं कि परमेश्वर की प्रेरणा केवल सतोगुणी ही सुन सके। पापी से पापी भी उसकी प्रेरणा '**सुनता, समझता है जब सात्विक वृत्ति हो।'** यह सूर्यनारायण अपनी किरणों को संसार में फैलाता है। इसी प्रकार परमेश्वर की प्रेरणा सर्वत्र प्रवाहित हो रही है। अब जिस प्रकार सरदी में निर्धन लोग सूर्य की किरणों से केवल धूप तापने का लाभ उठाते हैं, वैज्ञानिक लोग सूर्य की रश्मियों से अरबों रुपये कमा लेते हैं। वैद्य लोग सूर्य की किरणों से लोगों के रोग दूर करते हैं। परमेश्वर की प्रेरणा इतनी शक्ति-शाली है कि जितना काम प्रेरणा ने कराना होता है उतना ही कराती है।

यह प्रेरणा कब और कहां होती है ?

प्रेरणा आंख और कान में भी होती है। प्रेरणाओं को समझने वाले वास्तविक यन्त्र आंख और कान हैं। उस समय परमेश्वर आंख अथवा कान में आ बैठता है। कान से शब्द ऐसे सुनाई देता है जिसे वह स्पष्ट सुनता है। आंख में आ बैठता है तो स्पष्ट दीखता है।

दृष्टान्त

(१) एक व्यक्ति को नासूर हो गई कन्धे पर। १२ वर्ष कष्ट रहा। डाक्टरों ने जवाब दे दिया। एक बार वह जङ्गल में जा रहा था, वायु बड़े वेग से चल रही थी। एक पत्ता एक पेड़ से उड़कर नासूर पर बैठ गया, वह उतरता ही नहीं था। उसने यत्न किया परन्तु वह उतरा नहीं, वह दृढ़ होता गया। अन्त में वह हार गया, कहने लगा मेरे तो मन्द भाग्य हैं।

परन्तु वाह रे भगवन्! तेरी अद्‌भुत लीला! तू परम वैद्य कैसे उपचार करता है।

वह पत्ता तब छूटा जब नासूर ही समाप्त हो गई और वह स्वस्थ हो गया।

(२) दिसम्बर १९३३ की आंखों देखी घटना

है। सेठ चिमनलाल जी सहगल (उनकी माता तथा भरजाई भी इस घटना के वृतान्त को सुनाते समय उपस्थित थे)। बीमार हो गए। अजमेर की शताब्दी के बाद मैं लाहौर आया हुआ था, मुझे मघियाना से तार मिला कि सेठ चिमनलाल बीमार हैं, आप आएं। मैं गया। सिविल सर्जन की दवाई हो रही थी, रात्रि को वह जवाब दे गए। प्रभु कृपा से कुछ आध्यात्मिक प्रयोग से उन्हें आराम हो गया, परन्तु उनका पुत्र बीमार हो गया। बालक की दस वर्ष की आयु थी। इकलौता बेटा था। विद्यालय में पढ़ता था, पिता तो आर्यसमाजी था। बालक के सब संस्कार वैदिक रीति से मैंने कराए हुए थे परन्तु फिर भी बालक के संस्कार कुछ ऐसे थे कि वह जब विद्यालय से आता, घर के पास एक शिवालय था, वह उसमें चला जाता, घन्टा घड़ियाल बजाता, तिलक लगाता। एक दिन विद्यालय में बैठे-बैठे उसे सिर पीड़ा हो गई। अब छुट्टी मिली तो घर पर आकर लेट गया। माता ने मालिश की परन्तु सिर पीड़ा न हटी। ज्वर भी हो गया।

मन्द भाग्य

सेठ के कहिए अथवा बालक के कुछ ऐसे मन्द भाग्य थे कि वैद्यों ने पहले तो ज्वर को साधारण समझा परन्तु २-३ दिन तक सिर पीड़ा न हटी, ज्वर भी चढ़ गया। तो डाक्टरों ने टाईफाईड बताया। बालक की आंख ऊपर ही न उठी, भूख भी मन्द थी। चिकित्सा आरम्भ हुई। सेठ स्वयं भी एक कठिन रोग ग्रस्त रहा था, अब उसे आराम तो था परन्तु चलने-फिरने की शक्ति न थी, वह भी खटिया पर लेटा रहता। बालक की सहायता के लिये वैसे तो घर में बहुत जीव थे क्योंकि धनी था परन्तु उसकी सेवा का सारा भार उसके चाचा ने (जो ग्रेज्यूएट था) अपने ऊपर ले लिया। दवाई देनी हो, जल देना हो, तन की सेवा करनी हो, अहर्निश वह साथ बैठा रहता, किसी पर विश्वास न करता। उसे बहुत कहा जाता कि आप विश्राम कर लिया करें और व्यक्ति सेवा करने वाले भी उपस्थित हैं परन्तु उसे किसी पर भी विश्वास न आता। दिन-रात की थकान से उसे भी ठीक वही रोग अर्थात् सिर पीड़ा और ज्वर हो गया।

कर्म रेखा टारी न टरे

परन्तु होता वही है जो प्रभु को स्वीकार होता है। डाक्टरों ने बालक के इस रोग को भीषण बता दिया। चाचा की सर्व प्रकार की सेवा और डाक्टरों का बल कुछ भी कारगर न हुआ, यहां तक कि राय-ज़ादा प्रभुदयाल बी० ए० जो बालक के सोत्र चाचा थे और जो बालक की, अपने सुख और आराम की पर-वाह न करके भी. सेवा कर रहे थे, उनको भी उसी रोग ने ग्रस लिया। चिमनलाल स्वस्थ हो गया। बालक चल बसा। सच है "कर्म रेखा टारी नहीं टरे।"

समाचार का प्रभाव

इस हृदय विदारक मृत्यु का समाचार सुनते ही चाचा की अवस्था ने भीषण रूप धारण कर लिया। एक ओर होनहार बालक की मृत्यु पर अत्यन्त शोक हो रहा है और दूसरी ओर नवयुवक चाचा छोटे-छोटे बाल-बच्चों का पिता भी मृत्यु की प्रतीक्षा में जीवन की घड़ियां गिन रहा था। सब लोग, छोटे-बड़े प्रभु से पुकार करते हैं कि भगवन्! इस नवयुवक राय-ज़ादा पर दया करो और इस परिवार की लाज रखो!

सेठ चिमनलाल ने सब चिकित्सकों को कह दिया कि जितना भी धन लग जाए, दे दूंगा, इसे किसी प्रकार से बचाया जाए। परन्तु "मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।" वैद्य हार गए और चल दिए। अब सब को चिन्ता ने घेर लिया क्योंकि बालक के रोग और मृत्यु का मृश्य अभी आँखों के सामने ही था।

परम वैद्यराज की वैद्यक का चमत्कार

चाचा की सेवा एक काँग्रेसी नवयुवक रामरंग जी कर रहे थे। एक रात्रि जब वह सोने लगा तो ज्वर १०६° ही था।

प्रभु की लीला

आधी रात्रि का समय था कि रोगी चिल्लाने लगा, निद्रा में था, कि हा! मुझ पर हिम का पर्वत रख दिया है। जब बहुत चिल्लाया तो रामरंग जी जाग पड़े और रोगी को भी चिल्लाने से जाग आ गई। पूछने पर रोगी ने कहा कि मेरे सिर पर हिम का पर्वत किसी ने रख दिया था जिस से मेरा सिर

दबता जाता था। लैम्प तो जल रहा था, बत्ती ज़रा ऊंची करके रामरंग ने ताप मापक यन्त्र लगाया तो देखा कि ज्वर १०४ दर्जे का था। सेवादार ने कहा, ज्वर तो उतर रहा है, परम वैद्यराज की वैद्यक अपना कार्य कर रही है। फिर सो गए। ४ बजे के करीब रोगी फिर उठा और रामरंग जी से कहा कि मन मेरा अशान्त है, कोई राग सुनाओ। रामरंग जी ने ताप देखा तो १०२ दर्जे था। राग सुनाया और फिर सो गए।

६ बजे के लगभग रोगी ने स्वप्न देखा और स्वप्न में ही बड़बड़ा रहा था कि हाय ! देखो वह कुटिया वाला साधु जिसका नाम हरभजन था, मर गया है। उसके बालक द्वार पर भिक्षा लेने आए हैं, अपनी देवी से कह रहा है कि उन्हें भिक्षा दो।

यह तो स्वप्न था। अब रामरंग जी ने टैम्परेचर देखा तो १०० दर्जे पर आ गया था। उसने जाकर चिमन लाल जी को घटना सुनाई। अभी कुछ रात्रि शेष थी। चिमनलाल और मैं दोनों सूर्योदय के समय समीप गए तो देखा कि प्रभुदयाल दातुन दे रहा है और प्रसन्न वदन है। उस समय ज्वर नाम को न था। अब वह

स्वस्थ हो गया।

यह है उस परम वैद्यराज की कृपा का चमत्कार। यह है प्रभु की अद्‌भुत लीला। टाईफाईड का इलाज हिम से तो किया जाता है पर दिसम्बर में शहर में बर्फ कहां ? सवितः ने स्वयं भुवः बनकर स्वप्न में ही हिम का दृश्य दिखा ज्वर को तोड़ दिया। वाह भगवान् ! तेरी लीला ! तेरी गत मित तू ही जाने !

ये हुई घटनाएं केवल शरीर के सम्बन्ध में।

चरित्र के रक्षक सवितः देव

३- जिन लोगों ने महात्मा गाँधी के जीवन को पढ़ा या सुना है, उनको याद होगा कि एक बार महात्मा जी वैश्या के घर पहुंच गये। महात्मा वैश्यागामी न थे और न ही संग करना चाहते थे परन्तु बलात्कार वह दाखिल कर दिये गये थे। पाप से रक्षा करने वाले भुवः ने महात्मा की वाणी पर ताला लगा दिया. वैश्या नाजो-नखरे करे, महात्मा कांपे जबान बन्द हो गई कुछ बोल भी न सके। वैश्या ने दुत्कार कर घर से निकाल दिया। महात्मा जी के चरित्र को पतन से कैसे बचाया।

४- महात्मा मुन्शीराम जो एक बार साथी-संगियों

के साथ वैश्या के घर जा दबके। अन्दर से आवाज आई 'नापाक ! नापाक !! (अपवित्र)। यह सुन कर वैश्या के घर से निकल आये और पतित होने से बच गये।

५- खैरपुर में एक सज्जन शराबी, मांसाहारी, जुआरी और कवि था : गन्दी कविताएं करता था। दुष्ट प्रसिद्ध था। गोंदाराम उसका नाम था। हुक्का बहुत पीता था। हुक्के की नड़ियां बनाता था। एक दिन अनायास बैठे तरंग उठो, सब व्यसनों को एकदम त्याग दिया। प्रातः को देवता बन गया। कविता का रंग-रूप-रेखा ही बदल गई। जो गोंदाराम लोगों की पगड़ी उछालता था और गन्दी और अश्लील कविताएं बनाता था, लोगों की दृष्टि में घृणा से देखा जाता था, आज उसका मान होने लगा, ईश्वर भक्ति के गीत गाने लगा। वह धर्मात्मा बन गया। गौशाला की सेवा अपने ज़िम्मे ले ली, पाठशाला का काम संभाल लिया, अन्त में वह सफल हो गया। जीवन सुगन्धित जीवन बन गया।

यह आवश्यक नहीं कि दुष्ट पापी का त्राण नहीं हो सकता। जब प्रभु की कृपा होती है तो वह बच जाता है।

पहली अथवा दूसरी सितम्बर की घटना है। पण्डित लक्षमणदास जी ने बात सुनाई। रोहतक ज़िले के लाली ग्राम की बात है कि एक युवक एक और संगी साथ लेकर लाली ग्राम में भैंस खरीदने गए। उस युवक के पास एक सहस्र रुपया था। भैंस की खोज दिन भर करते रहे परन्तु कोई भैंस न मिली और न सौदा हो सका। रात्रि हो गई। उस युवक का साथी तो चला गया परन्तु युवक की मंगनी उसी लाली ग्राम में एक हिन्दू की लड़की से हुई थी, ससुर ने उस युवक को समझा-बुझा कर कि रात्रि को इतने रुपये साथ लेकर जंगल में से गुजरना खतरे से खाली नहीं, अपने पास ठहरा लिया। उस प्रान्त में सगाई के दिनों में वधु-गृह में भावी वर न कुछ खान-पान करता और न ठहरता है, परन्तु भावी और हाजत प्रबल है। उसने ससुर की बात को मान कर ठहरना स्वीकार कर लिया।

ससुर की नीयत बदली

ससुर साधारण स्थिति का आदमी था। १०००) की राशि को सुनकर उसका मन ललचा गया। अपनी स्त्री और पुत्र से षडयन्त्र रचकर निश्चय किया कि

जब वह युवक गाढ़ निद्रा में हो, उसे मार कर १०००) रुपया ले लिया जाए और उसें नहर में फेंक दिया जाए इससे जहां धन हमारे काम आएगा वहां कोई संदेह भी न करेगा। उस युवक की मंगेतर (भावी वधु) ने यह सब कुछ सुन लिया।

युवक को घर के बाहर खाट देकर ठहरा लिया गया। भोजनादि के बाद वह हिन्दू अपने पुत्र सहित अपने खेत को पानी लगाने चला गया क्योंकि उनकी पानी की बारी थी और युवक बाहर खाट पर सो रहा। माता को निद्रा में देख उस लड़की ने अपने भावी वर को जाकर जगाया और सारा समाचार उसे सुना दिया और कहा कि उठकर चले जाओ, नहीं तो मारे जाओगे। कहां जाऊं कैसे जाऊं। इन समस्याओं का समाधान यह किया गया कि वहां ही पास वाले नीम के पेड़ पर चढ़कर जान बचाई जावे। नवयुवक ने ऐसा ही किया। सारी रात नीम के पेड़ पर बिताई परन्तु भय से निद्रा न आई।

उधर खेत पर पुत्र ने पिता को कहा, पिता जी! मैं चलता हूं मुझे निद्रा आ रही है। यह कहकर बालक घर चला आया। यहां निद्रा के खुमार में षड्यन्त्र की रचना तो याद ही न रही, चारपाई को द्वार पर

बहर खाली पड़ी देखकर बालक उसपर सो गया और शीघ्र ही गाढ़ निद्रा में विलीन हो गया। थोड़ी देर बाद पिता भी खेत से वापिस आया तो अपने पूर्व निर्णय के अनुसार चारपाई पर बालक को सोता देख कर गण्डासे से उसका काम समाप्त कर दिया। अन्धेरी रात्रि थी। अब मृत शरीर से रुपया टटोलने लगा परन्तु कुछ भी रुपया न पाकर चकित हो गया। लैम्प लाकर देखा तो अपने पुत्र को मरा पाया। धाड़-धाड़ करने और चिल्लाने लगा। लोग इकट्ठे हो गए, पुलिस पहुंच गई। अब कहने लगा मेरा दामाद आया था वह मार कर चला गया। पेड़ पर बैठा वह युवक सब कुछ देख रहा था और सुन रहा था।

पेड़ से नीचे उतर आया और सारा वृतान्त कह सुनाया, लड़की ने कहा कि मैंने अपने भावी पति युवक को सूचना दी थी, वह पिता और माता दोनों पकड़े गए। नवयुवक की प्रभु ने कैसे जान बचाई !

प्रभु नाम का रस कब आता है ?

प्रभु के नाम का रस तब आता है जब उसकी दया और न्याय आदि गुणों का चित्र सम्मुख आजाए।

ज़बिस्तान की कथा है कि ईरान के सम्राट को ईर्ष्या हुई। ज़बिस्तान के देश पर आक्रमण कर दिया। अपनी सैनिक शक्ति का उसे गर्व था। ज़ाबिस्तान के राजा ने लिखा कि यदि तू देश लेना चाहता है, तो ले ले, प्रजा विनाश न कर, परन्तु ईरान के सम्राट् ने कहा, नहीं मैं मांग कर देश नहीं लेता, तलवार के बल पर लूंगा। जाबिस्तान के राजा ने प्रभु इच्छा पर छोड़ा। युद्ध शुरु हुआ। ईरान की सेना ने अभी ज़ाबिस्तान नहीं लिया था कि एकदम जाबिस्तान से बड़े वेग से वायु का तूफान (अन्धेरी) उठा, ईरान की सेना के बाण वायु-वेग से उल्टे ईरान की सेना पर पड़ने लगे और सेना का अपने ही बाणों से विध्वंस हो गया। ज़ाबिस्तान बच गया।

इस प्रकार की घटनाएं उपासना के समय याद आजाएं अथवा जहां दुःख और आपत्ति के घटाटोप घने मेघ छा गए हों और प्रभु कृपा से एक छोटीसी घटना से छिन्न-भिन्न होकर दुःख और आपत्ति का विनाश होकर सौभाग्य का सूर्य उदय हो गया हो, तो प्रभु उपासना में रस आता है क्यों कि कहा है—'रसो वै सः' वही रस है और रस का देने वाला है।

आठवीं धारा

सवितः का स्वः में प्रवेश

मानव का जीवन

मानव का जीवन सारे का सारा साधना का जीवन है और किसी प्राणी का नहीं। मानव किसी न किसी सिद्धि को प्राप्त करना चाहता है चाहे मान की हो चाहे धन की हो अथवा जीवनोद्देश्य की हो।

जीवनोद्देश्य की पूर्ति कैसे हो ?

जीवन का उद्देश्य है ईश्वर की प्राप्ति। ईश्वर की प्राप्ति है आत्मा के लिये। ईश्वर की प्राप्ति से आत्मा को वास्तविक सुख और आनन्द मिलेगा। यह आनन्द अथवा वास्तविक सुख बिना परमेश्वर के पास से कहीं भी नहीं मिलेगा। अतः हम सुख को खरीद करें परमेश्वर के पास से। वह सुख निःशुल्क मिलेगा अथवा कीमत से ?

भगवान् को खरीद कैसे किया जाए ?

भगवान् को खरीद कैसे किया जाए और मुफ्त कैसे प्राप्त किया जाए ? जैसे स्त्री अपने पति को

खरीद करती है। एक लड़की जब विवाहित हो गयी, अपने आप को पति के अर्पण कर देती है। यह गायत्री मन्त्र समर्पण का मन्त्र है। जिसने अपने आप को भगवान् के अर्पण कर दिया, भगवान् उसका हो गया।

दूसरी सूरत है, वह प्रभु मुफ्त दे, जैसे माता पिता मुफ्त देते हैं। इसलिये प्रभु को अपना माता पिता मान ले।

यदि परमेश्वर के साथ सेवक और स्वामी का सम्बन्ध जोड़ दे तो सिवाय अच्छे से अच्छा खाना (भोजन) के और कुछ न मिलेगा।

मन्त्री बनने के लिये बड़ा पुरुषार्थ करना पड़ता है परन्तु राजा बनने के लिये राजा के घर उत्पन्न होना ही पर्याप्त है।

निम्न दृष्टान्तों से अधिक स्पष्ट हो जाएगा :—

एक कङ्गला प्रदेशी

श्रीनगर काश्मीर में एक कङ्गला किसी प्रदेश से अपना जीवन निर्वाह कमाने के लिये पहुंचा। वहां एक गृह किसी सेठ से १) मासिक किराए पर लिया। स्त्री साथ थी। श्रम से किसी दिन तो अच्छा निर्वाह हो जाता और कभी-कभी तो कई-कई दिन कुछ न

बन पाता। न किसी से परिचय था और न साधन थे। दिन कटी कर रहा था।

दैव योग से स्त्री गर्भवती हो गई। प्रसव के दिन समीप आ गये। एक पैसा भी पास न था। स्त्री ने कहा कि गृह स्वामी से एक रुपया ऋण ले लो, प्रसव का समय अब समीप आ गया है, कुछ वस्तु भी क्रय करनी होगी और धाय को भी कुछ देना पड़ेगा, किराये के साथ गृह स्वामी को अदा कर देंगे।

निर्दयी पून्जीपति

पुरुष चला गया और पून्जीपति से प्रार्थना की परन्तु गृह स्वामी--सेठ ने उत्तर दिया "तुमने पहला किराया भी अदा नहीं किया और रुपया देकर इसे भी पीटता रहूं। जा, मैं नहीं देता।" बहुत हाथ जोड़े, विनय की किन्तु सेठ जी पर जूं न रेंगी, दया न आई सेठ ने न माना। निराश होकर घर लौटा। वेद भगवान् ने फरमाया

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः

जब तक मनुष्य पुरुषार्थ करता-करता थक नहीं जाता तब तक भगवान् उस की सहायता नहीं करते। जब तक मानव को अपने बुद्धि, बल, विद्या बल, धन

बल अथवा जनबल पर गर्व होता है, प्रभु तमाशा देखते रहते हैं और जब चारों ओर से निराशा की अंधेरी छा जाती है तो आशा की झलक उस देव की कृपा से सहसा दिखाई देती है। सच है:—

"इक दर बंधे सै दर खोले।
सै दर बंधे अपना दर खोले ।।"

अर्थात् एक द्वार बन्द करता है तो सैकड़ों खोल देता है और यदि सैकड़ों बन्द करता है तो अपना द्वार खोल देता है।

जब घर वापस पहुंचा, स्त्री का प्रसव हो चुका था। स्त्री ने कहा "यह जेर है अन्दर कोठा (कमरे) में रम्बा से गढ़ा खोद कर इसे गाड़ दो। धाय तो अभी आई न थी, परन्तु देवी ने स्वयं साहस किया कि शेष मैं आप कर लूंगी, तुम जेर दबा कर शीघ्र आओ मेरी सहायता करना"

प्रभु की शान निराली

जब पुरुष भूमि खोदने लगा तो एक सुन्दर ढकना निकला, जिसके नीचे धन का एक बड़ा पात्र दबा हुआ था। ढकना उठाकर स्त्री को दिखाने आया। स्त्री ने कहा "प्रभु की शान निराली है, जाओ अब

फिर उसी सेठ के पास, यह ढकना धरोहर रख कर रुपया ले आओ, अब सेठ इन्कार नहीं करेगा, सब कार्य बन जायेंगे"

सेठ की आँखें चुन्धिया गईं

भोला परदेशी फिर सेठ के पास गया और कहा कि लो सेठजी ! यह ढकना धरोहर रख लो, अब एक रुपया दे दो । जब रुपया अदा करेंगे, तब ढकना वापस कर देना ।" सेठ ने ढकना हाथ में लिया तो आँखें चुन्धिया गईं । पूछा, यह कहां से लाए ? (ढकना चमकदार था, उस पर कुछ लिखा हुआ था ।) परदेशी ने कहा, जेर दबाने लगा तो यह ढकना निकला, नीचे धन है ।

लोभी सेठ और सरल परदेशी

सेठ बड़ा लोभी था और राज्य कर्मचारियों तथा दरबार में उसका प्रभाव था । सेठ ने देखा कि यह परदेशी कितना सरल और मूढ़ है कि ढकना मेरे पास ले आया, कहीं ऐसा न हो कि धन निकाल ले, उसे अपने प्रभाव से दबाया और कहा कि चलो मैं अभी तुम्हें राजा जी के पास ले चलता हूं । सेठ उठा और

उस परदेशी को ढकना सहित राजा जी के पास ले गया। राजा को वृतान्त सुनाया और परदेशी ने अक्षरशः उसका अनुमोदन किया। राजा ने देखा कि ढकने पर कुछ लिखा है, आज्ञा की कि अब जाओ, कल आज्ञा देंगे।

न्यायकारी राजा

अब दोनों खुशी-खुशी अपने घरों को चले गए। सेठ तो खुश था कि राजा मेरा अपना है, कल ढकना और सारा धन मुझे मिल जायगा। परदेशी खुश कि मेरी जान छूट जायगी। परदेशी बेचारे को रुपया न मिला, ढकना भी दे आया। वापस घर पहूंचा तो उस दयालु प्रभु ने किसी पड़ोसिन के हृदय में दया उत्पन्न कर दी, उसने आकर सब कुछ कार्य सम्पन्न कर दिया परदेशी ने आकर सारा वृतान्त देवी को सुनाया।

राजा का निर्णय

प्रातः हुई, सेठ और परदेशी एक-एक करके राज्य दरबार में पहुंचे। परदेशी तो घड़ियां गिन रहा था कि कब निर्णय सुनाया जाए और जान छूटे।

राजा न्यायकारी था। आते ही राजा ने प्रतिपक्षियों को बुलाया और आज्ञा की—

कि इस ढकने पर लिखा है–"आज की तिथि को चार लक्ष रुपया मैंने अपने लिये दबाया" –नीचे सेठ के पिता के हस्ताक्षर थे। यह ४ लाख रुपया जिस नें दबाया था, वह आज पैदा हो गया है और जिस मकान में दबाया था, उस ही मकान में जन्म लिया है, ढकना उसके पिता को वापस दिया जाता है, वह अपने पुत्र का संरक्षक है। वादी सेठ को अब इस रुपया से कोई सम्बन्ध नहीं रहा, न इसका स्वामी यह कंगला है और न सेठ। रुपया का स्वामी पैदा होने वाला बालक है जिसनें अपने लिये दबा रखा था, जाओ।

यह है लीला उस सवित: देव की। दु:खों के अन्त करने और सुख प्रदान करने के लिये किस प्रकार सवित: देव ने 'स्व:, में प्रवेश करके यह सब साधन जुटाए। परदेशी कंगला को श्रीनगर लाना, स्त्री का प्रसव होना, निर्धनता की पराकाष्ठा का दृश्य, ढकना का निकलना-दु:खों की काली घटा का भेदन–राजा के पास ढकने का पहुंचवाना निर्णय और धन राशि का नवजात बालक के नाम पर कंगले को देना–अब निर्धन को कोई भय नहीं', दु:ख नहीं। निर्भयता से सुख भोगेगा, मोटर रखे, भवन बनाए, व्यापार करे, जैसा चाहे कर सकता है।

निर्धनों का सहायक

रावलपिण्डी नगर में एक सरदार सुजानसिंह नामी बड़ा रईस जागीरदार था। नगर के बाहर एक वाटिका और सुन्दर भवन में रहता था। एक दिन भवन से निकल कर स्त्री और पुरुष दोनों वाटिका में घूम रहे थे और आपस मे बातें कर रहे थे। बातों बातों में स्त्री ने सरदार से कहा कि कन्या अब युवती हो चुकी है, उसके लिये वर की खोज करनी चाहिये निश्चिन्त न रहना चाहिये। सरदार ने कहा, 'क्या करू? अपने आप किस के द्वार पर जाऊं, यह तो वर्तमान युग में निन्दा होती है। कन्या वाले के घर पर ही वर वाले आते हैं परन्तु मेरे पास तो कोई साहस करके आता ही नहीं। मुझे बड़ा रईस समझ कर लज्जाते हैं।' इतने में भ्रमण करते-करते फाटक पर पहुंच गए। वहां से सामने कुछ फर्लांग की दूरी पर राजमार्ग था। उस पर एक नवयुवक बहुत रूपवान, विशाल हृष्ट-पुष्ट काया परन्तु निर्धन, श्रमीवत् गधे पर बोझा लादे लाठी से हांकते नगर की ओर जा रहा था। स्त्री की दृष्टि उस पर पड़ी अपने पति सरदार से कहा कि मुझे तो ऐसा नवयुवक रूपवान वर ढूंढ दीजिये। सरदार ने भी देखा। अपने

सेवक को बुलाया, सेवक झट आया । उसे कहा कि सड़क पर जाने वाले नवयुवक को बुला लाओ । सेवक दौड़ पड़ा । सरदारनी ने कहा, क्यों बुलाते हो ? सरदार ने कहा, 'तुमने जो इसे स्वीकार किया है, सरदारनी ने कहा—कि मैंने इसे स्वीकार तो नहीं किया । यह तो कोई निर्धन श्रमी मालूम पड़ता है । मैंने तो इस जैसा आप से कहा है । सरदार ने कहा, यह तो साक्षात् तुम्हें पसन्द है ही, इस जैसा कहां ढूंढता फिरूंगा, मिले न मिले, कब मिले ! उधर सेवक ने दौड़ कर उस गरीब को जा पकड़ा । चलो, सरदार साहिब ने याद किया है ।

गरीब–मैं निर्दोष हूं (डरते हुए) परमात्मा के नाम पर मुझे क्षमा कर दो । मैं निर्धन व्यक्ति हूं, ताजी मजदूरी करता हूं । मैंने सरदार साहिब का कोई अपराध तो नहीं किया, मैं निरपराध हूं । मैं गधे और बोझ को कहां छोड़ूं ?
सेवक–मुझे कोई ज्ञान नहीं ! मुझे तो आज्ञा हुई है कि तुम को ले जाऊं । गधा भी साथ ले चलें ।

गरीब की व्याकुलता

बेचारा कांपता हुआ साथ हो लिया । मन व्याकुल है कुछ के कुछ विचार उठ रहे हैं कि सरदार पीटेगा

गधा छीन लेगा अथवा कोई बेगार कमवायेगा। गरीब आदमी हूं कैसे बनेगी ?

द्वार पर पहुंच गये। सरदार साहिब ने अपनी पत्नी से कहा, इस से पूछो। इतना नवयुवक ने सुना तो थर-थर कांपने लगा कि शायद मेरे जिम्मे कोई अपराध लगाते हैं। वह करबद्ध भयभीत होकर परे खड़ा रहा।

सरदार के प्रश्न और गरीब के उत्तर

अन्तः सरदार ने पूछा, तुम कहां से आ रहे हो? घर कहां है; क्या काम करते हो ? माता, पिता, भाई, बहिन हैं ?

नवयुवक—मैं यहां से दो-चार कोस एक ग्राम का रहने वाला हूं। मेरे पिता का स्वर्गवास हो चुका है, माता जीवित है। भाई-बहिन कोई नहीं। ताजा मज़दूरी करता हूं, लोगों का सामान लादकर नगर में ले जाता हूं और वहां से लादकर ग्राम में पहुंचाता हूं। यही एक गधा मेरी सम्पत्ति है और कुछ सामान भी और बस।

लो, सगाई हो गई ।

सरदार ने कहा, मैंने अपनी कन्या की सगाई (मंगनी) तुम्हारे साथ करदी है। माता से और ग्राम के चौधरी से कह देना कि विवाह की तैयारी करें। अब जाओ।

आश्चर्य और भय

नवयुवक यह सुन कर बड़े आश्चर्य में पड़ गया। नगर में गया. किसी से बात न की और न ही उसे मन में कुछ हर्ष हुआ, उलटा भयभीत होता रहा। जब अपने ग्राम पहुंचा तो माता से सारा वृतान्त कह सुनाया। माता भी डरी। चौधरी के घर गई। उसे समाचार सुनाया और कहा कि आप सरदार साहिब के पास जावें और उसे कहें कि मैं विधवा स्त्री हूं, उनकी पुत्री के योग्य हम नहीं। हम दरिद्र आदमी उसकी कैसे सम्भाल कर सकेंगे ? हमारे पास तो उसके बिठाने का भी स्थान नहीं है। एक कोठा कच्चा है और न ही हम में विवाह करने की शक्ति है और न ही हम में विवाह करने की शक्ति है। हम पर कृपा करें। शायद विनोद में कहा हो, कहीं आपत्ति में न फ़ंस जावें।

चौधरी ने कहा कि भला कभी सम्भव हो

सकता है कि इतने बड़े रईस ने गधे वाले मज़दूर से कन्या का सम्बन्ध किया हो, और फिर अपने आप ? अवश्य कोई विनोद किया होगा। मैं जाऊंगा।

मंगनी की पुष्टी

चौधरी दूसरे दिन कोठी पर गया और सरदार साहिब से कहला भेजा कि मुझे क्यों याद किया है ? जब सरदार को सूचना मिली तो उसको बड़े सन्मान के साथ बिठाया, और कहा आपके ग्राम के अमुक नवयुवक के साथ मैंने अपनी कन्या की मंगनी कर दी है। चौधरी ने भी उसकी माता की असमर्थता जिता दी।

सरदार ने कहा, मेरा पुत्र नहीं है। मेरी आधी सम्पत्ति भूमि, वाटिकाएं, कोठियां धन आदि जो भी हैं, सब उसको दे दी हैं, विवाह के लिए जो व्यय आवे, आप मुझ से ले जावें और उसका विवाह बड़े समारोह से करें।

बधाई

चौधरी चला गया। जाकर बिधवा को बधाई दी। विवाह की तैयारी होने लगी।

महलों का निवास

विवाह हो गया। युवक और उसकी माता दोनों अब राज्य भवन में निवास करने लगे और युवक जो मज़दूर था, आज लाखों का स्वामी बना हुआ आनन्द ले रहा है।

यह है स्वः में सविता का स्वरूप। यहां पर किसकी युक्ति और बुद्धि काम कर सकती है ? वह गुप्त प्रेरक प्रभु किस समय कैसी प्रेरणा करता है, यह ज्ञान आज तक किसी को नहीं हुआ।

(३) मिसनकोट भुवा, जिला मुजफ्फरगढ़ (पाकिस्तान) में थाना सीतापुर के प्रसिद्ध ग्राम सुलतानपुर से २–३ मील को दूरी पर एक छोटा ग्राम है। वहां कौड़ाराम जी एक सेठ रहते थे। उसी ग्राम में गाजी खान के पिता ने अपनी सम्पत्ति अपने दूसरे पुत्रों में बांट दी और गाजी खान को घर से निकाल दिया। गाजी खान विवाहित था। बड़ा दुःखी हुआ। लोगों के पशु चराने लगा। मिशनकोट में एक बड़ा ठेड़ (टीला) था।

सेठ कोड़ाराम को जब कहीं बाहर जाना होता तो गाजी खान उनकी घोड़ी के आगे-आगे चलता था।

पशु चराते समय गाजी खान उस ठेड़ पर बैठ जाता और कभी-कभी अपनी दयनीय अवस्था पर रोता रहता। एक दिन गाजी खान ठेड़ पर बैठा रो रहा था और हाथ में रखे हुए डण्डे से बेतहाशा अज्ञानवश ठक-ठक कर रहा था। भूमि पर डण्डे को बार-बार मारने से खड्ड पड़ गई। खड्ड के नीचे एक मटका धन का दबा हुआ पाया। देख कर उसे उसने दबा दिया कि रात्रि को आकर निकाल लूंगा। चुनांचे रात्रि को वह धन निकाल लिया। कौड़ाराम जी से इसका वर्णन किया। फिर धीरे-धीरे गाज़ी खान ने गरीबों की जमीनें खरीद लीं और बड़ा भूमिपति हो गया। उसके भाई निर्धन हो गए और कौड़ाराम भी निर्धन हो गया। परन्तु गाजीखान कौड़ाराम का बड़ा मान करता रहा।

यह है सवितः का स्वः में समावेश ! किस प्रकार सवितः देव ने गाजी खान का दारिद्रय विनाश करके उसे धनी मालदार सुखी बना दिया। कभी यह स्वप्न में भी न आ सकता था कि पिता से इस प्रकार तिरस्कृत किया हुआ बेटा धनी, मानी बन जाएगा।

नौवीं धारा

सवितः सवितः में

(१)

सवितः का अपना जो स्वरूप है, वह सब में है और सवितः सवितः में आप कैसा है, इसको ध्यान-पूर्वक सुनिये और पढ़िये।

कई लोग बयान करते हैं कि सवितः के स्वरूप को भिन्न-भिन्न रूप में सुनने के बाद कुछ विचित्र-सा प्रभाव प्रतीत होता है। पहले हम प्रतिदिन एक सहस्र गायत्री का जाप करते थे परन्तु अब जब 'भुवः' का स्वरूप हमारे सामने आता है तो आगे पता ही नहीं चलता कि सारा समय बीत जाता है। ऐसी अवस्था आ जाने पर इतना समझना चाहिए कि हमारा प्रारम्भिक जप केवल एक पग है आगे बढ़ाने का। जब मानव एक पग आगे रखता है तो पिछला पग छूट जाता है। उस भगवान् के चरणों में हमें बैठना आ जाए, यह सब कुछ इसी लिए हम करते हैं।

हम परमेश्वर के पास नहीं बैठे क्योंकि हमारा मन दूर चला जाता रहा। ये सब क्रियाएं अन्दर दीख रही थीं। यद्यपि हम स्थूल शरीर में कोई क्रिया

नहीं करते परन्तु जिस मन को हम ने परमेश्वर के पास बिठाना था, वह तो बैठा नहीं, वह तो दूर भाग गया। शरीर तो बैठ गया, यह तो जड़ है। परमेश्वर के साथ बैठकर यह क्या करेगा ?

बैठने वाला कौन है

बैठने वाला तो है हमारा सूक्ष्म शरीर। सूक्ष्म शरीर में हैं मन, बुद्धि, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और पांच तन्मात्राएं। इन सत्रह के समूह का नाम है सूक्ष्म-शरीर। इस शरीर में काम करने वाली शक्तियां हैं मन और बुद्धि। यह मन और बुद्धि जुड़ जाएं परमेश्वर के साथ और हमारी ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां आत्मा के समीप जाकर बाहर का कार्य न करें, तभी सूक्ष्म शरीर का परमेश्वर के समीप बैठना है। यदि ये इन्द्रियां बाहर का कार्य करती हैं तो मन, बुद्धि और प्राण भी उन्हीं के साथ हो जाते हैं।

यही हमारी प्रार्थना उपासना का तात्पर्य है कि हमारा सूक्ष्म शरीर परमात्मा के पास बैठे, यह मध्यम अवस्था है।

समाधि की अवस्थाएं

समाधि को दो भागों में बांटा गया है। एक है

असम्प्रज्ञात समाधि -- कि जिस समय परमेश्वर के बिना और कुछ भान न रहे। दूसरी है, सम्प्रज्ञात समाधि जिसमें भान तो रहेगा परन्तु सांसारिक पदार्थों का नहीं संसार की सब क्रियाएं जो हम स्थूल शरीर से करते हैं, ये सब समाधि अवस्था में छूट जायेंगी। अब जब भुवः का स्वरूप वह कहते हैं तो इस ओर ध्यान होता है, इसका नाम है एकाग्रता। ऐसे लोगों ने तो बड़ी मंजिलें तय कर लीं।

एकाग्रता का फल

एकाग्रता का फल है कि समाधि की अवस्था का प्राप्त होना। वह एकाग्रता भी समाधि में चार प्रकार की है, सवितर्क, सविचार, सानन्द, सास्मिता समाधि।

ऐसे लोगों को जप ने उपासना में लगा दिया।

जप जरूरी है

जप जरूरी है जब तक यह नाड़ियों में प्रवेश नहीं करता। ७२, ७२, १०, २०१ नाड़ियां हैं। डाक्टरों ने तो केवल ७०० नाड़ियों का साक्षात् किया है। डाक्टर लोग यह नहीं जान सकते कि हमारे अन्दर जो वासना जागी है और वह मस्तिष्क में गई वह किस

नाड़ी से गई। यह सब बातें समाधि की हैं। शरीर में तीन मुख्य नाड़ियां हैं। इड़ा पिंगला, सुषुम्णा। जाग्रत अवस्था में मन को इन नाड़ियों से कोई सरोकार नहीं। स्वप्नावस्था में मन पिंगला में होता है और सुषुप्ति में इड़ा में और समाधि अवस्था में सुषुम्णा में होता है। सुषुम्णा नाणी आत्मा के लिये है। सुषुप्ति शरीर सहित ज्ञानरहित अवस्था है और समाधि शरीर सहित, ज्ञान सहित है।

एक और नाड़ी कूर्म है, यदि मनुष्य कूर्म नाड़ी में संयम करले तो वह जल में नहीं डूब सकता। हमारे अन्दर नाड़ियां हैं। जिनके द्वारा हम परमेश्वर की उपासना करते हैं। जप इसलिये कराया जाता है कि उसके अर्जों के जानने की इच्छा पैदा हो जाए और मन को खोज में लगा दें।

गायत्री क्या देती है

गायत्री के शब्द हिपनाटिक हैं। यह औरों को भी प्रभावित करती है और अपने आप को भी। गायत्री का दरजा प्राण का है। उपासना से प्रारब्ध और पुरुषार्थ का स्वरूप सामने आ जाता है। गायत्री उपासक को दो चीज़ें देती है, एक का नाम है जिज्ञासा और दूसरी का नाम है अनुभूति। अनुभूति कोन

भुलाएं, याद रखें, इसका नाम है अभ्यास ।

सवितः के अर्थ

सवितः के अर्थ बहुत हैं। यह पहले भी बताया जा चुका है कि तीस अर्थ तो मैं बता सकता हूं। सवितः का अर्थ है रीसर्च स्कालर—अर्थात् जिज्ञासु, इसका एक अर्थ है कन्ट्रोलर—व्यवस्थापक। कर्मफल देता है तब जब वह अन्तर्यामी हो। परमेश्वर अन्तर्यामी है। अन्तर्यामी के साथ-साथ वह सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है।

प्रह्लाद की कथा तो आप ने सुन ही रखी है। राजा हिरण्यकश्यप बड़ा बलवान् राजा था परन्तु राक्षस वृत्ति का नास्तिक था। अपनी राजधानी में अपनी ही पूजा कराया करता था, परमात्मा के नाम से उसे वैर था। उसके घर में प्रह्लाद ने जन्म लिया. जब प्रह्लाद कुछ समझ वाला हुआ तो उसे पण्डित के पास पढ़ने को बिठाया गया, पण्डित उसे शिक्षा देने लगा। एक दिन राजा ने अपने पुत्र प्रह्लाद से पाठ सुना तो उसने ईश्वर की पूजा में श्रद्धा प्रगट की। हिरण्यकश्यप को बहुत आवेश आया और पण्डित को बुला कर कहा कि प्रह्लाद को समझाओ। उसे तुम क्या पढ़ाते हो ?

पण्डित ने प्रह्लाद को समझाया, ईश्वर और कोई नहीं है, तुम्हारे पिता ही सब कुछ हैं। इनकी पूजा से ही हम सबको सबकुछ मिलता है। यथा राजा तथा प्रजा। राजा नास्तिक हो तो प्रजा भी नास्तिक होती है। तभी पण्डित की मति मारी गई थी। परन्तु प्रह्लाद ने न माना। कहा - नहीं, जो संसार का रचियता है वही मेरा पूज्य परमेश्वर है, मैं मनुष्य को परमेश्वर नहीं मानूंगा। पण्डित ने राजा से कहा, प्रह्लाद समझने में नहीं आता। राजा ने प्रह्लाद को बहुत डराया और धमकाया। पण्डित ने कहा, शरीरान्त कर दिया जायेगा, मान जाओ। प्रह्लाद मौन रहा।

पर्वत से गिराने का संकल्प, ईश्वर का संकेत प्रह्लाद का दृढ़ विश्वास।

राजा ने उसे पर्वत से गिराने की ठानी। प्रभु की लीला क्या अद्‌भुत है कि प्रह्लाद जा रहा था, मार्ग में एक कुलाल की भट्टी (आवी) आ गई। कुलाल ने आवी को आग लगाई हुई थी, बरतन पक चुके थे, आवी निकाल रहा था, सब घड़े पक चुके थे परन्तु एक घड़ा दर्मियान में नितांत कच्चा निकला। प्रह्लाद ने वह घड़ा देखा और चकित हो गया परन्तु जब घड़े से

बिल्ली का बच्चा निकला तो उसका विश्वास दृढ़ हो गया कि जीवन का लेना, वध करना मेरे परम पिता परमेश्वर के हाथ में है, मेरा सांसारिक पिता कुछ भी नहीं कर सकता। जो परमेश्वर बिल्ली के बच्चे को बचाने के लिए अग्नि से जलाने की सत्ता ले सकता है और घड़े को पकने नहीं देता तो क्या वह मेरी रक्षा नहीं कर सकता ? अंग्रेजी में कहा है :—

Faith can move the mountain

विश्वास तो पर्वत को भी हिला सकता है। प्रह्लाद का विश्वास दृढ़ हो गया और इतिहास साक्षी है कि हिरण्यकश्यप प्रह्लाद का बाल बांका न कर सका।

सवितः का अर्थ है पावक—अग्नि। अग्नि को अग्नि कैसे जलाए—यह अगली धारा में देखिए।

— ० —

दसवीं धारा

सवितः को टिकाने का स्थान

सवितः का अर्थ सूर्य है। गायत्री मन्त्र साधारण नहीं परन्तु असाधारण मन्त्र है। जिस प्रकार सूर्य नारायण पृथ्वी में, चन्द्र, तारागण में प्रकाश कर देता है, उसी प्रकार यह गायत्री का सविता देव पांच ज्ञानेन्द्रियों में, पांच प्राणियों में, मानव के नस-नस तथा नाड़ी-नाड़ी में प्रकाश कर देता है इसको बड़ी गम्भीरता से सुनें : —

एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि परमेश्वर की उपासना शुद्ध अन्तःकरण से की जा सकती है अथवा परमेश्वर की उपासना अन्तःकरण को शुद्ध करती है। क्योंकि दीखने में आता है कि बहुत से लोगों का अन्तःकरण शुद्ध नहीं हुआ। यह सत्य बात है कि शुद्ध अन्तःकरण में सविता (परमेश्वर को) टिकाया जाता है। और अन्तःकरण को उपासना ही शुद्ध करती है। मैंने एक पात्र को जल से शुद्ध किया जल को टिकाने के लिए। इसी प्रकार हमारी भक्ति का ध्येय यह है कि हमारा अन्तःकरण शुद्ध हो जाए

ताकि हम परमेश्वर को टिका सकें। यदि अन्तःकरण शुद्ध नहीं हुआ तो समझ लो हमारी विधि गलत है।

विधिः—चार प्रकार की विधि होती है। धी का अर्थ है धरना, पकड़ना, वि के अर्थ हैं विशेष। तो विधि का अर्थ हुआ वह मार्ग जिसके अवलम्बन से विशेष बुद्धि प्राप्त हो सके। उसके लिये चार चीजें चाहिए। पातञ्जलि ने कहा –

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यं सत्कार सेवितो दृढ़ भूमिः"

नं० १. दीर्घकाल—अर्थात् मैं, अभ्यास में उतावल न करू। दीर्घकाल में वर्ष भी शामिल है और जन्मजन्मान्तर भी शामिल हैं और भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है—

प्रयलाद्यतमानस्तु योगी संशुद्ध सिल्विषः।
अनेकजन्मसंसिद्धिस्ततोयाति परां गतिर॥६-४५॥
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ ३-२० ॥

अर्थात् जनकादि को अनेक जन्मों के तप के पश्चात् सिद्धि प्राप्त हुई। महात्मा गांधी जी ने स्वराज्य पाने के लिये निरन्तर प्रयत्न किया और कितना काल लग गया। यह काल क्या उनसे शुरू हुआ ? यह काल तब से शुरू हुआ जब कि भारत में स्वराज्य

की विचारधारा में कम्पन पैदा हुआ । कांग्रेस तो बनी १८८५ में। परन्तु हमने तो कांग्रेस को अब समझा। और ऋषि दयानन्द ने तो इससे भी बहुत पूर्व 'स्वराज्य' का भाव प्रगट किया। यह स्वराज्य की विचारधारा इससे प्राचीन ऋषि-मुनियों में विद्यमान थी।

हम प्रतिदिन असफल रहते हैं। हमारी असफलता बनी रहती है। मैं परमेश्वर के पास बैठकर उसकी उपासना से निवृत्त होकर आता हूं और यदि आते ही उसी दम अशान्त हो गया तो मेरा किया कराया नष्ट हो गया। हमारी उपासना सफल न होने का यही कारण है कि हम परीक्षा के समय भूल जाते है। परमेश्वर की उपासना के बाद क्रोध किया, असत्य बोल दिया तो हम फेल हैं–इसी लिये हमारा अन्तःकरण फेल हो गया। तो सफलता के लिये जरूरत है सावधानी की। यदि मैंने घण्टा दो घण्टा साधन किया तो सावधानी रहेगी २४ घण्टा, तब सफलता के चिह्न प्रदीप्त होंगे। हमारे पास साधन तो हैं पर सावधानी नहीं। यही हमारी विधि की पहली गलती है कि हम उतावले बन जाते हैं, दीर्घकाल तक धैर्य नहीं रख सकते।

(२) निरन्तर करो—कई व्यक्ति यह भूल करते

हैं कि आज ६ बजे भजन में बैठ गये, कल आठ बजे। परन्तु निरन्तर करने का भाव यह है कि एक समय जों एक बार निश्चित कर लिया फिर प्रतिदिन उसी का ही पालन करना चाहिये। हम लोग ठीक समय पर जागे। नौ बजे सोयें तो, १२ बजे सोवें तो भी ठीक समय पर जागें। महात्मा गांधी प्रतिदिन ५ बजे प्रातः प्रार्थना किया करते थे। एक दिन लार्ड इरविन से बातें करते-करते रात्रि के २ बज गए २ बजे के बाद अपने स्थान पर वापिस आए और अपने साथियों को समाचार सुनाया, चरखा काता और फिर सो गए। डाक्टर अनसारी ने लोगों को कह दिया कि आज प्रार्थना नहीं होगी, परन्तु अपने नियम के पक्के महात्मा जी ठीक समय पर प्रार्थना स्थान पर उपस्थित हो गए और प्रार्थना में पूरी-पूरी भाग लिया डाक्टर अन्सारी ने देखा और चकित हो गए। डाक्टर जी ने महात्मा जी से कहा कि जिससे काम कराया जाए और उसको मजदूरी पूरी न दी जाए तो यह क्या अन्याय नहीं ? महात्मा जी समझ गए और बोले, 'डाक्टर जी ! प्रार्थना तो मेरा आत्मिक भोजन है, इससे मुझे सारा दिन शक्ति रहती है। प्रार्थना न करूं तो मेरा दिन भर का कार्य भी न हो सके।' यह है निरन्तर करने का भाव।

(३) सत्कारा सेवित:—अर्थात श्रद्धा के साथ किया गया। साध्य को समझ लूं। मेरा साध्य मेरा इष्ट देव है। उस साध्य को सिद्ध करने के लिये हम साधन को श्रद्धा पूर्वक करें। सिख लोग ग्रन्थ साहब को गुरु की देह मानते हैं वे यह नहीं कहते कि ग्रन्थ साहब का सफा खोलो, अपितु श्रद्धा से कहते हैं कि गुरु साहब का प्रकाश करो। झाड़ू देते समय वह ग्रन्थ साहब को एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर नहीं रखते बल्कि सिर पर उठाकर साफ करते हैं। हमारे अन्दर वेद के प्रति ऐसी श्रद्धा नहीं है। हम तो वेद को जहाँ-तहां रख देंगे और हम कहते हैं "वेद ऐसा कहता है अथवा वेद भगवान् ऐसा कहता है" अतः जब तक साधन में श्रद्धा न हो, साध्य की सिद्धि नहीं होती।

(४) दृढ़ भूमि—दृढ़भूमि का अर्थ है, वह स्थान अथवा आसन जो मेरी पूजा का है; उस पर बैठकर मैं दूसरी बात न करूं, न उस पर बैठकर भोजन करूं और जिस तरफ मैंने एक बार मुख किया है मेरा मुख उधर ही रहे। वास्तव में दृढ़भूमि का अर्थ है स्थिरता, संकल्प की दृढ़ता। मैं शंका न करूं, डावां डोल न होऊं, क्योंकि 'संशयात्मा विनश्यति।'

हमारे साधन के लिये ये चार चीज़ें आवश्यक हैं।

अन्तःकरण कैसे शुद्ध होगा

परमेश्वर की उपासना से हमारा अन्तःकरण इस प्रकार शुद्ध होगा जिस प्रकार सूर्यनारायण के उदय होते ही आँख देखती हैं। अब सब से पहली चीज है विचार। विचार-कम्पन से पैदा होता है। परमेश्वर ने प्रकृति के अन्दर सब से पहले ईक्षण किया, कम्पन किया। परमेश्वर में तीन चीजें हैं ज्ञान, बल और क्रिया। उपनिषत्कारों ने कहा 'स्वाभाविकी ज्ञानबल-क्रिया च' परमेश्वर की क्रिया प्रलय में उसकी (प्रकृति की) रक्षा में लगी हुई थी। परमेश्वर ने क्रिया वहां से हटाकर (प्रकृति) में दाखिल कर दी—सृष्टि उत्पत्ति के लिये।

कर्म ३ प्रकार का है

कर्म त्रिविध है। तो हमारे विकास की सर्वप्रथम क्रिया कम्पन है। परमेश्वर ने दाखिल किया अपने विचार को, विचार ने कम्पन पैदा कर दिया। मन्त्र का अर्थ है विचार परामर्श, तो गोया मन्त्र से हमारे अन्दर कम्पन पैदा हुआ, इससे हमारा विकास होगा। रुष्ट बालक की ठोडी पर माता जब अपने हाथ की

गुदगुदी से विचार को दाखिल करती है तो वह हंसने लगता है।

अब इस मन्त्र से कहां-कहां कम्पन पैदा किया? इस मन्त्र से कम्पन पैदा होगा; ७ लोकों में, भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् में। विचार हमारा निर्बल होगा तो कम्पन भी निर्बल होगा। ज्यों-ज्यों विचार प्रबल होता जायेगा तो कम्पन भी वेगवान् होता जायेगा। जिस प्रकार रुष्ट बालक की ठोडी पर माँ ने अपने विचार को, बालक के हंसाने के भाव से, हाथ से दाखिल किया तो वह विचार कम्पन करता हुआ उस नाड़ी तक पहुंचा, जो हंसाने वाली नाड़ी है। जितना कम्पन बलवान् होगा उतना बच्चा बलपूर्वक हंसेगा। और यदि वह विचार ही निर्बल हो तो नाड़ी में पहुंचने तक ही वह कम्पन कमजोर होकर अपने उद्देश्य को पूरा करने में असफल होगा। जब "भूः पुनातु शिरसि" इत्यादि मन्त्र बोलते हैं तो इन विचारों से धारायें ऊपर से नीचे को और नीचे से ऊपर को प्रवाहित होती हैं; सिर से हृदय हृदय से मूलाधार तथा मूलाधार से सहस्रार तक। उनका परिणाम यह होता है कि हमारे ये सातों चक्र मूलाधार, स्वाधिष्ठान,

मनिपूरक-अनाहत—विशुद्धि-आज्ञा—सहस्रार चक्र खुल जाते हैं। सहस्रार तक के खुल जाने पर हमें प्रकाश ऐसे प्राप्त हो जाता है जैसे सूर्यनारायण के उदय होने से प्रकाश हो जाता है। इस गायत्री मन्त्र से सातों चक्र जिनका ऊपर वर्णन किया है खुल जाते हैं। शास्त्रकारों ने कहा :—

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः" (छन्दोग्य०)

हृदय की ग्रन्थियां खुल जाती हैं और कोई संशय शेष नहीं रहता।

तो आवश्यकता है कि हम प्रत्येक शब्द के देवता को समझें। उपासक पर उन शब्दों से पैदा हुए कम्पन का क्या प्रभाव पड़ रहा है—यह भक्त की क्रियाओं से प्रकट होगा। परमेश्वर-भक्त की निशानी है—कम्पन, नाच पड़ना, उछल पड़ना, परन्तु यह काम तो लम्बा है। दो अरब वर्ष तो पहले गुजर गये। अब समझ जाएं, कुछ तो समझ जाएं।

इस योग में पहले स्वयं बीमार होना आवश्यक है, बीमारी का फिर वह इलाज कर सकेगा। डाक्टर तो बाहर की विद्या को पढ़कर आते हैं, स्वयं भी बीमार हो जाते हैं। परन्तु वह स्वयं बीमार होकर इलाज शुरू नहीं करते। वह विद्या के आधार पर

इलाज करते हैं। योगी पहले स्वयं रोगी होता है। रोग के निराकरण का जब अनुभव करता है तब दूसरों की दवाई बनता है।

—०—

ग्यारहवीं धारा

ऋषि की विचार धाराएं

दीपमालिका पर ऋषि चरणों में श्रद्धांजलि

विचार धाराएं

दो प्रकार के बीज हैं, एक बीज भूमि में बोया जाता है और एक आकाश में। भूमि वाला बीज भोग रूप में और आकाश में बीज कर्म रूप में बोया जाता है। एक भूमि में नींबू, करेला, आम बो दिए जाएं और जल सींचा जाए तो नींबू, करेला और आम अपने-अपने गुण स्वभावानुसार परमाणु को ग्रहण करेंगे। नींबू खट्टे परमाणुओं को, करेला कटु परमाणुओं को और आम मीठे परमाणुओं को अर्थात् बीज अपने-अपने सजातीय परमाणुओं को अपने अन्दर जज़्ब करेगा। ठीक इसी प्रकार आकाश में दो प्रकार

की विचार धाराएं मौजूद हैं, उत्तम से उत्तम और निकृष्ट से निकृष्ट। जिस प्रकार के विचार मानव अपने हृदय में पैदा करता है, उसी प्रकार के सजातीय विचारों के परमाणुओं को आकाश से खींच लेता है और वे विचार मानव की हृदय रूपी क्षेत्र भूमि में पनपते हैं।

वर्तमान सृष्टि को लगभग २ अरब वर्ष बीत चुके हैं, तो आज तक जितने भी योगी, तपस्वी, त्यागी और मुक्त आत्माएं कलेवर बदल चुकी हैं उनके और दुष्ट से दुष्ट व्यक्तियों की विचार-धाराएं आकाश में तरङ्गित हो रही हैं। जिस प्रकार भूमि में वपन किया हुआ बीज स्वयं अपने सजातीय परमाणुओं को अपनी ओर खींचता है, इसी प्रकार हमारे अन्दर के संकल्प अपने सजातीय परमाणुओं को आकाश से खींचते हैं।

आज हमारे लिये सौभाग्य का दिन है कि हम ऋषि के निर्वाण दिवस पर उन की पवित्र विचार-धाराओं तथा उपकार कार्यों की स्मृति अपने सम्मुख लाते हुए उनका गुण कीर्तन कर रहे हैं।

ऋषि की स्पिरिट

हमारे अन्दर शक्ति नहीं कि हम महर्षि जितना महान् कार्य कर सकें। कहते हैं कि ऋषि की स्पिरिट काम कर रही है और करा रही है। वह स्पिरिट क्या है? वह उनकी विचार धाराएं हैं जो अन्त समय की थीं :—क्षमा सहनशीलता, उदारता, प्रभुविश्वास, आत्म-समर्पण इत्यादि-२ वे सब की सब आकाश में वर्तमान हैं और आज के दिन सब पकड़ी जा सकती हैं। उनका वैराग्य, उनकी दया, उनकी ज्योति आज उसी प्रकार पकड़ी जा सकती है जिस प्रकार भूमि में डाला बीज अपने सजातीय परमाणुओं को अपनी ओर खींचता है। काश ! हमारे अन्दर तप, त्याग, वैराग्य आदि का अंकुर प्रस्फुटित होता तो हम ऋषि की पवित्र धाराओं के सजातीय परमाणुओं को अपनी ओर आकृष्ट कर जीवन बना लेते। हमारे अन्दर की भावना—सच्ची भावना हो, तो तकबीर१, तसवीर, तकरीर२ और तहरीर३ के द्वारा हम ऋषि के सद् विचारों को अपने अन्दर खींच सकते हैं। अर्थात् उनके चित्र से और उसके संभाषण से ऋषि के दिव्य गुणों को हम अपने अन्दर धारण कर सकते हैं।

१ तकबीर=बड़ाई, २ तकरीर=भाषण, ३ तहरीर=लेख।

दृष्टान्त—वीतराग स्वर्गीय श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज जो पहले वेदान्ती थे, आर्यसमाज से घृणा करते थे, रुग्ण हो गए। एक आर्य सज्जन ने उनकी इस रोग काल में ऐसी सेवा की कि वे गद्-गद् प्रसन्न हो गये। विदा होते समय श्री स्वामी जी ने उस आर्य सज्जन को आशीर्वाद दिया और कहा, क्या मांगते हो ?

दूरदर्शिता

प्रभु ने कृपा की, उस सज्जन को दूर की बात सुझा दी। उस सज्जन ने एक पुस्तक रेशमी रुमाल में लपेट कर भेंट की और कहा कि भगवन् ! यह वरदान दो कि एक बार इस पुस्तक को आद्योपांत पढ़ेंगे। स्वामी जी ने तथाऽस्तु कहा और विदा हो गये। जब कहीं जाकर उस पुस्तक को खोला तो देखा 'सत्यार्थ प्रकाश' है। पहले तो वे चिढ़ गये परन्तु तुरन्त बाद वचन याद आया कि वचन दे आया हूं कि एक बार अवश्य इसे पढ़ना है। स्वामी जी ने शुरू से अन्त तक पढ़ा तो आंखें खुल गयीं। काया पलट गयी। वेदान्ती से आर्य समाजी बन गए। यह था ऋषि दयानन्द के पवित्र लेखों का प्रभाव जिसने अपने कट्टर विरोधी को भी आर्द्र बना कर अपना बना लिया।

उस आर्य सज्जन की दूरदर्शिता सुगन्धित फल लाई।

अतः भाईयो आज का दिन वह पवित्र दिन है जिस दिन ऋषि ने अपने हृदय की सच्ची विश्वासपूर्ण, श्रद्धायुक्त विचारधाराओं को आकाश में पवित्र गायत्री मन्त्र के बार-बार उच्चारण द्वारा फैलाया कि उनके अनुयायी उनसे लाभ उठा सकें।

भगवान् करें कि हमें ऐसी सुमति प्राप्त हो कि हम ऋषि के पवित्र विचारों को समझ पावें और अन्तःकरण को शुद्ध करते हुए उन विचारों को जीवन में घटा कर अपना और संसार का संवार-सुधार कर सकें।

—०—

बारहवीं धारा

भोग विधाता सवितः

सवितः के सम्बन्ध में पुनः कहना है। गायत्री का देवता सवितः है। सवितः सर्व ब्रह्माण्ड का रचयिता, वश में रखने वाला, सबका कर्म-फल-दाता, गुप्त प्रेरक है। भोग स्वयं ही पहुंचता है।

स्वर्गीय वन्दनीय श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज दाजल (जि० डेरा गाज़ी खान) से जामपुर चले। पैदल थे। सवारी न थी। दाजल के खीर पेड़े प्रसिद्ध थे। मन्त्री ने एक माटा पेड़ों का दिया कि रास्ते में काम आयेंगे। मार्ग में स्वामी जी को प्यास लगी। एक कुएं पर पहुंचे। कुएं पर से जल लाने के लिए कुएं को चलाया। माटा जमीन पर रख दिया और कमण्डलू भर कर पीछे लौटे। माटा खोलने लगे तो जाट भूमिपति ने कहा, महाराज ! इस माटे को कुत्ता सूंघ गया है। पेड़े जाट को दे दिये। जाट का भोग था, स्वामी जी तो भोग वाहक बने। भोग भोक्ता के पास जाता है, स्वयं सवितः देव पहुंचाता है। ज़ाट को कहां पेड़े मिलने थे ?

सवितः की प्रेरणा

सवितः कैसे प्रेरणा करता है। अभी मेरे सामने यज्ञ वेदी पर सीसराम व्रती रूप में बैठा है, यज्ञोपवीत को कान पर धारण कर रखा है जैसे कि शौचादि के समय प्रायः धारण करते हैं। मैंने देखा और विचारा कि इन्हें कहूं कि यज्ञशाला में इस प्रकार यज्ञोपवीत

क्यों धारण कर रखा है। यह सङ्कल्प मेरे मन में उठा और तुरन्त सवितः देव ने उनको प्रेरणा की और उसने यज्ञोपवीत मेरे कहने से पहले, कान से उतार लिया।

भर्गः कैसे मिले ?

यदि हमारा जाप सङ्कल्प शक्ति के साथ उस सवितः तक पहुंच जाए तो उसका फल तुरन्त मिल जाए। वह फल है भर्गः। भर्गः का अर्थ है पाप विनाशक शक्ति। शास्त्रकार कहते हैं कि संकल्प रहित विचार का कोई प्रभाव नहीं होता, इसलिए हमारे जप का अथवा हमारी प्रार्थना और हमारे यज्ञ का प्रभाव नहीं होता। यदि हम सवितः को वर लें और उसे ही अपना पति, अपना सर्वस्व समझ लें तो वह हम को फल देगा। बिना वरे वह फल नहीं देगा।

सवितः में ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीनों की शक्ति वर्तमान है। सवितः का अर्थ है सकल ऐश्वर्य का दाता। वह धन जो सवितः से प्राप्त होगा, वह बन्धन में डालने वाला न होगा क्यों कि सवितः तो गर्भ से छुड़ाने वाला ही है। अतः यदि राजा अपनी संकल्प शक्ति के साथ जाप करेगा तो क्षात्र शक्ति प्राप्त होगी।

घृणा का परिणाम

जब किसी की बात नहीं जचती तो घृणा हो जाती है। परमेश्वर ने आँख बाहर रखी कि हम दूसरों के गुणों को देखें और अन्तर्ध्यान होकर अपने दोष देखें। गुण दोष तो सब में हैं। पृथ्वी में हैं, जल में हैं, वायु में हैं, सब में हैं। केवल एक परमेश्वर है जिसमें दोष नहीं। ईश्वर में, आकाश में भी नहीं। परमेश्वर ने स्वयं कहा —

ओ३म् खंब्रह्म ।। यजु० ४०-१७ ।

मेरा निज का नाम 'ओ३म्' है, मैं आकाशवत् सर्वव्यापक हूं, मैं सबसे महान् हूं।'

सर्वव्यापकता बतलाने के लिए आकाश की उपमा दी। जैसे परमेश्वर बेलाग तथा निर्लेप है इसी प्रकार आकाश निर्लेप और बेलाग है। इसलिये उसमें दोष नहीं।

घृणा सबसें बुरी है और गन्दी से गन्दी वस्तु यदि कोई है तो वह घृणा है।

घृणा व्यक्ति से नहीं होनी चाहिए। घृणा चाहिए पाप से। महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने उन से घृणा नहीं की जिन्होंने उनपर ईंट, पत्थर, रोड़े फैंके, उनसे भी नहीं की जिन्होंने विष खिलाया। बुराई से उनको घृणा थी। घृणा का परिणाम अच्छा नहीं होता। घृणा करने वाले का सब संसार बैरी बन जाता है। वेद भगवान् की आज्ञा है कि—

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
य० ३६-१८॥

प्राणीमात्र को मित्र की दृष्टि से देखें। घृणा से बचें। उसे वह क्षात्र शक्ति प्राप्त होगी जो पापों को नष्ट कर देगी। ब्राह्मण यदि संकल्प शक्ति से जाप करेगा तो उसे पाप विध्वंसक शक्ति प्राप्त होगी। और वैश्य को श्रेष्ठों की पालना करने की शक्ति मिलेगी।

शास्त्रकारों ने लिखा कि स्वाध्याय से जो सिद्धि प्राप्त होती है वह इष्टदेव का दर्शन कराती है। जप भी एक स्वाध्याय है। यह आन्तरिक स्वाध्याय है। जब मनुष्य के अन्दर किसी के प्रति घृणा पैदा

हो जाती है तो वे विचार धाराएं इतनी तीव्रता से उसके मस्तिष्क से निकलती हैं कि जब तक उस व्यक्ति के हृदय में प्रविष्ट न हो जाएं, चैन नहीं लेतीं, वे चलती ही रहती हैं। जिस प्रकार टैलीफोन पर दो व्यक्ति आपस में बात कर रहे हों तो मार्ग में से चलती वह बात एक तीसरा व्यक्ति भी सुन सकता है जिसके घर पर टैलीफोन लगा हो। इसी प्रकार इन घृणा की धाराओं को मार्ग में भी भान किया जा सकता है और फिर वे विचार धाराएं लौट कर उस पहले पुरुष के पास जाती हैं। हमारे गन्दे विचार कितने प्राणियों को अपनी गन्दी वासनाए देते जाते हैं। इसी प्रकार हमारा जप बड़े ऋषि, मुनि और तपीश्वर के पास जायगा तो उनके साथ हमारा सम्बन्ध जोड़ देगा और हर ऐसे पवित्र स्थान से हमें आशीर्वाद मिलेगी।

शक्ति और सम्पत्ति की प्राप्ति तथाउपयोग

अज्ञान से मनुष्य को दो चीजें मिलती हैं-शक्ति तथा सम्पत्ति। ऐसी शक्ति अहंकार को पैदा करेगी और ऐसी सम्पत्ति आसक्ति को पैदा करेगी। ज्ञान से उपलब्ध की गई शक्ति से दूसरे की रक्षा होगी और सम्पत्ति दान करायेगी, त्याग करायेगी। शक्ति से क्षात्रत्व और सम्पत्ति से देवत्व के गुणों की वृद्धि होगी।

उपासना में संकल्प शक्ति और जितेन्द्रियता की आवश्यकता

पहले हम कह चुके हैं कि जप बिना संकल्प परमेश्वर को स्वीकार नहीं हो सकता। उपासना के साथ संकल्प—शिव संकल्प का होना अत्यावश्यक है परन्तु यह याद रहे कि शिव संकल्प तो क्या, संकल्प शक्ति भी बिना जितेन्द्रियता के नहीं प्राप्त हो सकती। अतः उपासना के लिए जितेन्द्रियता और शिव संकल्प दो विशेष और अनिवार्य अंग हैं। एक जितेन्द्रिय भी हानी पहुंचा देगा यदि वह शिव-संकल्प नहीं रख सकता। जाप के समय, दूसरे के हित और भलाई के लिए, शिव-संकल्प साथ होना चाहिए। मानो वह शिव-संकल्प संसार के कल्याण के लिये हो। जप की विधि में मुख्य चीज संकल्प है।

सवितः पर विश्वास

सवितः पर विश्वास हो जाने पर मनुष्य की सब चिन्ताएं दूर हो जाती हैं १९३५ में क्वेटा में भुकम्प आया। एक स्त्री गर्भवती थी। धमाके से प्रसव हो गया। सब कुछ निबट लेने के बाद देवी ने बच्चे को

छाती से लगाया । इधर मकान गिरने लग गया । दो गार्डर एक दूसरे के आर-पार इस प्रकार से गिरे कि माता और बालक दोनों को चोट न लगी, परन्तु आतंक से माता के प्राण-पखेरू उड़ गए, बालक सुरक्षित रहा । जब खुदाई हुई तो बालक को अंगूठा चूसता देखा गया ।

———

दृष्टांत–१

लाहौर से एक देवी अपने छोटे दूध पीते बच्चे के साथ रावलपिण्डी जा रही थी । पति को रवाना होने से पूर्व तार दे दिया था कि मैं आ रही हूं । गाड़ी रात्रि को १२ बजे पहुंचती थी संभवतः तार समय पर न मिला । स्टेशन पर जब देवी उतरी तो देखा पतिदेव नहीं आए । घर तक एक तांगा किराये पर किया और सामानादि तांगे में रख कर घर को रवाना हो पड़ी । तांगेवाले का मन विचलित हो गया । पाप की भावना से दूसरा मार्ग ले लिया । एक पुल पर जाकर देवी से शिशु को छीन लिया और उसको पुल से नीचे गिरा दिया । बालक के गिरने की और देवी के शोर की आवाज हुई । पास में एक अंग्रेज की कोठी

थी । सन्तरी पहरे पर था । उसने ध्वनि सुनी और अंग्रेज को जगाया । वह पिस्तौल लेकर पुल पर आया तो क्या देखा कि एक देवी खड़ी है और ताँगे वाला खड़ा है । देवी से पूछा, उसने सारा वृतांत सुना दिया कि किस प्रकार वह उसे लूटना चाहता था और किस प्रकार उसने बच्चे को पुल के नीचे फेंक दिया अंग्रेज ने उसको बन्दी बना दिया और पुल के नीचे बच्चा उठाने गया, तो देखा कि एक सर्प फन फैलाए उस बालक पर बैठा है अंग्रेज को देखकर 'शू' किया अंग्रेज पीछे हट गया । देवी ने कहा कि मैं स्वयं नीचे जाती हूं । वह नीचे गई सर्प देवी को देखकर हट गया । बालक सुरक्षित पड़ा हुआ था । देवी ने उठा लिया ।

देखा आपने किस प्रकार उस सवितः देव ने देवी की और बालक की रक्षा की । सचमुच प्रभु की लीला अद्भुत है ।

तेरहवीं धारा—सवित: वरुण में

परमेश्वर का समझना कठिन

पिछली धारा में सवित: के सम्बन्ध में कहा गया। परमेश्वर के नाम और काम को समझना साधारण बुद्धि का काम नहीं, उसे समझना कठिन है। वैसे तो प्रकृति के नाम और काम को समझना भी साधारण बुद्धि का काम नहीं। अग्नि को हम प्रतिदिन देखते हैं और इसे देखकर हम यही समझते हैं कि हम अग्नि से भोजन बनाते, जल गरम करते और शीत को दूर करते हैं परन्तु इञ्जीनीयरों ने इस अग्नि से करोड़ों रुपये कमा लिये। जब प्रकृति से मनुष्य अलौकिक काम सिद्ध करके साधारण लोगों को चकित कर देता है, तो परमेश्वर का जानना समझना और उसके कार्यों को जानना और समझ कर वर्णन करना भी बड़ा कठिन है। पूर्वजों ने कहा कि वह मेधा बुद्धि से जाना जाता है। परमेश्वर व्यावहारिक, सूक्ष्म व तीव्र बुद्धि से नहीं जाना जाता। यदि ऐसा होता तो वकीलों के लिए उसका समझना आसान हो जाता। इसी प्रकार तार, रेल, रेडियो और वायुयान के आविष्कार करने वाले के लिये भी परमेश्वर का

जानना सुगम होता परन्तु प्रायः देखा जाता है कि ऐसे लोग नास्तिक होते हैं अथवा बन जाते हैं। जिस बुद्धि से परमेश्वर का साक्षात् किया जा सकता है, उसका नाम मेधा, ऋतम्भरा बुद्धि है जिसका सम्बन्ध ऋत् और सत् के साथ है।

ब्रेडला नाम का एक विद्वान् पढ़ा लिखा व्यक्ति नास्तिक था। परमात्मा के नाम से भी उसको चिढ़ थी। जहाँ उसका सोने का कमरा था, वहां उसने खाट के सामने वाली दीवाल पर लिख रखा था "God is no where" कि परमात्मा कहीं नहीं है। वह समझता और कहता था कि परमात्मा के नाम का यह ढकोसला लोगों ने बना रखा है।

प्रभु आँखें खोल देता है

जिस पर जिस समय प्रभु-कृपा हो जाए वह सिली हुई आँखें भी खोल देता है। ब्रेडला की आँखों पर अज्ञानता का आवरण आया हुआ था, मानो आँखें सिली हुई थी। बीमार हो गया, डाक्टर लोग दवाई करने लगे परन्तु कोई भी लाभ न पहुंचा सकी। आश्चर्य है कि जो दवाई इससे पूर्व इसी रोग को जिसमें वह ग्रस्त था, लाभ करती रही आज क्यों नहीं कर रही। डाक्टरों ने जवाब दे दिया। ब्रेडला के मन में

विचार उत्पन्न हुआ—शिव नेत्र खुल गया कि ऐसी कोई दैवी शक्ति है जो काल आने पर दवाई के उस लाभकारी गुण को हर लेती है। कोई शासक और व्यापक शक्ति है। दीवाल की ओर देखा तो लिखा पाया कि "God is now here" "परमात्मा अब यहां है।" वही शब्द हैं, वही अक्षर हैं, थोड़ेसे हेरफेर से, बुद्धि का आवरण हट जाने से, अब प्रभु का भान होने लगा। आस्तिक बन गया। बस उसकी कृपा दृष्टि चाहिए। वहां सवितः ने वरुण में प्रवेश करके ब्रेडला की आँखों में अपना साक्षात् करा दिया। वरुण का काम है न्याय करना, अन्त समय आ जाने पर किसी का पक्षपात नहीं करना, चाहे वह कितना ही बुद्धिमान् और विद्वान क्यों न हो।

परमेश्वर के नाम

परमेश्वर का निज का नाम 'ओ३म्' है परन्तु भिन्न-भिन्न गुणों और कार्यों के कारण उसके अनन्त नाम हैं। 'भूः' 'भुवः' 'स्वः' ये सब ओ३म् के नाम हैं। जब ओ३म् का प्रकृति के साथ मेल होता है तब से ये नाम प्रसिद्ध होते हैं। 'भूः' 'ओ३म्' से जुदा नहीं। वह तो हमारी नस-नस नाड़ी-नाड़ी के अन्दर बैठा हुआ है। हमारी रक्षा करने वाला वही है। जैसे

डी० सी० को कभी कलैक्टर, कभी डी० एम० कहते हैं। जिला का प्रबन्ध करने से वह डिप्टी कमिश्नर है, राजकीय कर आदि की वसूली तथा तत् सम्बन्धी झगड़ों के निपटाने के लिये वह कलैक्टर है और दोषियों को दण्ड देने और शान्ति स्थापित रखने के लिये वह जिला मजिस्ट्रेट है इसी प्रकार अपने कार्य के कारण प्रभु के अनेक नाम हैं। 'वरुण' का अर्थ है श्रेष्ठ। श्रेष्ठ वह है जो हमारे शत्रुओं का नाश कर दे, जो न्याय करे, वही वरने योग्य है।

वरुण छिपा हुआ बैठा है। पृदाकु—बड़े-बड़े अजगर, महान् अत्याचारी, अत्यन्त रोगों पापों अथवा शत्रुओं से वह रक्षा करता है और उनका नाश करता है। प्राणी कभी अकेला नहीं, वरुण सदा साथ है। वह हमारे कर्मों का साक्षी है, तभी ठीक-ठीक फल देता।

यजुर्वेद २०-२ में आया है—

निषाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः। मृत्योः पाहि विद्योत्पाहि ॥

वह परमेश्वर अपने व्रतों को धारण करता हुआ धरना मार कर बैठा हुआ है। उस वरुण को हम समझें। जिसने समझ लिया उसके सम्मुख पाप नहीं आ सकते।

दो चीजें हानिकारक हैं

संसार में दो चीज़ें हानिकारक हैं, ज्ञान में संशय और व्यवहार में कृपणता। संशय तो खुलने वाले द्वार को खुलने नहीं देता और कृपणता खुले हुए द्वार में दाखिल नहीं होने देती। विश्वास को भंग करने वाली शंका और धर्म के मार्ग में बाधा कृपणता है। शंका से अज्ञान बढ़ता है। दिमागी रोग और मानसिक रोग हमारे किसी पाप का फल है। वह वरुण देव किस प्रकार से हमारी रक्षा करता है, कैसे वह आततायी को दण्ड देता, दिलवाता है, यह निम्न घटनाओं में देखिये :—

(१) चन्दौसी में श्री मुकट बिहारीलाल जी शर्राफ़ हैं, आर्यसमाज के प्रधान है, बड़े सज्जन पुरुष हैं। उनका धेवता सुरेन्द्र कुमार इस समय हसनपुर इन्टर कालिज में पढ़ता है। अभी बच्चा था छोटा— १ वर्ष से छोटा। उसकी माता अपने मैके चन्दौसी आई हुई थी। बच्चे को पलंग पर लिटा कर सुला दिया। सरदी की ऋतु थी। बच्चे को सरदी न लगे, उसके लिए एक गरम अंगीठी पलंग के नीचे रख दी और आप अपनी माता के साथ पाकशाला में खाना तैयार करने में लग गई। अंगीठी के कोयले धधक उठे और खाट को आग लग गई। जिस बिस्तर में बच्चा

सो रहा था, उसको भी आग ने घेर लिया। धुंएं से कमरा भरने लगा। इतने में आर्यसमाज का चपड़ासी किसी उपदेशक के लिए भोजन लेने आया। देखा कमरे में धुआं फैल रहा है और अग्नि की ज्वालाएं बिस्तर से बाहर निकल रही हैं। कहा, माता जी! अन्दर आग है। माताएं दौड़ी, हमारा सुरेन्द्र! वह वरुणदेव—न्यायाधीश—कर्म-फल-दाता—समय आने पर ही प्राण लेता है, उससे पूर्व चाहे कितनी ही आपत्ति क्यों न हो, वह रक्षा का जिम्मेदार है। बालक की आयु लम्बी थी, बालक को उसने बचाना था, अग्नि की ज्वालाएं बिस्तर को लपेटते हुए भी, उनको बच्चे को हानि पहुंचाने की आज्ञा नहीं थी। वह सवितः देव वरुण में प्रविष्ट होकर बालक की रक्षा कर रहा था। माता ने दौड़ कर बालक को उठा लिया। एक हल्की-सी भी चोट नहीं आई न ताप लगा। वाह प्रभु! तेरी लीला!!

बालक माता के गर्भ में श्वास नहीं लेता, टट्टी पेशाब नहीं करता, परन्तु बढ़ता है। जब गर्भ से बाहर आता है उसके एक छिद्र होता है जो तुरन्त बन्द हो जाता है।

(२) हमारे एक प्रेमी लाला केवलराम ने

रानीगंज से एक कटिंग (Cutting) भेजा जिसमें था कि एक बालक की माता मर गई थी. उसके पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। पिता बालक से प्रेम-प्यार करता था परन्तु विमाता को नहीं भाता था। विमाता सदा चिड़ती रहती और अपने पति को तंग करती थी कि बालक से बहुत प्यार करता है। विमाता का द्वेष सीमा से पार हो गया। एक दिन जब कि बालक का पिता घर से बाहर गया हुआ था, विमाता ने बालक को पकड़ कर वध कर दिया और उसका मांस हाण्डी में पकाकर तैयार कर रखा। जब पति बाहर से घर आया तो उस डायन ने पति के आगे वही मांस परोस कर रख दिया। बालक को घर में न देखकर पति का उससे पूछने का साहस न हुआ। ज्यों ही वह खाने पर बैठा, प्रभु की ऐसी लीला हुई कि एक छिपकली उस मांस के कटोरे में आ पड़ी। छिपकली तो विष ही है। वह कटोरा मांस का फैंक दिया गया। दूसरी बार दूसरे कटोरे में परोस कर रखा परन्तु पूर्व इसके कि वह पुरुष खाना आरम्भ करता, एक सर्प दिखाई दिया। वह पलाल (धान की नाड़) में घुस गया। वह उठा सर्प को मारने के लिए, पलाल को आंगुल से परे हटाया तो क्या देखा कि बच्चे की

अस्थियां पड़ी हैं। बड़ा दुखी हुआ और कहा, "ओ डायन ! तू मुझे मेरे बच्चे को मार कर उसका मांस खिलाने लगी थी।" वावेला किया, पुलिस उस स्थान पर पहुंच गई और उस स्त्री को कैद कर दिया।

देखें किस प्रकार सवित: देव वरुण बनकर उस घातक को दण्ड दिलाता है ! हत्या करते समय वह स्त्री अकेली थी परन्तु उस मूढ़ को ज्ञान नहीं कि वरुण दूसरा मौजूद है और वह मेरे इस हत्याकाण्ड को देख रहा है !

(३) अब एक और पत्र आया। मालवा प्रान्त में एक डिस्ट्रिक्टबोर्ड की तिजोड़ी से ५४००० रुपया गुम हो गया। पता नहीं, कैसे ? वह रुपया सेलाब से पीड़ित लोगों की सहायता के लिये था। पुलिस में रिपोर्ट हुई। कोई पता न चला और न कोई संकेत ही मिला। वहां का प्रधान था असद्दुला। उसने परमेश्वर से पुकार की। इसके सिवाय और क्या कर सकता था। रात्रि को उसको स्वप्न आया। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के आंगन में कोई खड़ा है और कह रहा है, इस स्थान पर ५४,००० रु० दबा है। निद्रा खुल गई। देखा मैं चार पर पड़ा हूं। उठकर डी० बी० के आंगन के अहाते पर चला गया और संकेत वाले स्थान पर खड़ा हो गया।

मजदूरों को बुलाया और वह स्थान खुदवाया तो पूरा का पूरा, ५४,०००) पा लिया। कार्यालय के पांच कर्मचारियोंको पकड़ लिया गया।

यह स्वप्न कैसे आया ? छिपी हुई बात को कैसे प्रकट कर दिया ? सवितः देव खोजी बनकर खोज दे गया। वाह रे प्रभु !

(४) इसी प्रकार की घटना झंग मघियाना में हुई। यहां पार्वती देवी बैठी हुई थी; इसके पति श्री खुशाबीराम का सारे नगर में और अधिकारियों में प्रभाव था। १९३७ ई० में उसकी अकस्मात् मृत्यु हो गई। डिप्टी कमिश्नर ने न्यायालय बन्द कर दिए। वह घटना इस प्रकार हुई कि श्री खुशाबीराम ५००) रुपया लेकर सरकारी कोषाध्यक्ष के पास दाखिल कराने जा रहा था। मार्ग में एक छोटी कस्सी (खाला) पड़ती थी। श्री खुशाबीराम ने एक पग कस्सी के पार रखा और दूसरा उरवार था, उठाया ही न था, कि प्राण पखेरू हवा हो गए। रुपया और अर्ज इरसाल (वह परवाना जिसके आधार पर रुपया कोष में जमा कराना था) साथ है। लोगों ने देखा, नाला पड़ा है।

डाक्टर आए, सिविल सर्जन आये, सब आये पर वह तो मर चुका था। अब घर के सब धन सम्पत्ति, लेन-देन का उसे ही पता था। तिजोड़ियों की चाबियां उसके पास रहती थीं, लेन-देन की बहियाँ, रजिस्टर आदि सब प्रकार के हुण्डी, परचे, कागज उसके ही अधिकार में रहते थे। किसी को कुछ भी न बता गया। अब बड़ी कठिनाई हुई। पर वाह प्रभु ! तेरी लीला ! कैसे तू वरुण रूप में खोज बताता और रहनुमाई करता है।

श्री निहालचन्द उनका छोटा भाई था। रात्रि को उसको स्वप्न आया, क्या देखता है कि श्री खुशा-बीराम उसके सामने खड़ा है और उसे बता रहा है कि चाबियां अमुक स्थान पर हैं और शेष मोटे-मोटे कार्य में आने वाले कागज, पन्ने अमुख स्थान पर हैं। मानों सारा चार्ज संभाल दे रहा है। श्री निहालचन्द जी उठे और श्री खुशाबी राम के कथनानुसार सबकुछ ठीक-ठीक उसी स्थान पर आया।

वरुण ने यह सबकुछ बताया। अब बताओ ! यहां बुद्धि काम कर सकती है ? वह सवितः देव गुप्त

प्रेरक वरुण बनकर खुशाबी राम के आकार में सब परिचय दे गया। विचित्र लीला है प्यारे की !

(५)

इसी प्रकार की सच्ची घटनाओं का वृतांत पढ़िये, लेखक की अन्य कृति—प्रभु का स्वरूप में।

—०—

चौदहवीं धारा

सवितः- वरुण में

—: १ :—

वरुण वह है जो श्रेष्ठ है। वरुण परमेश्वर का नाम है, जो छिप कर देखता है। कोई पदार्थ ऐसा नहीं जो गुण अवगुण से रिक्त हो। मनुष्य अपने अनुकूल गुणों वाली वस्तुओं को पसन्द करता है। एक ईश्वर ही है जो अवगुणों से खाली है। परमेश्वर की वरुण रूप से उपासना करने का फल है कि वह हमारे कर्मों को देखता और हमारे गुप्त विचारों को भी सुनता है। वरुण न्यायकारी को भी कहते हैं। वह कैसे न्याय करता है, निम्न सच्ची घटनाओं से देखिये।

दृष्टान्त १

अत्याचार का मूल खुम्भी का मूल

मुलतान के किसी ग्राम में एक धनाढ्य भूमिपति नम्बरदार रहता था। वह न केवल ग्रामीणों पर शासन करता था और दबाव रखता था अपितु अधिकारियों से भी मेल-जोल रखता और प्रभाव बनाए रखता था। एक बार उसने अपने सेवक की स्त्री को रूपवती देख कर दुराचार का विचार किया। सेवक को विविध प्रकार से वश में लाने का उसका कोई प्रयत्न सफल न हुआ। अन्ततः एक दिन उसे आवश्यक कार्यवश बाहर दूर भेज दिया और वहां पूर्व से ही अपने अन्य सेवकों से मिलकर उसके वध करने का षड्यन्त्र रच रखा था। जब वह सेवक वहां पहुंचा तो अन्य सेवकों ने मिलकर उसका वध कर दिया और रात्रि में जंगल के बीच गड्ढा खोद कर दबा दिया। कई दिन बीत गये। उसकी स्त्री से कहा "तुम्हारा पति अभी तक नहीं आया क्या कारण है ? उसकी खोज निकालो। तुमने उसे भगा दिया है, तुम पर अभियोग चलाऊंगा, मुझे इतनी महती क्षति पहुंचाई है।" उस बेचारी को बहुत धमकाया। कुछ दिनों बाद उसके लापता होने

की पुलिस में रिपोर्ट कर दी ! खोज होती रही अन्ततः पंचायत-नामा बना कि शायद मर गया है।

अब नम्बरदार को उस स्त्री पर अधिकार करने का सुगम अवसर मिल गया। पर वाह रे भाग्य ! किसी सूचक ने बेनाम दर्खास्त दे दी कि नम्बरदार ने उसका वध करा दिया है। उन दिनों बेनाम पत्रों की खोज को महत्व दिया जाता था, क्योंकि देने वाला सत्यासत्य के निर्णय के लिये ही शुद्ध भावना से देता था; परन्तु बलहीन और भय के कारण बेनाम भेजा जाता था। नम्बरदार पकड़ा गया परन्तु पुलिस अधिकारियों ने उसे ज़मानत पर छोड़ दिया।

सत्य के अभिभव का प्रयत्न

पैसे की बादशाही थी। बड़े प्रभावशाली साक्षी दिये। अभियोग सैशन सुपुर्द हुआ। सैशन जज सरल और सत्यस्वभाव ईश्वर भक्त था, उसके सन्मुख साक्षी अनुकूल होने के कारण अभियोग सिद्ध न हुआ। अब निर्णय सुनाना था। तिथि निश्चित कर दी गई। तिथि से एक दिन पहले अपराधी के मित्र, सम्बन्धी, शुभ समाचार सुनने के लिये पुष्पमालायें, हर्ष के सामान

पारितोषिक और सहभोज की तैयारियां करने लगे।

"मा दर चि ख्यालेम
ओ फलक दरचि ख्याल"

"हम सोचते कुछ हैं परन्तु प्रभु
को क्या स्वीकार है।"

सविता देव की गुप्त प्रेरणा

रात्रि के समय सेशन जज निर्णय लिखने के लिए बैठे तो लेखनी रुक-रुक जाती ! प्रमाण उसको बरी करने की प्रेरणा देते पर वहां तो एक और ही प्रेरणा काम कर रही थी। जब लिखने लगे कलम छूट जाये। हाथ पांव बंध जायें। क्या रहस्य है ? सोचते लगता कि अवश्य मुझे कोई गुप्त शक्ति रोक रही है। कैसे लिखूं ?

पुकार और प्रकाश

अब परमेश्वर से प्रार्थना की और सो गया कि सुबह लिखूंगा। स्वप्न देखा। रात्रि है, घने जंगल में वह खड़ा है। कोई कह रहा है अमुक स्थान पर मृतक का शव दबा है जो वध कराया गया था। बस इतना दृश्य देखा, निद्रा खुल गयी। स्वप्न को मिसल पर

नोट किया। न्यायालय में पहुंच कर कुछ सहयोगी लेकर उसी स्थान की ओर प्रस्थान किया। पहुंचकर गढ़ा खोदने की आज्ञा की। खोदने पर उसी हत पुरुष का शव मिला ! चकित रह गये। वाह प्रभु। तेरी लीला !. गुप्त रीति से सत्य और न्याय की प्रेरणा की और पथ दर्शाया !

अभिमान का चकनाचूर

परमात्मा को अभिमान से चिढ़ है। शव की प्राप्ति होने पर अपराधी को बन्दी गृह में डाल दिया ! आह्लाद के झूठे सामान धरे धराये रह गये पापी को कर्म फल मिला, "**अत्याचार का मूल खुम्भी का मूल है।**" देखो ! कैसे प्रभु सविता देव गुप्त प्रेरक वरुण रूप से रक्षा करता है।

—: २ :—

वरुण का काम सुनना और सुनाना है। छज्जू भक्त को जिस समय आवाज आई, उस समय कौन था आवाज को स्वीकार करने वाला ?

जब कोई मर जाता था तब छज्जू भक्त शव के आगे-२ नाचता-गाता था। जब उसका अपना लड़का मर गया तब भी पूर्व प्रकार वह इकतारा लेकर नाचता हुआ शमशान तक गया, तो लोगों नें कहा भक्त जी! आप धन्य हो, तो भक्त जी ने कहा नहीं, 'जिस तन लागे सो तन जाने। तारा तो वही है पर तार वह नहीं है, जो दूसरों के शव के अवसर पर मारू गीत में हुआ करती थी। एक दिन भक्त जी रावी रोड पर दुविधा में जा रहे थे। कभी सड़क के एक ओर कभी दूसरी ओर मतवालों की तरह हो जाते। पीछे से एक भंगिन मैला उठाए आ रही थी। उसने देखा तो भक्त को कहा 'भक्त जी, एक ओर हो जाओ।' भक्त जी ने समझा यह आकाश वाणी है। द्विधा में कब तक पड़े रहोगे। तुम चाहो संसार को भी खुश करो और ईश्वर को भी प्रसन्न करो, यह नहीं हो सकता। एक के होकर रहो। इस वाणी ने उसके हृदय पर इतना प्रभाव डाला कि उस दिन से वह अपने चौबारा में बैठ गया और जीवन पर्यन्त वहीं रहा।

हम उपदेश सुनते हैं एक कान से तो दूसरे से

निकाल देते हैं। जब उपासक ने परमेश्वर को वर लिया तो परमेश्वर भी उसको वर लेता है, फिर जैसे पति अपनी पत्नी की नेकी-बदी और दुःख-सुख का जिम्मेवार हो जाता है ऐसे परमेश्वर अपने भक्त का जिम्मेवार है। परमेश्वर ने अपनी वरुण शक्ति उस भंगन को दी कि भक्त जी ! एक ओर हो जाओ। छज्जू ने आकाशवाणी समझी और चौबारे पर बैठ गए और जीवन पर्यन्त वहां ही रहे, उतरे ही नहीं।

इसी प्रकार वरुण ऋषि दयानन्द की आँख में आया। वरुण ज्ञानेन्द्रियों में आता है। जिस स्थान पर वरुण आता है वहीं स्वीकार करता है।

एक शक्ति प्रकृति की भी है। मैंने रोटी खाई, ग्रास खा लिया, उसमें रेत, कंकर, बाल अथवा प्रतिकूल वस्तु है, वह ज़बान (जिह्वा) उसी समय फेंक देगी।

वरुण आवरण को दूर करने वाला है। वरुण की आवाज़ आदि को आत्मा स्वीकार करती है।

—: ३ :—

रियासत बहावलपुर में एक नवयुवती ने अपने पति को मार दिया। वह कारावास में भेज दी गई।

सुबह सादिक—रियासत का नवाब--कारावास में देखभाल गया। स्त्री रूपवती थी, उसने पति को इसलिये वध किया था कि वह कोढ़ी था। नवाब साहिब उस स्त्री को देखते ही मोहित हो गया। आज्ञा दी कि द्वार खोल दो, उस युवती को बन्धन से मुक्त कर दो। उस युवती को कारावास से बाहर निकाल दिया गया और नवाब ने उससे विवाह कर लिया। अब वह बन्दी न रही अब वह राज्य माता बन गई और दण्ड भी समाप्त हो गया। लड़की ने तो नवाब को स्वीकार नहीं किया परन्तु नवाब ने लड़की को स्वीकार किया! इस प्रकार दो सूरतों में स्वीकार हो सकता है। (१) परमेश्वर स्वयं स्वीकार करे अथवा (२) उपासक परमेश्वर से अपने आप को स्वीकार करावे।

परमेश्वर जिसको स्वीकार करता है उसकी निशानी यह है कि उसको जन्म से वैराग्य होता है और जो ईश्वर से अपने आप को स्वीकार कराता है उसकी निशानी यह है कि पहले उसकी स्त्री मर जाती है, फिर पुत्र मर जाता है फिर धन छिन जाता है। वह इन सब के छिन जाने पर भीतर ही भीतर सन्तुष्ट और प्रसन्न होता है।

परमेश्वर स्वीकार करता है जैसे स्त्री अपने आप

को पति के समर्पण करती है, अथवा पिता अपने आप को पुत्र के अर्पण कर देता है। तीसरे परमेश्वर स्वीकार करता है जब भक्त समर्पण कर दे।

सफलता की विधि

जो भी उपदेश सुना हो, घर तक जाते हुए उसे मन में दोहरा लें, फिर भजन के समय दोहरा लें। तब कहीं जाकर हृदय में धारण होगा और सफलता होगी। जितनी श्रद्धा और दिल के साथ परमेश्वर की उपासना करेंगे उतना परमेश्वर उपासक के हृदय में बस जाता है। परमेश्वर दया करता है हम थोड़ा सा उस दया को अनुभव करें तो अश्रुपात क्यों न हो? अश्रु पूंछने वाला भी चाहिये। यदि रुदन भी स्वयं करूं और अश्रु भी स्वयं पूंछ लूं तो फिर कोई नहीं पूछता। जब परमेश्वर पूंछता है तो वह बात पूछ लेता है। जब दूसरे अश्रु पूंछते हैं तो उसके साथ रोने वाला चुप होकर बातें करता है। जब परमेश्वर अश्रु पूंछेगा तो वह भूल फिर नहीं होगी। उस परमेश्वर का हम को वर लेने अवथा स्वीकार कर लेने का भाव यह है कि अब हमारे अन्दर पाप कम हो जायेंगे। जिस व्यक्ति के कुछ भी दोष झड़ गए तो

वह अनुभव करता है कि परमेश्वर ने मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया है, तो जितना स्वीकार किया है, उतना पाप तो कम हो गया।

वरुण का स्वरूप कैसे समझें ?

उस वरुण की बड़ी महिमा है। पूर्व वर्णित घटनाओं को बार-बार सामने लाएं, तो वरुण का स्वरूप सामने आ जाता है और फिर हमें पाप करने से भय आता है।

परमेश्वर करे कि हम वरुण के स्वरूप को इस प्रकार जानकर जीवन सफल बना सकें।

—o—

पंद्रहवीं धारा

भारतीय संस्कृति का मूलमन्त्र

भारतीय संस्कृति का मूल-मन्त्र ईश्वर विश्वास है। और देशों में ईश्वर-विश्वास को मुख्य नहीं रक्खा गया। यह हमारा भाग्यवान देश है कि जिसमें ईश्वर विश्वास आरम्भ से रक्खा गया है। मूल-मन्त्र गायत्री है। जब तक मनुष्य समझ नहीं लेता कि ईश्वर-सर्व-व्यापक है, वह पाप से नहीं बच सकता।

ईश्वर शून्यसम व्यापक है :—जैसे शून्य सब अंकों में व्यापक है, वैसे परमेश्वर सर्वत्र-व्यापक है। ६ को ६ से घटायें तो शून्य बचेगा। जितनी जो वस्तु है, उतनी ही वस्तु निकाल ली जाये तो शून्य जो उनमें मौजूद था, वही रहेगा, वही प्रकट हो जावेगा। जब कुछ भी नहीं रहा वही बचेगा जो सब में दिया हुआ था। तो भगवान् सचमुच शून्य है। यदि होता तो लोग डरते। यदि ऐसा कर देता कि चोरी करने पर चोर के हाथ बांध देता, अर्थात् पापी को पाप करते हुए ही दण्ड दे देता है लोग मान जाते। यदि आँख से पाप कर लेने पर आंख को भींगाकर देता या कानी बना देता, वाणी से असत्य बोलने पर जिह्वा सूख जाती तो लोग मान जाते—परन्तु भगवान् ने अपने अस्तित्व को नहीं में छिपा दिया ताकि मनुष्य की स्वतन्त्रता में फर्क न आवे।

मनुष्य जन्म का ध्येय

जब बालक पैदा होता है तो अपने जीवन की निशानी परमेश्वर के नाम से 'उवां-उवां' अ, उ, म्— 'ओम्' देता है।

संसार का कोई भी प्राणी चाहें वह पैदा होते ही चरने लग जावें, उड़ने लग जावें, वह मां की भाषा

नहीं बोलेगा परन्तु एक मनुष्य ही है कि जब उत्पन्न होता है प्राण लेता है तो 'उवां-उवां', मंगलमयी मां को पुकारता है। मनुष्य ने जन्म लिया भक्ति करने के लिये। परमेश्वर शून्य के समान व्याप्त है, उसे कहते हैं "वरुण।" भक्ति सफल है जब वरुण की समझ आ जावे। परन्तु भक्ति के संस्कार सबके नहीं जगते संस्कार जगे मीरां के। जब कोई बरात उसकी गली से गुजरी, सब बरात को देखने के लिये छत पर चढ़े तो वह भी चढ़ गई। मीरां उस समय अभी बालिका थी। उसने कहा कि मैं भी वरूं, तो वरा परमेश्वर को।

वरना कब होता है

लड़की चाहती है कि मैं किसी को वरूं। वरने की इच्छा पैदा नहीं होती जब तक उसके लक्षण प्रकट न हों। १२, १३ वर्ष के बाद वह रजस्वला हो जावे तो उसका यह अर्थ है कि प्रकृति ने उसके अन्दर एक ऐसी निशानी पैदा कर दी कि अब वह वरने की इच्छा करती है और उसके स्तन बढ़ने लगते हैं। तो परमेश्वर को भी जो वरना चाहता है उसकी भी निशानियां हैं।

१- जब मनुष्य भगवान् की उपासना में लगता है तो उसको अधर्म से, पाप वृत्तियों से घृणा हो जाती है और धर्म में रुचि पैदा हो जाती है। परन्तु हम देखते हैं कि बहुत से व्यक्ति हवन, सन्ध्या, जप करते हैं परन्तु अधर्म से उनकी निवृत्ति नहीं है। तो अभी उन का अधिकार परमेश्वर में नहीं है।

२- बहुत से आदमी अहो रात्रि पूजा करेंगे परन्तु असत्य से नहीं हटेंगे। उनका अधिकार भी परमेश्वर में नहीं है। यह ऐसे हुए जैसे लड़की को मासिक धर्म तो होता है परन्तु विवाह करने के लक्षण नहीं। छाती नहीं बढ़ी।

३- एक वे हैं जो अधर्म नहीं करते परन्तु धर्म में रुचि नहीं है। ऐसे मनुष्य का भी परमेश्वर में कोई दर्जा नहीं। हम कहते हैं पशु पाप नहीं करते परन्तु पुण्य भी नहीं करते इसलिए वह पशु समान हैं।

४- जो कहता है झूठ बोलना पाप है परन्तु उसे ग्लानि नहीं तो यह केवल कहना-मात्र है।

पापी तीन प्रकार के हैं

पापी तीन प्रकार के हैं। व्यभिचारी, दुराचारी, मिथ्याचारी। मिथ्याचारी अधिक पापी है, दुराचारी

को लोग दुराचारी कहेंगे और वह पकड़ा भी जायेगा, परन्तु मिथ्याचारी तो मन में पाप करता है। दम्भ करता है वह कैसे पकड़ा जावे। मिथ्याचारी बहुत हैं। दुराचारी तो पकड़ा जाता है और व्यभिचारी घर में टक्कर मारता है, पाप करता है। इसलिये हमें वरुण का स्वरूप नजर नहीं आता। वरुण तो हमारे आवरण को दूर कर देता है।

जब पाप से मुझे घृणा होने लगी और मैं निर्बल रूप मे विरोध करने लगा तो कुछ न बना पाप जड़ से तो न उखड़ा। परमेश्वर की शक्ति जड़ों से उखेड़ देने वाली है। भर्गः का अर्थ है जड़ से उखेड़ देने वाला। इसलिए हमें जरूरत है स्वाध्याय की, सत्संग की और विद्वानों की जो हमें समझायेंगे, हमारी सहायता करेंगे। वरुण चाहे तो एक दम ही बुराइयों का अन्त कर दे। वरुण जल का देवता है। जल मूल में चला जाता है और उसे पोला कर देता है। और एक झोंका वायु का आवे तो जड़ से उखेड़ देता है। इसलिए आया "तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।" वरुण को जान लेने पर भर्गः का स्वरूप समक्ष आयेगा।

भर्गः का स्वरूप बिना विश्वास के नहीं जाना जाता

मेरे शहर की बात है, एक प्रतिष्ठित कुलीन व्यक्ति पर मुकदमा हुआ लेन-देन का। कोई लिख-पढ़ न थी, जबानी बात थी। न्यायालय में उसने कह दिया, मैंने इसका कुछ नहीं देना। इन्कार कर दिया। वादी ने साक्षी पेश की, परन्तु मौखिक साक्षी पर कौन विश्वास करे। जज ने न माना। अन्त में वादी ने कहा—अगर प्रतिवादी पुत्र की शपथ उठा ले तो रुपया मेरे घर आ गया। इसका एक पुत्र है। झूठी शपथ नहीं उठायेगा। अब प्रतिवादी ने मन में विचार किया यदि मैं शपथ नहीं लेता, झूठा बनता हूं। शपथ उठाई। लोगों ने सुना, और सब चकित हो गये।

करन्त लहन्त

एक पाप को छिपाने के लिये मनुष्य दूसरा पाप कर देता है। झूठ बोल दिया। घर आया, देखते ही लड़का मर गया। सारे शहर में यह समाचार विद्युत की तरह फैल गया कि अभी पा लिया। करन्त लहन्त। ऐसा तो माना नहीं जा सकता कि उसके कहने मात्र से लड़के की आयु समाप्त हो गई परन्तु परमेश्वर कभी-कभी ऐसा

दिखा देता है। जिसको परमेश्वर का विश्वास नहीं वह कैसे भर्गः के स्वरूप को जानेगा। ईश्वर विश्वास के बिना भर्गः स्वरूप नहीं जाना जाता।

वरुण का न्याय

मेरे शहर की बात है। सरदार कौड़ा खान एक बड़ा भारी रईस था। लाखों बीघा भूमि का अधिपति था। वह मर गया। कौड़ाखान की सन्तान न थी। उसकी जायदाद को सरकार ने उसके उत्तराधिकारियों और विधवाओं में बाँट दिया। सैदखान कौड़ा खान का एक भतीजा था। उसने इस बांट के विरोध में चीफकोर्ट में अपील की। चीफकोर्ट ने पटवारी के कागजात देखने चाहे।

सरदार सैदखान को समय दिया गया कि अमुक तिथि तक कागजात पेश करो। पटवारी ऊधोदास था। सैदखां नें पटवारी को बुलाया, कहा कि कागज ले आओ, कुछ देखना है। पटवारी कागज ले आया और वे दोनों तहखाने के अन्दर चले गये। कौड़ा खाँ का मकान इतना विशाल था कि उसके अन्दर जो जावे मार्ग भूल जावे। तहखानें में सैदखां ने पटवारी से कहा कि इस प्रकार के कागज मेरे पक्ष के बना दो,

चीफ कोर्ट में पेश करने हैं। नहीं बनाग्रोगे तो पिस्तौल से मार दूंगा।

पटवारी ने सोचा कि अजब विपदा में फंस गया। सूझ आई, कहा बहुत अच्छा ! नौकरी चली गई तो रोटी तो आप मुझे देंगे ही, परन्तु जिस प्रकार का कागज आप चाहते हैं और जिसको देखकर वह कागज बनाना है वह कागज साथ नहीं लाया। कहा जाओ, कागज ले आओ। यह सैदखांन इतना अत्याचारी था कि लोग उससे भय खाते थे। चलती फिरती स्त्रियों को उठवा लेता था, मन्दिर तुड़वा देता था। बड़, पीपल जिनको हिन्दू लोग पवित्र वृक्ष समझते हैं, वह कटवा देता था। हिन्दुओं के धार्मिक भावों के साथ क्रीड़ाएं करता था।

पटवारी चला गया, और सीधा जाकर तहसीलदार को वृतान्त सुनाया, जिस ने डिप्टी कमिश्नर को रिपोर्ट की कि इस प्रकार कागजात सरदार कौड़ा खान के घर पड़े हैं। डी० सी० ने कागजात मंगवा लिये और सैदखान पर अभियोग चला दिया।

प्रभु लीला? करनी का फल

प्रभु लीला देखिये ! समय आया सैदखान को अधडङ्ग हो गया। अब स्त्री और पुत्रों ने साथ छोड़ दिया। एक दिन लेखक गया और पूछा क्या समाचार है ? कहा, महाशय जी ! क्या कहूं। करनी का फल भोग रहा हूं। अब अपनी आँखों से देख रहा हूं कि मेरे सामने मेरी स्त्रियों को लोग उठा ले जाते हैं, कुछ कर नहीं सकता हूं (६½–७ फुट का कायाधारी हृष्ट-पुष्ट—अब कुछ नहीं कर सकता–विवश है) अब कहता है "खुदा बड़ा कादिर है" अर्थात् बड़ा बलशाली हैं। तो मनुष्य डरे !

सावधानी की आवश्यकता

वरुण के स्वरूप को समझने के लिये जरूरत है कि मनुष्य सामने होने वाली घटनाओं का बड़ी सावधानी से अवलोकन करे और उसके मूल कारण को जानने का प्रयत्न करे। श्री अरविन्द जी कहते है कि जब कोई अनिच्छत कुवृति जागे, तो तत्काल सोचें कि यह कहां से आ रही है, अन्दर से अथवा बाहर से। यह धारा प्रवाह चल रही है। यह बेतार तार है। श्री हंसराज वायरलैस मेरे (लेखक के) उस्ताद का

पुत्र है। उसने खेल दिखाया, एक छोटी सी मोटर बनाई, कहा-चल ! मोटर चल पड़ी। हंसराज जी ने कराची में खेल दिखाया। विद्युत के पंखे को देखकर कहा, फैन (Fan)-पंखा चल पड़ा, कहा लाइट (Light) बल्ब प्रकाशित हो गया है। मैंने पूछा यह विद्या कैसे पाई, तो उत्तर दिया मैं तीसरी श्रेणी में पढ़ता था, एक दिन एक छिपकली छत्त से गिर पड़ी। मैंने उसकी पूंछ काट दी तो क्या देखता हूं कि दोनों कटे अंग अपने-अपने स्थान पर तड़प रहे हैं। मैं बड़ी सावधानी से देखता रहा, अपनी तार उसके साथ लगा दी। तन्मय हो गया। तब से मुझे यह ज्ञान हो गया, कि बेतार से भी समाचार भेजे जा सकते हैं।

इसलिये वरुण के स्वरूप को जानने और समझने के लिये घटनाओं को बड़ी सावधानी और एकाग्रता से अवलोकन करने की आवश्यकता है।

— — —

सोलहवीं धारा

मूल मन्त्र की महिमा

वरुण के स्वरूप को फिर से सुनें। भारतीय संस्कृति का मूल मन्त्र ईश्वर विश्वास कहा गया है। ईश्वर विश्वास उत्पन्न करने वाला और उसको सुदृढ़ बनाने वाला गायत्री मन्त्र है, तो गायत्री मन्त्र ही मूल मन्त्र है। यही मन्त्र सृष्टि के आदि में परमेश्वर ने ऋषियों को दिया था। जो आदि में दिया वही अन्त में आया। यज्ञोपवीत धारण करते समय और वेदारम्भ से पूर्व इसी पवित्र मन्त्र का उच्चारण करते हैं। महाराज ऋषि दयानन्द ने अन्तकाल में इसी पवित्र मन्त्र द्वारा आराधना की थी। वेदपाठ करते समय गायत्री को आदि में, मध्य में और अन्त में पढ़ना चाहिए। गायत्री मन्त्र ऐसा पूर्ण मन्त्र है कि इसमें मानव जीवन का सारा प्रौग्राम भरा हुआ है। पशु से मानव, मानव से देवता बनाने वाला और देवता से परब्रह्म का दर्शन कराने वाला यही मन्त्र है।

विस्तार

विस्तार में यों समझिये ! गायत्री में जो पहली भूमिका है, वह है कर्म। कौनसा कर्म करना चाहिए ?

पशुओं का, मनुष्यों का अथवा देवताओं का ? पशु जो कर्म करते हैं वे बन्धे-बन्धाए करते हैं। उन का कर्म उपकार का कर्म नहीं कहलाया जाता। वे हमारी सेवा के साधन हैं वे सेवक नहीं। सेवा करने वाला वह है जिसमें ज्ञान हो। मनुष्य सेवा करता तो इन्हीं पदार्थों से है परन्तु ज्ञान से करता है। सूर्य, चन्द्रमा आदि सेवा तथा उपकार करते हैं परन्तु उनको अपना ज्ञान नहीं। इसी प्रकार पशु सेवा करते हैं। एक मानव है जो संकल्प से और ज्ञान से सेवा करता है। इसी लिए यह कर्म दो प्रकार का हो जाता है :—

एक मनुष्यों का कर्म जिसमें अपना स्वार्थ और दूसरे का परमार्थ भी हो और दूसरा देवताओं का कर्म जो दूसरों के हित के लिए हो। पशु करता है बंधा हुआ; मनुष्य करता है लोभ से; देवता करता है कर्त्तव्य समझ कर स्वभाव से। जब हमारा कर्म स्वभाव से होगा तब हम देव कहलायेंगे।

चार प्रकार के सेवक मनुष्य

कई आदमी ऐसे हैं जो तन से सेवा करेंगे, धन से नहीं। एक वे हैं जो धन से सेवा करेंगे तन से नहीं। एक वे हैं जो न तन से सेवा करते हैं न धन से अपितु वे मन से सेवा करते हैं। चौथी प्रकार के वे

लोग हैं जो तन, मन, धन तीनों से सेवा करते हैं।

जिस प्रकार एक लड़की जब ब्याही जाती है तो वह अपना सर्वस्व पति के अर्पण कर देती है। पति के अर्पण कर देने से वह पति के नंग आदि स्वरूप को समझ और जान जाती है। यदि वह लड़की अपना सर्वस्व अपना तन, मन, धन तीनों पति के अर्पण न करे अर्थात् माता-पिता के घर को छोड़कर अपना सर्वस्व पति के अर्पण न करे, नंगी न हो जाए तो वह पति के स्वरूप को कैसे जान सकती है? इसी प्रकार जब भक्त अपना सब कुछ अर्थात् तन, मन, धन प्रभु के अर्पण कर देता है, नंगा होकर प्रभु के पास जाता है तो वह प्रभु का बन जाता है। हमारे वस्त्र, हमारा ऊपर का वेष हमारी सम्पत्ति यह सब कुछ हमारी बाहर की हैसियत को प्रकट करती है। जब उनको उतार दिया, अपने से पृथक कर दिया तो क्या कहेंगे। महर्षि दयानन्द ने तप करने के लिए कोपीन पास रखी और सब कुछ उतार दिया। उस समय उनके पास सिवाय परमेश्वर के और कुछ भी न था। इसी प्रकार जब भक्त पूर्ण रूपेण प्रभु को वर लेता है तो वह वरुण के स्वरूप को जान जाता है और फिर उसके पाप विनाशक

भर्गः का ध्यान करता है। जब तक वह वरुण के स्वरूप को जान नहीं लेता, जब तक वह अपना सर्वस्व प्रभु अर्पण नहीं करता, वह प्रभु के भर्गः का ध्यान नहीं कर सकता। तो मंजिलें हमारी कठिन हैं।

ईश्वर और जीव का सम्बन्ध गणित विद्या के आधार पर

गणित विद्या में ९ ही अंक हैं और उनके आधार पर सारा गणित-शास्त्र खड़ा है। एक परमेश्वर है परन्तु २ से ९ तक सब जीवात्मा हैं। एक से २ बड़ा है तो हम सब बड़े हुए। हमारा बढ़ना इस प्रकार है। सबसे छोटा जीव दो में है। दुष्ट आदमी तो गिनती में नहीं। वह दो में नहीं। लेकिन जब कोई भी परमेश्वर को अपने साथ लगा लेता है तो वह दो बन गया। परमेश्वर को साथ लगा लिया और कुछ उपकार कर लिया अर्थात् परमेश्वर के किसी काम को किया उसका दर्जा बढ़ गया। अब दो (२) वाले ने परमेश्वर को साथ लिया तो वह तीन हो गया। २ से ८ तक सब मनुष्य हैं। ९ मनुष्य की अन्तिम पराकाष्ठा है। महान् पुरुष जितने आए उनका दर्जा ९ का है। ८ तक मनुष्य उन्नति ही उन्नति करता जायेगा।

९ के बाद मनुष्य के पास कोई शक्ति नहीं जिससे वह कोई काम कर सके। अब ९ पूर्ण है। ९ की वृद्धि नहीं होती, यह ९ ही रहेगा। ९ के साथ १ जोड़ा, १० बन गए तो ९ ने अपने आपको शून्य बना लिया। ९ ने अपना नाम मिटा दिया। जिस प्रकार वरुण सब में था उसी प्रकार ९ अपने नाम को मिटा कर सब में बस गया। जिस प्रकार शून्य सब अंकों में निहित है, छिपी हुई है, इसी प्रकार वरुण सब में छिपा हुआ है जिस प्रकार ८ में से ८ खारिज करने पर शून्य प्रगट होती है इसी प्रकार सर्वस्व अर्पण करने पर वह जीव भक्त बनकर सब में प्रगट होगा, उसकी जात वही हो गई जो परमेश्वर की है, जैसे जब कन्या ने माता-पिता के घर को छोड़ पति को वर लिया, वे एक हो गए, उसकी जात वही हो गई जो उसके पति की है। घर भी दोनों का स्त्री-पुरुष का एक हो गया। अब क्या बदला? इसी प्रकार महापुरुषों की जात भी वही हो गई जो परमात्मा की है अर्थात् वह भगवान् बन गए। भगवान् दयानन्द, भगवान् बुद्ध, भगवान् कृष्ण इत्यादि।

—०—

९ शून्य कैसे बना ?

यह ९ शून्य कैसे बना, इसको भी समझना चाहिए। १० में से शून्य उड़ा दें तो १ बचा अर्थात् ९ घण्टे। १०१ में शून्य उड़ा दें तो ११ बचे अर्थात् ९० घण्टे। बस यह एक रहस्य है जिसको हमने समझना है। जब परमेश्वर भक्त को अपने साथ मिलाता है तो वह जोड़ता नहीं, जमा नहीं करता, उसकी हस्ती (अस्तित्व) मिट जाती है। ९ का जो रूप था, वह शून्य का रूप था। भगवान् राम, भगवान् दयानन्द आदि महापुरुषों को देखो, न अहंकार है, न अहं हैं, न मम है।

यह अवस्था कब आयेगी ? तब, जब वह सर्वस्व को दे दे। इसी प्रकार महापुरुषों ने जो कहा अथवा जो किया वह यन्त्र रूप होकर कहा और किया। आज आर्यसमाज से ऋषि दयानन्द कों हटा दो तो क्या रहेगा, कुछ भी नहीं, शून्य ही तो रहेगी। तो इस अन्तिम अवस्था को कब पहुंच जायेंगे ? इसी अवस्था के लिये ऋषियों ने कहा (अर्थात् पंच रूप होकर कहा और किया-संवादवृत संस्मरण)

भर्गः किरण

मनु महाराज ने कहा है कि विधिपूर्वक गायत्री

का जप एक मास पर्यन्त नियमानुसार करता है वह पापों से ऐसे छूट जाता है जैसे सर्प केंचली से छूट जाता है। जब तक केंचली है वह बन्धा हुआ है हिल नहीं सकता। केंचली से छूटने पर वह बड़ी तीव्रता से विचरता है। इसी प्रकार जब तक पापों का बन्धन है, जीवन भार है, गति नहीं हो सकती। पापों से मुक्ति हो जाने पर मानव की गति तीव्र हो जाती है। जब ऐसी अवस्था आ जाए तो समझ लो, भर्गः धारण हो गया।

मेरी आँख को दिखाने वाला सवितः सूर्य है। भीतर दिखाने के लिये ज्ञान-चक्षु तीसरा नेत्र है, जो हमारा सब का बन्द है। उसको सवितः—परमेश्वर ही दिखाएगा। सवितः की उस किरण का नाम है भर्गः। तो भर्गः प्रभु सवितः की एक किरण है जो हमारे अन्दर के नेत्र को दिखायेगी। यदि हमारी आँख सूर्य की किरण को धारण नहीं करती तो वह देख नहीं सकती। पृथ्वी धारण नहीं करती तो उपजाऊ नहीं हो सकती। इस प्रकार की भर्गः की किरण है।

भर्गः का अर्थ

भर्गः का अर्थ है भून देना, गर्भ से छुड़ाना, गर्भ

में ले जाना। यह वह किरण है जो पाप का नाश कर दे। हमारे अन्दर पाप अन्धकार है।

अन्धकार तीन प्रकार का है

एक वह अन्धकार है जिसको राजा हटाता है, वह अन्धकार है चोर डाकुओं के उपद्रवों से पैदा किया हुआ।

दूसरा अन्धकार है रात्रि का जिसको सूर्य हटाता है।

तीसरा अन्धकार है अज्ञान कुवासना आदि का—जिसको परमेश्वर हटाता है।

राजा, सूर्य और परमेश्वर तीनों का नाम सवितः हैं। सवितः अपनी किरण से अन्धकार का नाश करता है। राजा की किरण का नाम है दण्ड, सुव्यवस्था; सूर्य की किरण तो है ही। परमेश्वर की किरण का नाम है भर्गः। तो हमारा अन्धकार तब हटेगा जब हम भर्गः को धारण कर लें।

गायत्री मन्त्र में 'धीमहि' शब्द का अर्थ है धारणा और ध्यान। इसके बाद है समाधि। सवितः के शुद्ध पाप विनाशक तेज को हम धारण करते हैं और ध्यान करते हैं। धारणा और ध्यान दोनों अन्दर होंगे। संसार के सब पदार्थों में परमेश्वर हैं। चित्र में

भी है परन्तु चित्र को परमेश्वर नहीं कहते। बाहर की आँख बाहर की वस्तु को देखती है परन्तु परमेश्वर का ज्ञान नहीं होता। जब भीतर की आँख छिपे हुये को देखेगी तो परमेश्वर का ज्ञान हो सकेगा। सी० आई० डी० (C. I. D) वाले खोज निकालते हैं भेष बदल कर। वे सिपाही के भेष में खोज नहीं कर सकते।

दृष्टान्त

विलायत की बात है कि एक होटल में बड़ा मीठा स्वादिष्ट खाना मिलता था परन्तु जो खाते सब बीमार हो जाते। सब को एक ही रोग हो गया। सब को हस्पताल में दाखिल कर दिया गया। रोग बढ़ता गया। रिपोर्ट हुई; डाक्टर क्या जानें। उन्होंने तो रोग निदान कर औषधि दे दी। खोजी लगाए गए। सब रोगियों ने कहा अमुक होटल में खाना खाया था। अब कुछ खोज मिल जायेगा। वे खोजी सिपाही के भेष में उस होटल में गए, खाना खाया और रोगी हो गए। अब विचार आया कि कोई ऐसी वस्तु खाने में मिली हुई है जिससे बीमारी घेर लेती है। अब कई खोजी भेष बदल कर होटल में गए और नौकरी करने

लगे। भोजन-शाला में जो काम करने वाले सेवक थे, उन्हीं में ही सेवा करने लगे। देखते रहे। अन्त में इस परिणाम पर पहुंचे कि कर्मचारी बाहर से गन्दे-सड़े चमड़े के टुकड़े लाते हैं, उसे वे कैमिस्टों के (Chemists) के पास ले जाते हैं वे अपने किसी कैमिकल व्यवहार से उसका एक मुरब्बा तैयार करते हैं और वही सब को बीमार करता है। खोज मिल गया। C. I. D. वालों ने रिपोर्ट कर दी। परिणाम स्वरूप होटल वाले पकड़े गये। यह खोज कब मिला? तब जब खोजियों ने कई रूप धारण किया, जो सेवकों का था।

दूसरा दृष्टान्त

हमारी तरफ एक थानेदार अमरसिंह थे, परन्तु थे अनपढ़। अंगूठा लगाते थे। उसने बहुत सेवा की। जनता की सेवा का उसे बड़ा चाव था। एक रात्रि को चोरों का भेष पहन कर बाजार से गुजरा, मार्ग में पहरे पर संतरी खड़े थे, उन्होंने आहूत किया, पकड़ लिया। बहुत अनुनय-विनय पर सन्तरियों ने छोड़ दिया। चूंगी के पास होवनाराम चौकीदार खड़ा था, उसने पकड़ लिया। पूछा -- कहां जाते हो? कहा— खैरपुर जाता हूं। चौकीदार ने दो तमाचे लगाये,

अब वह बड़ी मिन्नत करने लगा, होवनाराम ने न जाने दिया। पकड़ कर कहा कि थाने पर ले जाता हूं। चोर ने बहुत चकमा दिया परन्तु होवनाराम ने एक न मानी। जब ४ बजे, पहरा समाप्त हो गया उसको पकड़ कर थाने में ले गया और मुन्शी को कहा कि यह चोर है, इसको थाना लाया हूं। मुन्शी ने कहा, यह चोर है प्रातः को रपट लिखेंगे। थानेदार होवना-राम पर बड़े प्रसन्न हुए और उसकी उन्नति की सिफारिश कर दी। उसी दिन से होवनाराम जमादार बन गया।

इन दृष्टान्तों का दृष्टान्त यह है' कि जब तक मनुष्य संसार के प्रलोभनों को लात मार कर परे नहीं हटाता, जब तक अपने कर्तव्य कर्म का पालन नहीं करता, जब तक अद्वत् बनकर उसकी खोज नहीं करता, वह परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। परमेश्वर को वही भक्त धारण कर सकेगा जो इन मंजिलों से गुजर जाएगा।

मंजिलें

पहली मंजिल है भूः भुवः स्वः की। यह मंजिल तब तय होगी जब वह निष्काम, निःस्वार्थ भाव से किसी

के प्राण की रक्षा करे, किसी के दुःख दूर करे, और किसी को सुख पहुंचाए। जब यह गुण हमारे स्वभाव का अंग बन जावे, अहं मम न रहे, स्वभाव से ही निष्काम निस्वार्थ सेवा करे, तो तीनों लोकों के बन्धनों से हम रहित हो सकेंगे।

दूसरी मंजिल है विज्ञान की

इस प्रकार के कर्म से हमें विज्ञान की प्राप्ति होगी और हमें ज्ञान हो जायगा कि सवितः देव ही सर्व संसार का रचयिता है। मैं भी इस संसार का एक अंश हूं। तो उस सवितः की खोज करूं। सवितः वरुण बनकर छिप रहा है, मैं भी छिप जाऊं, एकांत हो जाऊं। संसार की विषय वासना, स्त्री-पुत्र, परिवार आदि मुझे न खींच सकें। यह संसार कीचड़ है, स्नान कर शुद्ध होकर भी निकलता हूं तो भी मोह रूपी कीच, मेरे पास आ जाती है। ये लोकैषणा, वित्तैषणा, पुत्रैषणा खींच कर मुझे फिर संसार में लाती हैं। जब मैं छिप गया, एकांत सेवी बन गया तो मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ कि सवितः ही इस संसार का रचयिता है, अब उसे कहां ढूंढू ? प्रभु की तरह मैं भी छिप जाऊं तब उसकी खोज प्राप्त कर सकूंगा

जिस प्रकार C. I. D. के सिपाहियों ने होटल वालों का भेष धारण किया तो खोज निकाल सके ।

एक भक्त था, उसने सिद्धि प्राप्त कर ली परन्तु लोगों से वह तंग आ गया । तंग आकर एक महात्मा की शरण में गया । महात्मा ने उसे कहा कि मुरदा बन जाओ । जब तक अहंकार है, हम हैं । जब अहंकार को दे दिया तो मुरदा बन गया । अब मुरदे को कौन तंग करे, वह आज़ाद हो गया ।

जागृत में अनेकों आदमी नगरों में बावले रूप से फिरते हैं, उन्होंने अहंकार अर्पण कर दिया होता है । किसी ने स्वामी रामकृष्ण परम हंस से पूछा कि 'क्या आप पागल हो ?' स्वामी जी ने कहा कि सारी दुनिया पागल है, कोई दुनिया के पीछे पागल है, कोई स्त्री के पीछे, मैं ईश्वर के पीछे पागल हूं ।

स्वामी सियाराम जी को पता चला कि एक योगी है. गलियों में रेढ़ी पर खिलौने आदि बेचकर ५० पैसे प्रतिदिन क ाता है पर है योगी । अपनी परीक्षा के लिये फिरता है कि देखूं कि मेरी आंख, मेरे कान कहां जाते हैं, मेरी वाणी कैसा व्यवहार करती है । गरीब बनकर रहूं । लोग कायड़ कुसायड़ (क्रोध) करेंगे ।

उत्तेजना देंगे गिराने की कोशिश करेंगे। यदि इन सब के होते हुए मैंने इनको सहन कर लिया, मेरे अन्दर सहनशीलता आ गई, मेरी आँख किसी से आकर्षित नहीं हुई, मेरे कान सांसारिक नाजो-अदा के शब्दों की ओर नहीं दौड़ते, मुझे सुगन्धित वस्तु आकर्षित नहीं कर सकती, कंघी दर्पण मेरे लिये व्यर्थ के पदार्थ हैं, तब मैं समझूंगा कि मैंने मंजिल तय कर ली।

उसने एक स्थान बनाया, एक मकान किराये पर लिया। धारणा की कि ५ वर्ष पर्यन्त बाहर नहीं निकलना। खाना वहीं, टट्टी वहीं। ५ वर्ष बीत गये। ५ वर्ष पश्चात् उसको आत्मसाक्षात् हो गया, उसने घोषणा की कि अमुक तिथि को मेरा विवाह होगा। विवाह की तैयारियां होने लगीं। ढोल ढमके, बाजे गाजे बजने लगे, लोग इकट्ठे हो गये। लाड़ा बन बैठा। कहा, "आज मेरी आत्मा का मेरी बुद्धि के साथ विवाह है यह व्यभिचारिणी थी, अब मैंने इसे वर लिया है।" यह सिद्धि कब प्राप्त हुई ? तब जब वह छिप गया, संसार से पृथक् हो गया।

मेरे गुरुदेव कहते थे कि दो बातों का विशेष ध्यान करना।

(१) लाल इन्हीं गोदड़ियों में मिलेगा, किसी का तिरस्कार न करना।

(२) जब तक फांसी मजहब की, तब तक होत न ज्ञान।

सारांश—जब तक मनुष्य अपने आप को छिपा हुआ नहीं बनाता जैसे शून्य, वह आगे नहीं जा सकता।

तीसरी मंजिल है उपासना की—जब इस प्रकार परमेश्वर का ज्ञान-विज्ञान प्राप्त हो जाता है, तो साधक उस परमेश्वर के समीप जाने का अथवा धारण करने, वरने का प्रयास करता है। सवित: सर्वन्तर्यामी है, वह मेरी नस-नस नाड़ी-नाड़ी में मौजूद है, छिपा बैठा है। परमेश्वर जिस चीज को रचता है, वह उसमें बैठा हुआ है। मैंने मकान बनवाया, बनाया राज ने, मुझे ज्ञान नहीं कि उस मकान के अन्दर कितने जीव-जन्तु चींटीं, मच्छर, बिच्छू सर्प आदि रहते हैं पर रहते वे जरूर हैं। मैं सब की पालना नहीं कर सकता परन्तु प्रभु सब की पालना करता है और सब कुछ उसके पास है तो मैं अब उसी को क्यों न वर लूं जिस प्रकार पत्नी के पति को वर लेने पर पति अपना

सब ऐश्वर्य अपने सहित पत्नी के हवाले कर देता है इसी प्रकार परमेश्वर भक्त को अपना सब ऐश्वर्य अपने सहित प्रदान करता है।

भर्गः का स्वरूप अगली धारा में।

———

सत्रहवीं धारा

भर्गः का स्वरूप

भर्गः के बहुत से अर्थ हैं परन्तु उनमें से इस शब्द का इस मन्त्र में जो लक्ष्य है वही मनुष्य का अभीष्ट है। "भर्गो देवस्य धीमहि" के अर्थ हैं कि हम भर्गः को धारण करें अथवा उसका ध्यान करें। भर्गः क्या है। भर्गः एक ऐसे धातु से बना है जिसके अर्थ हैं कच्चे को पका देने वाला और भून देने वाला और उस अविद्या का नाश करने वाला जिसके लक्षण ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में किए हैं।

अविद्या के लक्षण—अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या। यो–२–५।

अर्थात्—अनित्य में नित्य, अपवित्र में पवित्र, दुःख

में सुख और अनात्मा में आत्मा का ज्ञान अविद्या है तो अविद्या के चार प्रकार के लक्षण हैं जैसे अनित्य को नित्य, अपवित्र को पवित्र, दुःख में सुख और अनात्म को आत्म मानना। इसलिये ऋषि ने बड़े जोर से लिखा कि अविद्या का नाश और विद्या का प्रकाश सब को करना चाहिये। स्वामी विरजानन्द ने यही आदेश दिया कि जब तक अविद्या का एक पग भी रहेगा, वह सारे संसार को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिये पर्याप्त है। इसलिये भर्गः की बड़ी महानता है।

जीवन का उद्देश्य

हमारे जीवन का यही उद्देश्य है अर्थात् भर्गः को धारण करना। इस समय मनुष्य दो चीजों से जकड़ा हुआ है **भय से और प्रेम से।**

भय है हमें हर वस्तु से। पिता को पुत्र से, भाई को भाई से, मित्र को मित्र से...इसी प्रकार शत्रुओं से भी भय है। अमित्र और शत्रु से तो चौकन्ने रहते हैं परन्तु मित्र के प्रति क्या सोचें ? मित्र ही सब से अधिक भयावह है। जगन्नाथ ऋषि का तो मित्र था ही, उस मित्र ने क्या किया ? इसलिये जो हमारे मित्र बने हुए हैं, उन्हीं को कहना है कि वह सब से बड़े

खतरनाक हैं।

माता पुत्र से कितना प्रेम करती है, पुत्र माता से पृथक नहीं हो सकता। माता बालक के लिये सब प्रकार का त्याग करती है परन्तु वास्तव में उनके मध्य में दुःख (मोह) जिसको सुख मान रहे हैं, काम कर रहा है। उनका प्रेम नहीं, दोनों मोह से जकड़े हुए हैं।

स्त्री और पुरुष भी आपस में काम रूपी बन्धन से जकड़े हुए हैं। वह काम कितना सुखदाई प्रतीत हो रहा है। एक नवयुवक अल्प विषय आनन्द के लिये सारी सम्पत्ति बरबाद कर देगा। कुल की मान मर्यादा को कलंक लगा देगा। यह सब कुछ काम ने जकड़ दिया।

संसार के धनी मानी को लोभ ने बांध रखा है।

हमें भय है मच्छर, मक्खी, सर्प बिच्छू आदि से परन्तु यह सदा नहीं रहते। हमारे शरीर रूपी अरण्य में कितने भयंकर शत्रु रहते हैं। काम, क्रोध, लोभ मोह आदि—यह निकलते नहीं।

बालक जुआरी हो गया, पिता रोता है शिकायत करता है परन्तु मोह के कारण अपने बालक को निकालता नहीं। अपयश सहन कर लेता है परन्तु

मोह के कारण उसे घर से पृथक् नहीं करता। दण्ड अदा कर देगा। चोरी में पकड़ा जाये, घूस देकर भी विमुक्त करा लायेगा। कारावास में माता चूरमा बना कर पुत्र को खिला आयेगी। इसलिये वेद भगवान् ने चेतावनी दी कि ओ जीव! प्रभु से प्रार्थना कर कि हमें मित्र से, अमित्र से निर्भय करो।

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मममित्रं भवन्तु॥
अथर्व०—१९-१५-६।

स्त्री मित्र वानप्रस्थ लेने नहीं देते। जैसे कल कहा था। मैंने स्नान किया; मित्र आए, मट्टी लगा दी और कहा नहाओ। ऐसे संसार के विषय हैं। भर्गः इन विषयों आदि को भष्म कर देगा। भर्गः शब्द नहीं छुड़ायेगा, भर्गः शब्द बन जाए। परन्तु अनाड़ी अशिक्षित भर्गः रूपी बारूद को छोड़ेगा तो अपनी हानि करेगा।

अब रहा भ्रम

भ्रम अथवा भ्रान्ति—किस बात की भ्रान्ति है? जो मनुष्य मिथ्या ज्ञान में जा रहा है, भर्गः उसको प्रत्येक पदार्थ का यथार्थ ज्ञान करा देता है। सीप,

चान्दी, रस्सी, सर्प और रेत पानी प्रतीत होते हैं यही भ्रान्ति है। इस भ्रान्ति का कारण आधा अन्धेरा आधा प्रकाश है। पूरा प्रकाश हो तो सीप को चाँदी कौन कहे ? हमारी चाहना तो परमेश्वर की ओर है परन्तु हमारा अनुकरण विषयों की ओर है। यह आधा अन्धेरा और आधा प्रकाश है।

अब यह कैसे प्राप्त हो ?

सब से पहला ज्ञान यही है कि जिसका परिणाम दुःख है उसको सुख न मानें, जैसे धन उपार्जन करने में सुख न मानें। इसके उपार्जन करने में दुःख, रक्षा में दुःख, चोरी चले जाने में दुःख, छोड़ने में दुःख — सुतराम दुःख ही दुःख है।

दूसरा ज्ञान यह है कि अनात्म को आत्म न मानें। दुःख शरीर को होता है आत्मा को नहीं परन्तु हमारा व्यवहार उल्टा है। शरीर को कष्ट होता है पर हम समझते हैं आत्मा दुःखी है। तीसरा ज्ञान यह है कि अपवित्र को पवित्र न मानें। शरीर से प्रतिक्षण मल निकलता रहता है, कभी शौच, कभी मूत्र, कभी श्लेष्म् कभी पसीना इत्यादि और हम उसे पवित्र शरीर समझ रहे हैं।

ज्ञान प्राप्ति के साधन

ज्ञान प्राप्ति के साधन हैं सत्सङ्ग और पुस्तकें। इस प्रकार के सत्सङ्ग और पुस्तकों से हमारा (१) दृष्टिकोण किसी प्रकार ठीक हो जाए, बदल जाए, शुद्ध हो जाए। (२) हमारा लक्ष्य, (३) हमारा उद्देश्य, (४) हमारे विचार, (५) हमारे भाव बदल जाएं, शुद्ध हो जाएं। इन पांच चीज़ों का ज्ञान प्राप्त होगा हमें धर्म पुस्तकों से, सत्संग से, विद्वानों, सन्त महात्माओं से।

परमेश्वर की आज्ञाओं के पालन करने, दान-पुण्य करने से, अच्छे कर्म करने से, देवत्व भाग पैदा होंगे। जब हमारे अन्दर देवत्व भाव पैदा होंगे, हमें सच्चे ज्ञान की प्राप्ति होगी। **तो ज्ञान प्राप्ति का साधन है देवत्व भाव।**

प्रत्येक पदार्थ में तीन गुण सत्व, रजस्, तमस् मौजूद हैं। शरीर के लिये तमोगुणी, मन के लिये रजोगुणी और आत्मा के लिये सतोगुणी भाव चाहिएं।

देवत्व भाव जगे

ऋषि ने देवत्व भाव से कहा —"अमीचन्द हो तो मोती, पर कीचड़ में पड़े हो।" ये शब्द अमीचन्द के देवत्व भाग में लगे। समय आ गया। उसके पूर्व जन्म के शुभ कर्मों के फल का उदय काल और ऋषि दयानन्द की महान कृपा का उद्गार, ये दोनों जब इकट्ठे हो गए तो अमीचन्द की काया पलट दी।

ये उपदेश सत्संग देवत्व भाग को भी पैदा करते हैं।

दृष्टान्त

बुद्धु नाम का एक ठग था, दिन-भर झूठ बोलता था, न्यायालय के द्वार पर खड़ा रहता था। जिसका कोई साक्षी न होता वह साक्षी देने को तैयार रहता; जिसकी जमानत तसदीक करनी होती वह मौजूद रहता। समय गया, एक रात्रि उठते रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा सुनी; सुनने मात्र से उस के देवत्व भाग में, जो जग रहा था, प्रभाव पड़ गया। प्रातः काल उठते ही वह भक्त बन गया। न्यायालय जाना छोड़ दिया। वह बुद्धु ठग बुद्धु भक्त बन गया। इस कथा के शब्दों ने बारूद बनकर उसके पापों को भस्म कर दिया। प्रातःकाल से कौड़ियों का व्यापार

करने लगा। कौड़ियों का ढ़ेर लगा दिया। कौड़ियों का अब व्यापार करता है। बुल्हे ने इसी पर कहा :—

न कर मान रुपयां दां, बध न बग्गे।
खबर तडाहूं पौसा जडन वैसें सर्राफ दे अग्गे।
बुल्हे आ बन जा कौड़ी, जो वनक मूल न लग्गे।

अर्थात् रुपयों का मान न कर, रुपये खोटे भी होते हैं, खरे भी। इनकी पहचान तो सर्राफ ही करता है। खोटे रुपयों को 'बधक' लगा देता है अर्थात् उसका मूल्य घटा देता है परन्तु कौड़ी ऐसा द्रव्य है जिसका मूल्य कभी कम नहीं हो सकता, चाहे वह छेकिल (छिद्र वाली) हो, चाहे पूरी साबित हो। कौड़ी पर प्रभु की छाप है, वह प्राकृतिक वस्तु है। अब बुढ्ढू आराम से बैठता है, व्यापार करता है। परोपकार की भावना जग गई, दूसरे के काम संवारे और अपना स्वार्थ भी साथ-साथ सिद्ध हो। अब वह औषधि देता है जिसको डाक्टर नहीं दे सकते। अब रामायण की कथा सुनाने लगा। उसकी कथा में एक तहसीलदार अपने बच्चों को साथ ले आता था; और कई बार रात्रि को बन्दियों को भी साथ लाता था। उसकी कथा से कइयों की जीवनियां बदल गईं। लड़के और

तहसीलदार पर बड़ा सुन्दर प्रभाव पड़ा। लड़का हर रविवार को हनुमान चालीसा पढ़ने लगा और अन्त में वह महात्मा मुन्शीराम बना और अपना नाम अमर कर गया।

पुण्य कार्यों में जागृति देवत्व भाग का फल है। ज्ञान की प्राप्ति अन्तिम चीज़ है।

उस ज्ञान का नाश हो जाता है जिसने हमें बांध रखा था। भगवान् कृष्ण के उपदेश से अर्जुन का मोहपाश शिथिल हो गया और जो अर्जुन भीरु बनकर धनुष और युद्ध के त्याग पर उद्यत हो गया था, उसमें वीरता आ गई। यह भर्गः ही ज्ञान है।

अब हम समझें कि इस भर्गः को कैसे धारण करें। परमेश्वर में पूर्ण-विश्वास हो कि परमेश्वर रक्षक है, मेरे प्राणों का। कोई शक्ति, व्यक्ति अथवा शत्रु उस सवितः देव की इच्छा के बिना न मेरे प्राण हर सकता है और न बाल बांका कर सकता है।

दृष्टान्त

(१) भगवान् का एक भक्त कम्बल ओढ़े भक्ति में मस्त बैठा था। सर्प आया और भक्त की परिक्रमा कर उसके कम्बल पर बैठ गया। भक्त अपनी भक्ति

में मस्त रहा। भक्त लोग दर्शन करने आये, सर्प को देखकर डर गए और वह बोले भी नहीं। भक्तों ने समझा कि यह अभी मरा। जिसकी गोद में सर्प बैठा है, वह कैसे बच सकता है। परन्तु प्रभु लीला विचित्र है, भक्त ने आँख खोली, तो सर्प चलता बना। लोगों ने कहा—भक्त जी! सांप बैठा था। कहा, जिसने मुझे बिठाया उसी ने सर्प को बिठाया था, मेरी रक्षा के लिये। यह है विश्वास अपने प्रियतम पर।

(२) पठानकोट में एक राम-भक्त एक गुफा में रात्रि को विश्राम की खातिर चला गया। भजन कर रहा था। उस गुफा में एक मूर्ति भी थी। भक्त भजन में था कि एक सर्प आकर उसकी गोदी में बैठ गया। रात्रि को मन्दिर का पुजारी तथा एक अन्य व्यक्ति आरती करने आये तो देखा कि सर्प बैठा है। पुजारी पीछे हट गया और ज़ोर से चिल्ला कर कहने लगा, ओ भक्त! तेरी गोदी में सर्प बैठा है, परन्तु भक्त ने एक न सुनी और अपने भजन में मस्त रहा। जब समाधि खुली तों सर्प बैठा देखा; कहा—ओ राम! अच्छा इस रूप में दर्शन दिए। मेरे पास तो केवल गुड़ है भेंट करने को। गुड़ सर्प के आगे रखा। सर्प ने

गुड़ को मुंह लगाया और एक ओर हट गया। साधु ने सर्प को कहा कि 'महाराज ! मैंने तो रात्रि को यहीं रहना है; आप ने भी रहना हो तो आपकी इच्छा; पुजारी लोग भी बाहर आरती के लिये खड़े हैं' तो सर्प चला गया।

पुजारी और लोग जो हट गए थे, वापस आए तो देखा कि सर्प नहीं है। भक्त ने सारा वृतांत सुना दिया और कहा कि उसका जो भोग था; वह ले गया प्रभु ने राम के दर्शन इसी रूप में करा दिए।

यह है ईश्वर-विश्वास।

— ० —

अठारहवीं धारा

भर्गः के सम्बन्ध में पिछली धारा में निवेदन किया गया। भर्गः ही एक शक्ति है जो हमें अन्धकार से, अज्ञान से, पाप वृत्तियों से. वासनाओं और विषयों से बचाती है। भर्गः' उपासना है। 'भूर्भुवः स्वः' कर्म था। 'तत्सवितुर्वरेण्यं' ज्ञान था। जब ज्ञान शुद्ध हो जाता है उसके बाद साधक उपासना के योग्य होता है। उपासना तो समीप बैठना है। सवितः का जब तक ज्ञान न हो तब तक परमेश्वर के पास नहीं बैठ

सकता। जिस वस्तु का ज्ञान होगा उसी की ओर मन जायेगा। हम सब लोग जब भजन में बैठते हैं, सब शिकायत करते हैं कि हमारा मन भाग जाता है विषयों में। क्योंकि विषयों का ज्ञान है, परमेश्वर का ज्ञान नहीं, इसलिये ईश्वर की तरफ नहीं जाता।

वह परमेश्वर जो कि निर्भय है, उस पद को प्राप्त करने के लिए हम निर्भय हों। निर्भय होकर जब हम परमेश्वर की समीपता का आनन्द लेंगे तो उससे हमें प्रभु का आशीर्वाद प्राप्त होगा, कुछ वर मिलेगा। जब तक हमें भय है तब तक परमेश्वर की समीपता दूर है। सबसे बड़ा भय मृत्यु का है। मृत्यु के भय से कोई भी प्राणी नहीं बचा।

मृत्यु का भय अविद्या और अज्ञान के कारण है, मरने वाली चीज वह है जो पैदाशुदा है। जो उत्पन्न हुआ उसने अवश्य मरना है। न मरने वाली चीज तो पहले से अमर है। इस ज्ञान के न होने से मनुष्य को सदा भय रहता है कि मैं मर जाऊंगा। अनात्म में आत्म को जो जानता है, वही अविद्या है। यह विषय भी बड़ा जटिल और कठिन है और उपासना का विषय भी बड़ा जटिल और कठ़िन है।

रस कब आता है

लोग शिकायत करते हैं कि हम भजन करते हैं परन्तु रस नहीं आता अथवा प्रकाश नहीं मिलता। रस आता है हमें उन चीज़ों से जिनका हमको ज्ञान है। प्रकाश भी मिलता है उन चीजों से जिनका हमें ज्ञान है। रस आता है शहद से, दूध से। माता को बच्चे को चूमने, चाटने से। इसी प्रकार जिसका ज्ञान है, उससे प्रकाश मिलेगा। प्रकाश मिलेगा सूर्य से। पत्थर से, पृथ्वी से प्रकाश नहीं मिलेगा परन्तु जल में जो पत्थरों से निकला है उसमें प्रकाश मिलता है, तो सवित: जानने की चीज है।

आज लोग रस के पीछे दौड़ते है, लोग कहते हैं कीर्तन में बड़ा रस आता है, यह रस आत्मा को तो नहीं आता।

फिरोजपुर जिला के एक मेरे मित्र हैं जो आर्य समाज के प्रधान थे। दुकानदारी करते थे, उनके पास एक एजेण्ट आया और कहा कि आप दुकान पर बैठे है, अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं, मुझे ऐसा गुरु मिला है जो पांच मिनट में प्रकाश करा देता है। प्रधान ने कहा-भाई हमें तो बरसों भजन करते बीत

गए, हमें तो प्रकाश नहीं मिला। प्रधान ने समझा कि इतनी जल्दी प्रकाश मिलता है तो हम क्यों न जाएं। एजेण्ट ने कहा, देहली चलो। प्रधान ने सोचा आखिर देहली जाने में लगता क्या है, आर्य समाज में दान-पुण्य किया, सेवा की, हवन किया, सन्ध्या की परन्तु प्रकाश न मिला। यह तो सस्ता सौदा है। प्रधान जी तैयार हो गए। परन्तु

सावधान

साधको ! सावधान रहो ! ऐसा प्रकाश तो मैं एक मिनट में दर्शन करा दूं। धर्मात्मा को, दुष्ट को, रईस को, निर्धन को, कोई भी हो सबको करा दूं। किसी यम नियम के पालन करने की आवश्यकता नहीं। इसका नाम मैंने रखा है, ठगी। प्रकाश मैं करा दूं परन्तु आगे धारणा नहीं करा सकूंगा। वन्दनीय मेरे गुरु श्री योगीराज जी महाराज ने एक बार सुनाया कि पटियाला का महाराजा इंग्लैंड गया। सम्राट से भेंट की, और भेंट के समय पटियाला नरेश ने इंग्लैंड के सम्राट से इच्छा प्रगट की कि मुझे अपना कोष दिखा दें। अंगरेज़ सम्राट महाराज का मित्र था, नरेश की प्रार्थना को स्वीकार तो करना चाहता था परन्तु

संसद की स्वीकृति के बिना वह कोष दिखाने की आज्ञा न दे सकता था। संसद् को सम्राट की इच्छानुसार विधान बनाना पड़ा। संसद ने निश्चय किया कि पटियाला नरेश को जब मोटर में कोष भवन तक ले जाया जाए, उनकी आंखों पर पट्टी बांध दी जाय। चुनांचि पटियाला नरेश की आंखों पर पट्टी बांध कर खजाने तक ले गए और खजाने में पहुंचा कर आंखों की पट्टी खोल दी गई। स्वर्ण, रजत, हीरे, जवाहर आदि अनेकों प्रकार के चमकीले मूल्यवान पदार्थ देखे। कमरों के कमरे भरे हुए देखे। नीचे ऊपर ना मालूम कितने घेरे में वह कोष भरा था। देखकर चकित हो गया। परन्तु जब नरेश को वापस लाया गया तो आंखों पर पट्टी बंधी हुई थी। वापस स्वस्थान पर पहुंचा तो मन में कहने लगा कि क्या मैंने स्वपन देखा था अथवा सचमुच देखा भी था कुछ। अपने में शङ्का हो गई।

जब वह सज्जन प्रधानजी देहली गया तो फाटक पर द्वारपाल बैठे थे। प्रधानजी ने कहा, महाराज जी से मिलना है। द्वारपाल ने पूछा, नाम दान लिया हुआ है? कहा, नहीं। द्वारपाल ने कहा, सत्सङ्ग में बैठ सकते हैं परन्तु अन्दर नहीं जा सकते। पूछा-नाम दान

कैसे लूं ? वहां तो प्रकाश प्राप्त करने से पहले गुरु-शिष्य का प्रश्न था परन्तु यहां तो मेरे पास गुरु-शिष्य का भी प्रश्न नहीं है। पारब्रह्म परमेश्वर का प्रकाश तो बहुत दूर है परन्तु हमारा शरीर अन्दर में इतना प्रकाशमान है कि कोई ज्योतिर्मय पदार्थ उसका मुकाबला नहीं कर सकता। मन स्वप्न में कितना प्रकाश कर देता है सब इन्द्रियाँ और द्वार बन्द हैं, परन्तु मन अन्दर ही अन्दर कितनी अद्भुत सृष्टि रच लेता है और वह भी बिना किसी यन्त्र के और बिना किसी कारीगर की सहायता के। स्वप्न में मन जो रचता है वह असली तो नहीं वह तो झूठी है। इसी प्रकार जो प्रकाश मिनटों में नहीं; एक मिनट में करा दिया जाता है, वह भी झूठा प्रकाश है, असली नहीं। साधकों को इस से सावधान रहना चाहिये। यह धोखे की टट्टी है, असली नहीं। जो हठ करेगा, वह आँखें खो बैठेगा अथवा कान बधिर हो जायेंगे अथवा मस्तिष्क पागल हो जायेगा। वह प्रकाश जो मैं दिखाऊंगा, वह आप की भ्रान्ति और भ्रम संशय को निवृत्त नहीं करेगा।

(नोट :—यहां श्री महाराज जी ने लोगों की इच्छा पर कानों में अंगूठे, आँखों पर तर्जनी, नासिका

पर मध्यमा और मुख को अनामिका और कनिष्ठिकों से बन्द करके थोड़ा दबा देने को कहा—प्रकाश सबको प्रतीत होगा। सब ने ऐसा किया और प्रकाश को अनुभव किया—यही प्रकाश है जो राधास्वामी गुरु दिखाते हैं परन्तु पुनः प्रार्थना है कि इस प्रकार के प्रकाश के पीछे साधक न जाएं और न ही इसका अभ्यास करें, नहीं तो उपरोक्त कोई न कोई हानि ही उठायेंगे।

—सम्पादक)

गायत्री का भर्गः वह है कि जो इसको धारण कर ले उसको पाप लेश-मात्र नहीं रहता।

उसकी निशानी क्या है ?

प्रातःकाल से पहले कुछ अंधेरा था कुछ हटा और फिर कुछ देर बाद प्रभात छटकी और फिर सूर्य नारायण निकलने लगे और अधिक प्रकाश हो गया और सूर्योदय होने पर और अधिक प्रकाश हो गया। इसी प्रकार जिसने वरुण को वर लिया तो फिर वरुण का काम है आनन्द देना। भर्गः रूपी सूर्य जब उदय हो गया, अज्ञान रूपी तमस् लोप हो गया।

आज से कुछ वर्ष पूर्व जब आर्यसमाज का प्रचार कार्य अति वेगों पर था, 'नमस्ते' का शब्द प्रेम और

प्रकाश का संचार करने वाला था । आज आवरण पैदा करने वाला है । पहले प्रेम बहुत था अब स्वार्थ बहुत है । स्वार्थ के कारण भर्गः प्राप्त नहीं होता ।

निर्भय कौन कराएगा ?

अब समझें । उस परमेश्वर के सामनें निर्भय, निर्वैर कौन कराएगा ? निर्भय तब होगा जब निर्वैर होगा । वैर होता है कामना के पूरी न होने से । क्रोध ही वैर कराता है । यदि मनुष्य निष्काम होकर कर्म करे अर्थात् ईश्वर परायण होकर करे तो फिर कामना रहित होने से न क्रोध उत्पन्न होगा न बैर और निर्वैर होने से निर्भय हो जायेगा, तो निर्भया का मूल मन्त्र निर्वैर होना अर्थात् आशक्ति रहित होना है ।

सवितः को जो वरने नहीं देती, वह बड़ी रुकावट है स्वार्थ । लड़की, जब माता-पिता के साथ जो उसे स्वार्थ था, उसे त्याग कर आती है और पति को वरती है तो उसे सप्तपदी की क्रिया कराई जाती है । जब उसे सात पग चलाये जाते हैं तब वह पति की सखा बनती और पति का वर लेना पूर्ण होता है । परमेश्वर एक है । २, ३, ४, ५, ६, ७ ये सात पग हैं । परमेश्वर का जो निचले दर्जे का भक्त है, जिसने परमेश्वर को

थोड़ा-सा अपना आश्रय बना लिया, वह २ दर्जे में आ गया। और एक पग आगे बढ़ा ३ बन गया, ४ बन गया— इस प्रकार भक्तों के ७ दर्जे हैं। ७ दर्जे तक पहुंच कर भक्त परमेश्वर का सखा बन गया।

हम ने परमेश्वर के साथ सखा बनना है। वह हमारा मित्र है। सखा में दो अक्षर हैं स+खा। स के अर्थ हैं समान और खा के अर्थ हैं ख्याति अर्थात् समान ख्याति वाला।

ख्याति कब होगी ?

ख्याति होगी तब, जब हम परमेश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव को अपना लें। परमेश्वर के गुण अनन्त हैं। परन्तु मानव को तो एक ही गुण, एक ही कर्म और एक ही स्वभाव धारण करना है। परमेश्वर का गुण है सत्य, कर्म है न्याय और स्वभाव है दया। वह बड़ा परोपकारी है, उसके गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता। जब परमेश्वर का गुण, परमेश्वर का कर्म, परमेश्वर का स्वभाव अन्दर आगया तो सखा बन गया।

स्त्री ने त्याग किया स्वार्थ का माता-पिता का। घर में जब आई तो साथ धर्म को लाई, इसका नाम है धर्म पत्नी। स्वार्थ के त्याग के बाद धर्म आता है,

जब तक स्वार्थ का त्याग नहीं करती, धर्मपत्नी नहीं बन सकती। जिसके अन्दर स्वार्थ है वह धर्म परायण नहीं हो सकता। श्वसुर के घर में धर्म-पुत्री, धर्मपत्नी बन आई, तो साथ धर्म लाई। यह धर्म स्वार्थ का त्याग कराने वाला है। सत्य और न्याय पर आचरण करना है धर्म। जब तक धर्म न आएगा वरुण की समझ नहीं आएगी और जब अहंकार का त्याग किया तो परमेश्वर का दर्शन हो जाएगा। पत्नी ने आकर अहंकार का त्याग पति के लिये किया तो अर्धाङ्गिनी कहलाई। दोनों एक हो गये।

अब परमेश्वर के साथ सखा बनने के लिये जब एक (परमेश्वर) को वर लिया तो ९ रहा ही नहीं, वह १० बन गया ! शून्य हो गया। हमारे अन्दर जो स्वार्थ और अहंकार है उसे हटाएं। अहंकार तो बड़े के सामने दब जायेगा और छोटे के सामने रहेगा। अहंकार तब हटेगा जब मैं नन्हा बन जाऊं। उत्पत्ति के समय तो मैं सबसे छोटा था, निरहंकार था। बस निरहंकारी बन जाएं। जब अपने आप को प्रभु के अर्पण कर दिया, बड़ा बन गया। जब चुल्लू पानी को समुद्र में डाला समुद्र बन गया। कूप में डाला कूप बन गया।

ईश्वर अर्पण का फल

ईश्वर अर्पण हो जाने से मनुष्य की समाधि लग जाती है। परमेश्वर ने अपने आप को हमारे अर्पण कर दिया। यदि वह हमारे अर्पण न होता तो कभी न कभी तो रुष्ट हो जाता। वायुजल बन्द कर देता, पृथ्वी को हटा लेता। आप अर्पण हुआ, सूर्य आदि सबको अर्पण कर दिया।

वही बालक योग्य है जो बड़ा होकर अपने आप को माता पिता के अर्पण कर देता है, माता पिता की आज्ञा के अर्पण हो जाता है। भगवान् राम ने कौन-सा बड़ा काम किया? माता पिता के अर्पण था। माता के जो अर्पण हुआ है वह सब कुछ वार देगा, प्राण तक भी वार देगा। हम तो अर्पण हैं विषयों के, पदार्थों के।

अर्पण कब होगा

परमेश्वर के प्रति मानव मन को तब अर्पण कर सकता है अथवा लगा सकता है जब

१) परमेश्वर की जरूरत हो—हम परमेश्वर की जरूरत ही महसूस नहीं करते। एक स्नातक मुझे

मिले। मैंने पूछा–अब स्नातक बनकर क्या करोगे? स्नातक जी ने कहा वेद का और परमेश्वर का प्रचार करूंगा। मैंने पूछा, १४ वर्ष आप पढ़ते रहे, सच कहना कभी परमेश्वर की जरूरत महसूस भी की? कहा, नहीं।

२) परमेश्वर का भय हो।

३) परमेश्वर का प्रेम हो।

—०—

उन्नीसवीं धारा

सर्व श्रेष्ठ दात

संसार के जितने भी पदार्थ हैं, जितनी भी दातें और जितना भी ऐश्वर्य परमेश्वर नें पैदा किया है उसमें सबसे बढ़िया, सर्व श्रेष्ठ, सर्वोत्तम वह कौनसी दात है जो मानव को चाहिए? प्रत्येक व्यक्ति इस प्रश्न का उत्तर अपनी अपनी बुद्धि और प्रवृत्ति के अनुसार देगा। बच्चे को स्वर्ण मुद्रा से इतना प्यार नहीं जितना कि लड्डू से है। बच्चे के हाथ में स्वर्ण मुद्रा हो, मां मांगे, न देगा, हां यदि उसे मोदक (लड्डू) दे तो तुरन्त स्वर्ण मुद्रा दे देगा, मोदक ले

लेगा। उसकी भोग-खाने की प्रवृत्ति है। जब बड़ा हो जाएगा तो मोदक लेकर स्वर्ण मुद्रा का त्याग नहीं करेगा। कोई कहेगा प्राण सर्वश्रेष्ठ है, तो प्राण तो पागल का भी है, पशु का भी है। मनुष्य को मानव-श्रेष्ठ मानव दर्शाने के लिए प्राण मुख्य वस्तु नहीं है और न ही केवल बुद्धि श्रेष्ठ दात है क्योंकि बुद्धि तो वकीलों की भी है पर वह मानव जीवन बनाने के लिए वाञ्छनीय नहीं है। वाञ्छनीय यदि है और जीवन को सर्वोन्नत करने वाली यदि कोई महान दात है तो वह है पवित्र बुद्धि।

सांसारिक पदार्थों में आकाश और आध्यात्मिकता में परमेश्वर परम पुनीत है

परमेश्वर परम पुनीत है, वह पवित्र कर सकता है। जल भी पवित्र कर सकता है परन्तु स्निग्ध वस्तु को जल भी पवित्र नहीं कर सकता। अग्नि सबको पवित्र कर सकती है परन्तु जल पड़ जाने पर कुछ नहीं कर सकती। वायु कितना पवित्र है परन्तु धूलि उड़ जाने में धूलि भी मिल जाती है। इन सब देवों में पुनीत आकाश है जिसको कोई भी वस्तु स्पर्श नहीं कर सकती। आकाश मिट्टी में है परन्तु उसको वह

स्पर्श नहीं कर सकती। पृथ्वी की सब चीजों में निर्मल आकाश है। उसने सबको आच्छादित कर रखा है। पृथ्वी उससे कम है, वायु कम, जल कम और अग्नि कम है। जो बेलाग होकर रहना चाहते हैं उनको समझ लेना चाहिये कि संसार के पदार्थों में आकाश से और आध्यात्मिकता में परमेश्वर से बढ़कर पवित्र और कोई पदार्थ नहीं।

सब प्राणियों में, मच्छर, मक्खी आदि में, पशु पक्षियों में और वृक्षों में, सब में जीव है, देह और प्राण है परन्तु मनुष्य में जीव, देह और प्राण के अतिरिक्त मन और बुद्धि विशेष हैं। पशुओं में मन और बुद्धि हैं परन्तु उनका विकास नहीं हो सकता। वृक्षों में वह (मन और बुद्धि) प्रसुप्त हैं। चूहा बिल बनाता है मनुष्य वैसी नहीं बना सकता। चींटी अपना घर बनाती है, अन्न इकट्ठा करती है, अपने अण्डों की रक्षा करती है, उसके पास मन और बुद्धि है परन्तु वह विकास नहीं कर सकती। मानव की बुद्धि के विकास को कोई सीमा नहीं। आश्चर्य जनक काम करता है। जब वायुयान नहीं थे तो हम सुना करते थे कि प्राचीन कालमें उड़न खटोले थे, हम उनको गप समझते थे। परन्तु नहीं. वेद में भी लिखा है और

पुरातन काल में भी थे। जिन लोगों ने वायुयान तैयार किये, आश्चर्य जनक काम किये। फिर तार, बम, गैसें आदि यह आश्चर्य जनक काम हैं। मनुष्य की बुद्धि का कितना बड़ा विकास हुआ। मन का तो कहना ही क्या है ?

मन का विकास मन की पवित्रता से होता है

महात्मा बुद्ध के मन की पवित्रता कितनी थी कि चीते, हिंसक जन्तु, चोर डाकू आएं, सब कुछ भूल जाएं। यह है मन का विकास, मन का उत्तम विकास। पवित्र मन के सामने पापियों का पाप भी भस्म हो जाए। महाराज दयानन्द के पास वैश्या गई पतित करने के लिए। उस समय महाराज समाधिस्थ थे, उस समय भर्गः के स्वरूप को धारण किये हुए थे। सवितः देव का वरने योग्य, पाप विनाशक तेज, महाराज के मुख पर छिटक रहा था, शरीर के छिद्र छिद्र से निकल रहा था। हमारा सारा शरीर छिद्रों वाला है। वेश्या ने जब इतना तेज स्रवित होते देखा सब कुवासनाएं और पाप दग्ध हो गए, वेश्या की काया पलट गई। ऋषि दयानन्द के मन की पवित्रता का विकास, विकास की अन्तिम पराकाष्ठा है।

मुहम्मद की भ्रमात्मक बुद्धि

हजरत मुहम्मद जिसको करोड़ों मनुष्य पूजते हैं. उनकी बुद्धि भ्रमात्मक थी। कहते थे, सूर्य भ्रमण करता है पृथ्वी ठहरी हुई है। बुद्धि निश्चयात्मक न थी। जब बुद्धि संशयात्मक न रहे तब मन पवित्र होगा।

भगवान आचार्य की भूल

भूल हो गई भगवान शंकर से। इतना बड़ा महान् पुरुष, योग विद्या में प्रवीण, वह ऋषि दयानन्द से बड़े विद्वान् थे परन्तु कहते यह थे कि ब्रह्म ही ब्रह्म है, जीव नहीं। भूल उनकी पकड़ी गई। जब वह जा रहे थे, एक भंगी टोकरा लिए आ रहा था, उसकी छाया से डर गये। उसको हटाने लगे तो भंगी ने कहा—आप तो ब्रह्म हैं; टोकरी में ब्रह्म है, विष्टा में भी हैं, मुझ में भी है तो फिर आप घबराते क्यों हैं ? वह बुद्धि निश्चयात्मक नहीं थी, परन्तु ऋषि दयानन्द ने ब्रह्म को जुदा कर दिया, जीव को जुदा कर दिया, प्रकृति को जुदा कर दिया। ऋषि दयानन्द की निश्चयात्मक बुद्धि थी।

बुद्धि निश्चयात्मक कब बनती है

बुद्धि निश्चयात्मक तब बनती है, जब वह पर-

मेश्वर की प्रेरणा को समझ सके। परमेश्वर की प्रेरणा हर क्षण होती है जैसे सूर्य की किरण प्रवाह से चलती है, टूटती नहीं। वायु का प्रवाह नहीं टूटता। जब वायु का प्रवाह बन्द हो जाता है, वायु मौजूद तो होती है। जिस प्रकार परमेश्वर के देवता अपना काम निरन्तर कर रहे हैं उसी प्रकार परमेश्वर की प्रेरणा हर क्षण चलती है। महान्-पुरुषों का परामर्श-दाता वही परमेश्वर है वे परामर्श समाधिस्थ होकर लेते हैं वे अपनी सुध बुध भी भूल जाते हैं। उसी परमेश्वर की याद रहती है, उसी का यन्त्र बनकर काम करते हैं।

भर्गो देवस्य धीमहि

धी का अर्थ है बुद्धि भर्गः का अर्थ है ऐश्वर्य। ये सब ऐश्वर्य परमेश्वर के दिए हुए है परन्तु सीधे उससे नहीं मिले, वे किसी के द्वारा मिलते हैं। जिनके द्वारा मिलते हैं, स्वामी उनका वही है। ऐश्वर्य प्रकृति के द्वारा मिले, इसलिये प्रकृति ही ऐश्वर्य की स्वामिनी है। प्रकृति परिणामिनी है, प्रकृति के पदार्थ नाशवान् है, इसलिये यह प्राकृतिक ऐश्वर्य भी नाशवान् है। ये सुख के साधन हैं जिनसे शरीर को सुख प्राप्त हो

सकता है। इनसे शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। परमेश्वर जिस वस्तु को बिना किसी माध्यम के देगा, उस पदार्थ में, उस दात में शान्ति होगी। परमेश्वर का भर्गः सीधा परमेश्वर से मिलता है तो हम धारण करें भर्गः को। कौन से भर्गः को ?

धारणा और ध्यान

धारणा और ध्यान दोनों अन्दर होंगे। धारण करें किसी चीज को। परमेश्वर तो चीज नहीं, वह तो निराकार है। तो हम धारण करें प्रभु के गुणों को। परमेश्वर के गुण अनन्त हैं। हम वे गुण चुन लें जो हमारे काम के हों।

सत्य दया और न्याय

हम परमेश्वर के सत्य, दया और न्याय को चुनलें। सत्य परमेश्वर का गुण है उसको धारण करें परमेश्वर का स्वभाव दया और न्याय उसका कर्म है, इनको धारण करें। **इनके धारण किये बिना परमेश्वर के स्वरूप को साक्षात् नहीं कर सकते।**

सत्य क्या है ?

सत्य धारण करने की चीज नहीं, यह जानने

की चीज़ है। इसका जानना बड़ा कठिन है। आत्मा सत्य है, हम नहीं जान सके। परमेश्वर सत्य है, प्रकृति सत्य है, इनको हम नहीं जान सके। एक वह समय था जब कि महाराजा हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में कही हुई बात को सिद्ध करने के लिए अपने आपको बेच दिया था। अपने पुत्र का दाह-कर्म' कर, लिये बिना नहीं करने देता था। वह निर्दयी न था, न निर्दयी कह सकते हैं। वह कर्तव्य-परायण था। सत्य के स्वरूप को जानता था। विभीषण ने अपने भ्राता रावण का वध कराया परन्तु उसे विद्रोही (गद्दार) नहीं कह सकते। प्रह्लाद ने अपने पिता की आज्ञा का पालन नहीं किया, उसे अनाज्ञाकारी पुत्र नहीं कहा जा सकता। वह सत्य के स्वरूप से परिचित था। सत्य का पालन किया और नाम अमर कर गया। भीष्म ने पिता की विषय पूर्ति के लिए प्रतिज्ञा कर ली कि वह आजीवन ब्रह्मचारी रहेगा। तो सत्य का जानना बड़ा कठिन है। किस समय में क्या करना चाहिए, इसको जाने बिना आत्मा और परमात्मा का ज्ञान नहीं हो सकता। अब समझें हमारी मंजिल (लक्ष्य) बहुत दूर है। अब धारण क्या करें ?

दया और न्याय

धारण वह करें जो कर्म हो। '**दया और न्याय कर्म के अंग हैं अतः हम धारण करें दया और न्याय को**। यह है भर्गः का धारण करना। दया वर्तने की चीज़ है, न्याय कर्म करने की चीज़ है। हम न्याय न करेंगे तो हमसे उपद्रव हो जायेंगे। बड़े से, छोटे से, बराबर वाले से, सब से न्याय करना चाहिये। बड़े को सेर भर वस्तु दे दूं और छोटे को भी सेर भर दूं, यह न्याय नहीं। परमेश्वर समता करता है, मैं भी समता करूं। बालक रोगी है। माता एक पुत्र को हलवा बना देती है, रोगी को नहीं देती, रोगी को मूंग की दाल देती है। तो समता एक जैसी नहीं हो सकती। गौ के स्तन को चिचुड़ चिमट जाएं और हम उनको न उखेड़ें कि ये भी जीव हैं दूध पीते रहें, तो क्या यह दया है ? नहीं। बच्चे के सिर में जूं पड़ जाएं तो क्या नहीं निकालेंगे ? उनको चिमटे रहने देंगे। नहीं कदापि नहीं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार सुगन्ध लेता है। अपने-अपने युग में महापुरुष पूर्ण थे। लोटा, गिलास, कटोरे जल से भरे हों, तो वे अपने-अपने स्थान पर पूर्ण हैं।

समाधिस्थ बैठा हुआ योगी वायु भक्षण नहीं करता तो क्या यह परमेश्वर का अन्याय है ? नहीं। परमेश्वर के बाकी कर्मों से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं।

देवता कौन है ?

देवता कौन है ? देवता वह है जो दे। क्या दे ? सुख की सामग्री दे, दुःख से मुक्त कराने वाली वस्तु दे। सबसे बड़ा दुःख है मृत्यु और वह कारण जिससे हमारा जन्म हुआ। हमारा जन्म हुआ काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के कारण से। इसका परिणाम है मृत्यु। इस दुःख के दूर करने के लिये चाहिए ज्ञान। ज्ञान देता है देवता, सो देवता का अर्थ है ज्ञान दाता। पृथ्वी, सूर्य, जल, औषधि ये सब देवता हैं। ये सुख देते हैं परन्तु न मेरे पाप का नाश कर सकते हैं और न शान्ति दे सकते हैं। इसके लिए चाहिए चेतन देव।

जड़ और चेतन देवता में अन्तर

जड़ देवता स्वयं आके देते हैं, चेतन के पास जाना पड़ता है। भगवान तो आया हुआ है, मेरा काम है उसको ढूंढ़ना। परमेश्वर ने कहा जड़ देवता तुम्हारे पास आते हैं, मैं तुम्हारे पास पहुंचा हुआ हूं। अब

यात्रा कर अन्दर की। मैं समीप से समीप हूं। परमात्मा के समीप आत्मा और आत्मा के समीप बुद्धि है। कभी-कभी प्रश्न होता है परमेश्वर नजदीक है, हमारा मन जैसे चाहे नचा दे। परमेश्वर नजदीक होता, तो वह नचाता। भगवान् सब को नहीं नचाता, भगवान् नचाता है भक्त को, क्योंकि उसके समीप होता है। हम मनमानी से काम लेते हैं।

अन्दर की यात्रा बड़ी कठिन है, बाहर की सुगम है ५$\frac{1}{2}$ फुट का मानव और ३—४ इंच जितना हृदय ! मानव के लिये हृदय में घुसना बड़ा कठिन है। यदि इस मंजिल को तय करने की इच्छा है तो सर्व प्रथम दया करें। परमेश्वर इस लिये प्यारा है कि वह दयालु है। स्थूल से स्थूल गुण जो सब में समा रहा हो, उसको धारण करें, उसका विकास करें अर्थात् उसको विकास करने की शिक्षा माता दे, पिता दे। अकेली स्त्री का देवता उसका पति है। अकेली सन्तान का देवता उसके माता-पिता हैं। दोनों स्त्री-पुरुष मिल जाएं तो उन का देवता गुरु है। स्त्री पुरुष और गुरु मिल जाएं तो उनका देवता परमेश्वर है।

बीसवीं धारा

भर्गः, देव और धी

सद्बुद्धि की आवश्यकता

संसार के जितने भी पदार्थ और ऐश्वर्य हैं और जितनी मनुष्य की मान-मर्यादा, शक्ति, सम्पत्ति हैं यदि उसके पास सद्बुद्धि नहीं तो वह उनका दुरुपयोग करेगा; उससे उसका पतन होगा। कुछ भी पास न हो; केवल सद्बुद्धि, पवित्र बुद्धि हो वह बिना किसी और साधन के संसार क्या, संसार के दुःखों से छूट सकता हैं और दूसरों को भी छुड़ा सकता है।

धारण किये जा सकते हैं परमेश्वर के गुण। परमेश्वर का स्वरूप, ज्योति स्वरूप, सत्य स्वरूप है और उसे दयालु, न्यायकारी कहते हैं। जब तक उपासक न्याय, दया और सत्य को धारण नहीं करता तब तक उसको ज्योतिर्मय प्रकाश प्राप्त नहीं होता। जिस मनुष्य में जितनी सत्य की खोज होगी, सत्य का मान होगा उतना वह सवितः के स्वरूप को जान सकेगा। सत्य को जानने वाला सवितः के स्वरूप को जानेगा। जब स्वरूप को नहीं करेगा वह वरण के लायक नहीं

जान सकता। जब तक दया नहीं करेगा वह देव के स्वरूप को नहीं जान सकता।

भर्गः

भर्गः चेतन देव का तेज है जो देखने मात्र से पाप का नाश कर देता है। उन्नीसवीं धारा में महर्षि दयानन्द की घटना सुनाई थीं, वे भर्गः के स्वरूप को धारण कर रहे थे। भर्गः के तेज से वेश्या के पापों को दग्ध कर दिया। जिस प्रकार विद्युत् मेघ को छिन्न-भिन्न कर देती है, वह छमाछम बरस पड़ता है इसी प्रकार भर्गः पापों को दग्ध कर देता है। जैसे महापुरुषों का उदाहरण पहले दिया जा चुका है।

उनकी निश्चयात्मक बुद्धि न होने से आचार्य शंकर और हजरत मुहम्मद भर्गः को धारण न कर सके।

प्रेरणाएं किनको मिलती है

परमेश्वर की प्रेरणाएं तीन प्रकार के मनुष्यों को मिलती हैं, ज्योतियां जगती हैं।

१) एक वे जिन्होंने जन्म-जन्मान्तर की तपस्याएं की, उस तपस्या का फल अब हमारे सामने है।

यदि उनकी तपस्या पूर्वकाल की हो और अब की न हो तो उसका अर्थ यह है कि वे अमैथुनी सृष्टि में पैदा हुए। ऐसे महापुरुष जिन्होंने जन्म-जन्मान्तर में तपस्याएं की हैं, उनको जन्मकाल से ही किसी घटना के देखने मात्र से उनका भर्गः जग जाता है। ऋषि दयानन्द ने घटना देखी उनकी आंखों को लग गई। महात्मा बुद्ध राजकुमार पैदा हुए, विवाह हो गया। शुरू से उनकी वृत्ति वैराग्य की थी, पर विवाह में फंस गए। परन्तु तीन घटनाओं को देखकर तत्काल वैराग्य हो गया। आचार्य शंकर को बालपन से ही वैराग्य हो गया। जितनी कमी शंकर और मुहम्मद में रही वह उनकी मुक्ति में बाधक रही।

२) कई पुरुष ऐसे हैं जिनके पुण्य प्रबल है परंतु पाप भी प्रबल हैं। अब जो मेरा जन्म है, परमेश्वर मेरे प्रधान कर्म को देख लेगा। उस प्रधान कर्म के आधीन मेरे सञ्चित कर्मों से मेरा कुछ भोग बना देगा, आयु बना देगा और जाति बना देगा। नहीं तो महर्षि दयानन्द जो ७२ घण्टे की समाधि लगा सकते थे, एक स्त्री के स्पर्श करने पर ७२ घण्टे की समाधि लगाई कि उसके संस्कार तक मेरे हृदय पटल पर न रहें। वे जितनी आयु तक जीते रहे, कितनी बार विष मिली,

न्योली करके निकाल दी परन्तु अन्तिम बार के विष को न जान सके और सन्देह होने पर भी पूर्व प्रकार न निकाल सके। परमेश्वर जाने किन नियमों के आधार पर वह आयु और भोग के कर्मों को चुन लेता है ?

परमेश्वर पहले पापों का फल भुगतवाता है। बाल्मीक ने ब्राह्मण के घर जन्म लिया, महा डाकू बना। जब वे पाप समाप्त हो गए, तो समय आ गया उसके जीवन की प्रभात हो गई। तत्काल एक ऋषि के मिल जाने पर वैराग्य हो गया, जरा भी देर न लगी।

तीसरे वे हैं जो शुरू से साधनाएं करते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द जी की सारी जीवनी पढ़ जाइए। कितना पतित जीवन था परन्तु समय आया जब वे महापुरुषों में गिने जाने लगे। वे तीसरे प्रकार के आदमी सुनकर, पढ़कर, माता-पिता के संस्कारों से तप करते, साधनाएं करते हैं, वे ऊपर-ऊपर उठते हैं। ऐसे मनुष्यों में जब सत्य, दया और न्याय आने लगता है- उनका भर्गः जागता है। महात्मा हंसराज पण्डित लेखराम, गुरुदत्त साधना से बने।

प्रेरणाओं की भाषा

गुरुनानक देव को जन्म से प्रेरणाएं हुई। कबीर को, रैदास को जन्म से प्रेरणाएं हुईं। वे अनपढ़ थे परन्तु पठित व्यक्ति उनकी वाणी का प्रमाण देते हैं। वे पूर्व जन्मों में पठित थे। जिस अवस्था और जिस देश में कोई जन्मा है, परमेश्वर उसी भाषा में प्रेरणा देता है। महापुरुषों की वाणी कितनी मधुर और रिझाने वाली होती है।

एक साधक को प्रभु प्रेरणा करता है स्वप्न के द्वारा, शब्द के द्वारा, आंख के द्वारा और कान के द्वारा। हम नहीं समझ सकते क्योंकि परमेश्वर के तीन गुण दया, सत्य और न्याय हमारे अन्दर नहीं हैं।

अपने दोष और दूसरे के गुणों को देखो

एक प्यारे मित्र ने जो वेद पाठ करता है, जप यज्ञादि भी करता है, उपदेश भी करता है, मुझ से पूछा कि मुझे क्रोध आ जाता है। मैंने कहा, क्रोध आता है अहंकार, काम, लोभ और मोह के कारण तो उसने कहा कि मुझे क्रोध अहंकार के कारण आता है। वेदपाठ, जप, यज्ञ और उपदेश ये सब साधन उसके

अहंकार को नहीं मिटा सके। मैंने व्रतियों से पूछा तो सबने भिन्न-भिन्न उत्तर दिया। मुनि जी ईश्वरदास वानप्रस्थी ने उत्तर दिया **कि अपने दोष को और दूसरे के गुणों को देखें।** उत्तर ठीक है। जो भी साधक आत्मिकोन्नति चाहता है, अहंकार को मिटाना चाहता है उसे अपने दोषों को और दूसरे के गुणों को देखना चाहिए।

एक और रोग भी है जिससे बचना चाहिए। टोबाटेक सिंह के यज्ञ के विज्ञापन गए कि लोभ मोह आदि की निवृत्ति की साधनाएं भी होंगी। एक व्यक्ति देहली से चलकर टोबा टेक सिंह आया। मैं यज्ञ समाप्त कराकर अपने स्थान पर बैठा था; कई एक सज्जन भी मेरे पास बैठे थे। किसी ने आकर सूचना दी कि एक सज्जन जिसके लम्बे-२ बाल हैं, मिलना चाहता है। वे आये और मैं स्वागत के लिए उठ खड़ा हुआ। स्वागत किया, उनके पावं पर पड़ गया। वे प्रसन्न हुए। उनको ठहने का स्थान दे दिया बड़े विद्वान थे। भगवान् का धन्यवाद किया कि मुझ से भूल नहीं हुई। अब उनको वेदपाठ में बिठाया। वे कह न सके कि मैं किस लिये आया हूं। हमने उनसे लाभ उठाया। बाद में उनसे पता लगा कि वे

आये थें प्राणायाम और योग सीखने के लिए परन्तु जब उन्होंनें देखा कि यह (मैं लेखक) उनके पांव पड़ गये। तो अहंकारवश कुछ न कहा। अब तक उन्हें प्राणायाम नहीं आया। यह अहंकार मनुष्य को आगे नहीं बढ़ने देता।

एक मनुष्य तो स्वार्थ को छोड़ना नहीं चाहता, एक मनुष्य को अवकाश नहीं, दूसरे को अहंकार है, तो वह क्या पायेगा।

मनुष्य के मार्ग में जो सबसे बड़ी रुकावट है वह है दूसरे के दोषों को देखना और अपने गुणों को देखना अहंकार की आंख ऊपर हैं पर लज्जा से आंख नीचे हो जायेगी। पहले कहा जा चुका है कि इतने बड़े स्वाध्याय, सत्सङ्ग, यज्ञ, तप और दान का उद्देश्य है कि हमारा भाव, हमारे विचार, हमारा दृष्टिकोण, हमारा लक्ष्य और हमारा आदर्श बदल जाए। पृथ्वी के अन्दर हमने दाना डाला, पृथ्वी ने उसको बदल दिया। अग्नि में डाला, अग्नि ने बदल दिया। आज प्रातः वह ब्राह्मण देवी जो सनातन धर्मिणी है, ठाकुरों की पूजा करती है, घर में जिसने ठाकुर रखे हुए हैं, आश्रम में (२०-२२ दिनसे हो रहे बृहद्-यज्ञ में बती बनी हुई है और कई दिनों से

गायत्री मन्त्र पर निरन्तर विचार सुनती आई है और आश्रम के पवित्र यज्ञीय वातावरण में रहकर आध्यात्मिकता की ओर प्रगति कर रही है और गायत्री जाप करती रही है बिना किसी दबाव के खुले आम अपनी इच्छा पूर्वक इतनी बड़ी सभा में (सहस्रों की उपस्थिति में) यह घोषणा कर दी कि उसकी मूर्ति पूजा पर आस्था नहीं रही उसने वैदिक धर्म को स्वीकार कर लिया है, एवम् वह ठाकुर आदि मूर्तियाँ आश्रम में लाकर महात्मा जी के सुपुर्द कर देगी, वे जैसे चाहें करें।

नोट—यज्ञ की पूर्णाहूति के पश्चात् जब सब व्रतियों को अपने अपने घर जाने की आज्ञा मिल गई, वह देवी घर से मूर्तियां (पत्थर और पीतल की) (स्वर्ण आभूषणों और वस्त्रों सहित) उठाकर आश्रम में ले आई और आकर श्री महाराज जी के आगे धर दीये। श्री महाराज जी ने स्वर्ण आभूषण तो उसे वापिस कर दिए कि अपनी पुत्री के विवाह पर उसे दहेज में दे देना; वस्त्र रेशमी थे, वे आश्रम की पुस्तकों पर चढ़ा देने की आज्ञा की और मूर्तियों को

नहर में बहा दिया। -- सम्पादक)

वह देवी बदल गई, विचार बदल गए, भाव बदल गए, सन्मार्ग ग्रहण कर लिया। यह सब गायत्री जाप का प्रताप है। आज अपने सब सम्बन्धी ब्राह्मणों की उपस्थिति में जोर-जोर से कह रही है परमेश्वर की कैसी कृपा हो गई, कैसे बदल दिया !

अहंकार प्रधान मन्त्री है, इसका त्याग पत्र हो जाए तो सारी Cabinet का त्याग पत्र ही है। ऐसा तो कोई रोगी नहीं जिसकी दवा न हो। मैं जब तक मन से सत्य नहीं चाहता सत्य की खोज कैसे करूंगा !

शास्त्र आज्ञा

शास्त्र कहते हैं सत्य को गुरु के समान मानो, किसी क्षण भी निरादर न करो, सत्य की निन्दा सुनने पर तिलमिला उठो। मधुमक्खी कभी विष्टा पर भी बैठती है क्या ? आक और नीम पर तो बैठती है, वहां से भी मधु ग्रहण कर लेती है और साधारण मक्खी गन्द पर ही बैठेगी।

बस ज़रूरत है मेरा दृष्टिकोण और विचार आदि बदल जाएं। जिस किसी से भी लेना है, उसका गुण ही लेना है, दोष नहीं देखना। गुण जितने भी हैं

वे सब परमेश्वर के हैं। जब-जब मैं किसी के गुण को देखूं, समझूं। भगवान् की इस पर कृपा है; दोष को न देखूं।

ताड़ना अधिकार सहित

पापी को देखूं, तो यदि मेरा अधिकार है तो क्रोध करूं, अधिकार नहीं तो ताड़ना न करूं, उपराम रह जाऊं। न्यायाधीश ने अपराधी को दण्ड दिया—'जाओ दो वर्ष का सख्त कारावास और एक मास का एकान्तवास का दण्ड!" यह दण्ड न्यायाधीश ने अहंकार से नहीं दिया, अधिकार से दिया। अधिकार से दिया हुआ दण्ड पाप नहीं, हानिकारक नहीं। दोष को देखे बिना सुधार नहीं हो सकता। सुधारक दोष देखे, प्रचारक नहीं।

ऋषि दयानन्द ने अपने उपदेशकों को लिख दिया कि जाओ घरों में देखो, बच्चों को बैठना आता है कि नहीं, बोल-चाल कैसी है। समय और स्थिति को देख कर उनका सुधार करो। गृहस्थियों को लिखा कि उपदेशक आ रहे हैं, इनका स्वागत सत्कार करो।

तो अतिथि देव है, देव कुछ देने आता है। लेने वाला तैयार रहे और सुअवसर को हाथ से न जाने दे।

धी

प्रेरणा होगी धारणावती बुद्धि में। वह प्रेरणा बुद्धि को प्यारी लगे और उसमें श्रद्धा हो तो प्रेरणा को धारण कर सकेगी और समझ सकेगी। "धियो योनः प्रचोदयात्" में जो धी है, वह-वह बुद्धि है। जिसमें श्रद्धा हो, व्यवहारिकता न हो। ऐसी बुद्धि में ही प्रेरणा होती है।

एक तपस्वी निरन्तर १२ वर्ष तपस्या करता रहा परन्तु प्रकाश न हुआ। बड़ा निराश हुआ और अन्ततः यही भाव लेकर तप का त्याग करने लगा कि इतने वर्षों में सारा विश्राम, निद्रा और आराम का त्याग किया, कष्ट पर कष्ट सहे, परन्तु बना तो कुछ भी नहीं अतः अब तपस्या छोड़ सोने लगा। इतने में गली में एक सब्जी बेचने वाले की आवाज आई, सो ए······पाल—को चूका (अर्थात् सोयां, पालक, चूका—ये तीन प्रकार के शाक हैं।) तपस्वी ने सुना और समझा कि आकाशवाणी हो रही है कि ओ तपस्वी ! यदि एक पल भी सोया तो चूक जायेगा। झट उठ खड़ा हुआ। अब जो ध्यान में बैठा, प्रकाश हो गया। अब बुद्धि निश्चयात्मक हो गई और उस श्रद्धामयि बुद्धि में भर्गः जग गया।

इक्कीसवीं धारा

गायत्री का महत्व

जिस गायत्री मन्त्र को आप इतना कुछ सुनते, पढ़ते रहे, वह **'मन्त्र श्रेष्ठतम और पूर्ण इसलिये है'** कि मानव की अन्तिम पराकाष्ठा जिन गुणों, जिन कर्मों, और जिस स्वभाव से हो सकती है, वे इसमें हैं और दूसरा कोई मन्त्र उसके पाये का नहीं। यह भर्गः और यह देव जिसका सम्बन्ध बुद्धि के साथ है और जिसका विकास हो सकता है वह बुद्धि केवल मनुष्य को ही परमेश्वर ने दी है।

धी क्या है ?

वह बुद्धि जो कर्म करने के योग्य है, वह बुद्धि धी है। कर्म नहीं हो सकता जब तक ज्ञान न हो और श्रद्धा न हो। इसलिये धी का अर्थ है कर्म करने वाली और धारण करने वाली बुद्धि। जो बुद्धि उपदेश को समझ नहीं सकती और धारण नहीं कर सकती उस को धी नहीं कह सकते।

व्यवहार की प्रेरणा मनुष्य को परमेश्वर नहीं

करता उसका। प्रमाण यही है कि कालेज में पढ़ने वाले सब लड़के एक ही परीक्षा पास करते हैं परन्तु हर एक की प्रारब्ध जुदा जुदा है। कोई क्लर्क कोई अध्यापक और कोई डी. सी. बनता है। प्रत्येक व्यक्ति योग्यता के अनुसार परमेश्वर की प्रेरणा को समझता है। मंत्र का रटना आध्यात्मिक व्यायाम है, इसलिए बार-बार जप किया जाता है। इसका तात्पर्य केवल यही है कि हम इस भर्गः को धारण करने के योग्य हो सकें। इस समय संसार भय और भ्रान्ति में ग्रस्त है। बहुत हद तक तो भ्रान्ति दूर हो चुकी है, इसका श्रेय ऋषि दयानन्द महाराज के सिर पर है। प्रचार के द्वारा ऋषि ने और उनके बाद आर्य समाज ने वे शब्द आकाश में फैलाए कि जिनसे भ्रान्ति दूर हो।

उदाहरण

आज प्रातः रहट पर स्नान करने गया। एक सज्जन स्नान कर रहा था और कह रहा था 'हर हर गङ्गे'। मैंने समझा, यह भक्त है। बहुत देर स्नान में लगा दी। जयदेव भी स्नान करना चाहता था, उसने वस्त्र उतारे हुए थे, मार्गशीर्ष मास था। मैंने जयदेव को कहा कि तुम पहले स्नान करलो। सर्दी का मौसम

है, तुमने पहले वस्त्र उतार रखे हैं। तो भक्त ने कहा, महाराज ! यह अभ्यास की बात है और फिर अभ्यासी को सर्दी क्यों लगे ? अपनी कहानी सुनाई कि मैं अस्थियां लेकर हरद्वार गया। पण्डे ने मुझे गंगा में दाखिल कर दिया, मन्त्र पढ़ा और कहा, दक्षिणा दो। मैंने कहा श्रद्धानुसार दूंगा। पण्डे ने कहा, इतनी देनी होगी नहीं तो फूल डालने की और आपको बाहर निकलने की आज्ञा न दूंगा। मैंने कहा—आप हार जाओगे। बहुत देर तक मैं जल में खड़ा रहा, शरद ऋतु थी, अन्तत: वह पण्डा हार गया और कहा, बाबा टलो ! जो देता है दे दो' मैंने कहा लो ! यह फूल जा रहे हैं, तू रोकने वाला कौन है। मैंने अपनी इच्छानुसार पाण्डे को दक्षिणा दी। फिर अचारज ब्राह्मण आया, कहा दक्षिणा दो। मैंने कहा मैं नहीं देता। गीता में लिखा है कि जो कुकर्मी ब्राह्मण को दान देता है उसको खड़ वायु हो जाती है। मैं नहीं देता। उसने कहा अच्छा ! मैं रात को जिन्न भूत छोडूंगा, तुम्हारी खाट हिलती रहेगी। मैंने कहा, अब वह युग नहीं रहा। मेरा वह कुछ नहीं बिगाड़ सकते और वे हैं ही नहीं।

मैंने (लेखक ने) कहा, वाह ऋषि दयानन्द !

तेरा उपकार है, कहां तक कर्म कर गया, अब भ्रम दूर हो गये हैं।

परन्तु हमारा जो भ्रम था, अनात्म को आत्म समझना, वह आर्य समाज न मिटा सका। अलब्ता यह भ्रम भी उखड़ गया उनके जो नेता है गोस्वामी गणेशदत्त आए, मूर्ति रखी थी, उन्होंने नमस्कार न किया। लोगों ने पूछा कि आपने नमस्कार नहीं किया, गोस्वामी ने उत्तर दिया कि यह क्रिया उन लोगों के लिए है जिनके मन नहीं लगते। उन पर जादू तो हो गया परन्तु आर्य समाज में नहीं आयेंगे। वाह रे ऋषि दयानन्द ! तू ने दोनों को ठकोर दिया जो सनातनी विद्वान पढ़े हुए हैं, उनको मूर्ति के सामने सिर झुकाने में लज्जा आती है।

अनधिकारी कौन

अनधिकारी दो हैं, एक अहंकारी और दूसरे वे जो विषयों में आसक्त हैं। जो आसक्त है वह अन्धा है, अनधिकारी है। इसलिये उसको भर्गः का दर्शन नहीं होता।

यह गायत्री मन्त्र अहंकार और आसक्ति को छुड़ा देता है परन्तु जो दूसरों के दोषों को देखता और

हथियार बना के उनको प्रकट करता और अपमान करता है, उसको किसी भी अवस्था में भर्गः प्राप्त नहीं हो सकता।

जो प्रार्थना करता है परन्तु दूसरे के दोषों को देखता है, उसकी प्रार्थना कभी स्वीकार नहीं होती। उस प्रभु के सामने जब हमने कह दिया कि हम अपराधी हैं परन्तु दूसरे के दोषों को देखते हैं तो परमेश्वर कैसे हमारी प्रार्थना को स्वीकार करेगा ?

परमेश्वर के उपासक इस बात को गांठ बाँध लें कि अहंकार नहीं जायेगा जब तक दूसरे के गुणों को और अपने दोषों को न देखेंगे। मैं यदि अपने गुणों को जो सोना है, उसके साथ दूसरे के दोषों को जो विष्टा समान हैं, तोलता हूं तो क्या यह मेरी बुद्धिमता है ? अपने दोष की दूसरे के गुण के साथ तुलना करूं, तो मेरी आंख नीची हो जाएगी। यही अहंकार का इलाज है।

'भर्गोदेवस्य धीमहि'–उस देव का ध्यान करना है तो जब किसी पापी को अपने सामने नहीं लाना चाहता, वह देव मुझे कैसे दर्शन देगा ? भगवान के सामने सबसे बड़ी बुराई है घृणा। जब हृदय में बीज

घृणा का बो दिया, वह मेरी आंख में आया और फिर जबान में आया। कितना बढ़ा ? घृणा मेरे शरीर के तन्तु-तन्तु में फैल गयी। संसार में भिन्नता तो रहेगी, ठिगने भी, लम्बे भी, काले भी, गोरे भी होंगे परन्तु सब मानव हैं तो भर्गः को धारण करने के लिए हमारा दृष्टि कोण विचार, भाव, लक्ष्य और आदर्श बदल जाएं।

यदि मुझे घृणा है तो मैं आपसे प्रेम नहीं करूंगा न्याय नहीं करूंगा। इस मार्ग पर चलने की तो एक ही विधि है और वह यही कि अपने दोषों को देखकर हटाते रहें और दूसरे के गुणों को देखकर अपनाते रहें। अहंकार मिट जायेगा, क्रोध न रहेगा।

एक सन्त के पास एक नवयुवक गया और कहा कि सन्त जी उपदेश करें।

सन्त जी ने कहा,

जवानी-जवानी चार दिन की जिन्दगानी।

बस किसी को मत दुःखा।

शब्द और संकल्प साथ-साथ हों

यह गायत्री मन्त्र बच्चों, बूढ़ों और जवानों को उनकी प्रकृति तथा स्थिति अनुसार पूरी-पूरी शिक्षा

देता है। शब्द के पीछे संकल्प साथ हो। वह हमारा संकल्प शब्द के साथ जाए तो यह शब्द तब तक नहीं लौटेगा जब तक अपना मनोरथ सिद्ध न कर आए हमारा मनोरथ है भर्गः का धारण करना। यदि शब्द के साथ संकल्प न हो, प्रार्थना के साथ आचरण न हो तो सफलता नहीं प्राप्त होगी। इसलिये ऋषि दयानन्द ने लिखा कि प्रार्थना करो और उसके अनुसार आचरण करो। हमारी प्रार्थना संकल्प से रहित और बच्चे की संकल्प सहित है। बच्चा दूर बैठा रो रहा है, संकल्प उसका साथ है। माता दौडी हुई उसके पास आती है और यदि झूठा रोना हो तो नहीं आती। इसी प्रकार भगवान् हमारे संकल्प की सत्यता को जानता है। संकल्प साथ हो, सत्य हो तो सत्यम् लोक से दर्शन करा दे। वैदिक भक्ति साधन आश्रम रोहतक में गायत्री मन्त्र की साधना बताई जाती है। वह संकल्प कैसे बनाया जाता है यह आगे के पृष्ठों में देखिए।

बाईसवीं धारा

महात्मा आनन्द स्वामी का परिचय

भर्गः को धारण करें कि वह पाप विनाशक देव हमारी बुद्धियों को प्रेरणा करे। प्रेरणाएं हर समय सुनी जाती हैं। महात्मा आनन्द स्वामी की बुद्धि ऐसी है जैसे उनके कपड़े रंगे हुये हैं। उनके अन्दर बल आया। दीन दुखियो के दुःख-दर्द में सेवा करते थे। कभी कहीं दुष्काल पड़ा, कहीं भूकम्प आया। वही कर्म करते रहे जो इस भूर्भुवः स्वः के अन्दर आया है अन्न से, दान से जीवन देते रहे। मैं विचार करता रहा कि मार्ग तो हम सब का एक है, वे कर्म करते रहे इस लिये उनकी वाणी में बल है। "कर्म खण्ड की वाणी जोर" उन्होंने गायत्री मन्त्र की खूब साधना की। परमेश्वर की भक्ति में वे रंग गये।

तीन प्रकार का कार्य

परमेश्वर की सृष्टि में तीन प्रकार का कार्य होता है, एक तो वह जो न्याय पर निर्भर है, दया पर और तीसरा कृपा पर निर्भर है। परमेश्वर की कृपा क्या है, दया क्या है, न्याय क्या है ? यह गायत्री की

दात किस रूप में मिलती है ? ऐसे तो मानव दान देता है पात्रों को, जब वह आर्द्र हो जाता है उसके हृदय में दया आ जाती है। परन्तु परिवार के अन्दर दया का भाव नहीं होता, न कृपा होती है। वहां न्याय कर्म करता है। परन्तु जब दीन दुखियों को बिना किसी प्रतिकार की आशा के देता है, तो वह दया है। दया अन्दर उपजी और बिला-बदल दे दिया। ऐसे परमेश्वर हमको बिला-बदल देता है। इस प्रकार बिरादरी में जो दिया, वह बिरादरी का खाता है लेन-देन का, परन्तु परमेश्वर की एक कृपा और है कि एक दाना बो दिया, सौ दाने हो गये।

अब हम समझें कि भर्गः को धारण करना परमेश्वर की कृपा से होगा दया से होगा अथवा न्याय से ?

यह मन्त्र ही परमेश्वर की दया का मन्त्र है भर्गः दया से ही देगा। जब आत्मा परमेश्वर के अर्पण होगा तो परमेश्वर का स्वरूप ही सामने आयेगा।

उपनिषत्कार ने कहा है :—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम्॥
कठ०—व० ३-२३

बहुत पढ़ने सुनने से आत्मा का साक्षात् नहीं होता, जिस पर उसकी कृपा हो जाए, उसी को ही साक्षात् होता है और परमात्मा अपने रहस्यों को उस पर ही प्रगट करते हैं।

जब दया अन्दर आती है तो हृदय आर्द्र हो जाता है, परमेश्वर स्पर्श करता है। परमेश्वर के स्पर्श से ही आर्द्रता आती है और जेब से पैसा निकाल कर भिखारी को दे देता है। हमारी इन्द्रियां प्रकृति से बनी हैं, परमेश्वर प्रकृति से ही देगा।

धारण वह चीज की जायेगी जिसकी समझ आयेगी। बुद्धि और मन के मेल से ही वह धारण की जाएगी। इस लिये समझ सबसे पहले जरूरी है। हम प्रतिदिन कहते हैं :—

सुखी बसे संसार सब, दुखिया रहे न कोय।

इत्यादि हमारी स्मृति में है परन्तु मन में नहीं उतरता। बुद्धि के एक भाग में उतरा है।

भर्गः का अर्थ है पाप विनाशक तेज। प्रकाश हर जगह है। बुद्धि और मन के प्रकाश में भेद है। भर्गः धारण करेंगे, आनन्द रस आयेगा हृदय में। हृदय स्थान

आनन्दमय कोष में है। अन्तिम कोष आनन्दमय कोष है तो हृदय में वह आनन्द रस आए, वह वहां धारण करें।

भर्गः ऐसा है जैसे गर्भ है। भगवान् का भक्त गर्भ के रूप में भर्गः को धारण करता है। स्त्री धारण करती है, पुरुष धारण करता है। गर्भ धारण होता है जब दोनों स्त्री पुरुष एकान्त में हों। दोनों का प्रेम हो। पति दान के रूप में वीर्य देता है। तो सबसे उत्तम चीज तो हम याचक को देंगे, वह होगा अन्न, धन आदि। वीर्य दान जो अन्दर की चीज है वह अपने अन्तरंग को ही मिलेगा। वह (स्त्री) अन्तरंग बनी जब अपने आप को समर्पण कर दिया। भर्गः है परमेश्वर का वीर्य। 'आत्मानाम् वीर्यं बलम्'' आत्मा का बल वीर्य है, ज्ञान है। परमेश्वर की निज चीज जो है वह है ज्ञान, जिससे सारे संसार को चलाता और बनाता है। स्त्री का रज और पुरुष का वीर्य इकट्ठे हों तो गर्भ धारण होगा नहीं तो नहीं। परमेश्वर के वीर्य का नाम है ज्ञान और भक्त का रज है श्रद्धा। ज्ञान और श्रद्धा के संमेल से भर्गः उत्पन्न होगी।

गुरु नानक देव ने कहा है :—

फेर के आगे राखीये जित दिसे दरबार ।

मुंह कै बोलन बोलिए जित सुर धरे प्यार ।

अमृत वेला सत् नाम वडियाइयाँ विचार ॥

पांच घड़ी रात्रि शेष रहने पर बृहस्पति=ज्ञान के देवता का राज्य होता है, उस समय को अमृत वेला कहा है, वह समय है भर्गः को धारण करने के लिए प्रयास और अभ्यास करने का ।

प्रभु करे कि हम इस मन्त्र के मर्म को समझकर जीवन में घटाने का प्रयत्न करें ।

— ० —

तेईसवीं धारा

मानव जीवन को सफल बनाने के साधन

आश्रय तथा अधीनता

इन्द्रियां बिना अवलम्बन के नहीं रह सकतीं । इन्द्रियों को प्राण का सहारा है । दो प्रकार की चीजें चाहियें एक आश्रय और दूसरी किसी के अधीन होकर रहना । जैसे सत्य का व्यवहार कोई करना चाहता है तो उसे ज्ञान का आश्रय और परमेश्वर के नियमों की

अधीनता हो। जो ऐसा नहीं करता वह कभी भी सत्य का व्यवहार नहीं कर सकता। जब तक अहंकार को अर्पण नहीं करता, वह सत्य को ग्रहण नहीं कर सकता जो स्वार्थ का त्याग नहीं करता उसको सत्य की समझ नहीं आ सकती।

मनुष्य जीवन को सफल बनाने के लिए सात साधन

जिसने परमेश्वर को साक्षात् कर लिया है, आत्मा-परमात्मा को जान लिया उस को कुछ करना शेष नहीं है। जो इतना नहीं कर पाया, उसे जीवन सफल बनाने के लिए निम्नलिखित किसी मंजिल को तय करना चाहिए।

१) यदि हमने जान लिया होता कि परमेश्वर सर्व अन्तर्यामी है तो हमारे हृदय में पाप की भावना कभी न उठती।

२) यदि सर्व व्यापक समझा होता तो किसी के साथ ठगी न करते।

३) यदि सर्व शक्तिमान समझ लिया होता

तो किसी के साथ बात करते हुए भी उसके साथ अच्छा व्यवहार करते।

४) यदि किसी व्यक्ति ने परमेश्वर को नहीं जाना परन्तु परमेश्वर के सम्बन्ध में किसीं गुण, किसी कर्म और किसी स्वभाव को जान और धारण करले तो उसका जीवन सफल है। परमेश्वर का गुण सत्य हम धारण कर सकते हैं, परमेश्वर का कर्म न्याय करना और परमेश्वर का स्वभाव दयालु है। जो इनमें से किसी को भी जान कर धारण करता है उसका जीवन सफल है।

५) जिन्होंने जाना तो नहीं परन्तु उन्होंने आत्मा परमात्मा की खोज शुरू कर दी है और कुछ जान लिया है तो उनकी माता की कोख सफल हो गई।

६) जिसने प्रकृति को साक्षात् कर लिया उस का आना संसार में सफल हो गया।

७) जिसने प्रकृति को तो नहीं जाना परन्तु किसी भी तत्व की, जल की, वायु की, अग्नि आदि की खोज कर ली तो उसने संसार में बड़ा उपकार

किया जैसे रेल, तार, वायुयान आदि की खोज करने वालों ने किया।

अतः जीवन सफल करने के लिए परमेश्वर के किसी गुण, कर्म, स्वभाव को जानना और धारण करना, अथवा आत्मा-परमात्मा की खोज अथवा प्रकृति या उसके किसी तत्व की खोज करनी चाहिए। जो जितना-जितना इन साधनों को अपनाता है उतना उसका जीवन सफल है।

परमेश्वर की दात और उसका उपयोग

परमेश्वर ने हमें तन दिया जो सबके पास है; धन दिया, ज्ञान दिया, जो थोड़ा बहुत सबके पास है। वाणी दी जो सबके पास है। बल दिया जो थोड़ा बहुत सबके पास है।

जिसने तन, धन, बल, ज्ञान से कुछ उपकार किया, अपने स्वार्थ से रहित होकर तो उसने कुछ कर लिया और जिसने स्वार्थ सहित होकर किया है, किया तो निकृष्ट परन्तु निकृष्टों में भी वह श्रेष्ठ है। अतः हम सब अपनी पड़ताल करें।

सत्य का मान करो

टैगोर विलायत जाने लगा श्री अरविन्द के पास गए कि संदेश दें। श्री अरविन्द ने कहा कि मैं सत्य को किसी के द्वार पर ले जाना नहीं चाहता।

ऋषि दयानन्द ने प्रलोभनों के बावजूद भी सत्य का त्याग नहीं किया।

महाराजा रणजीत सिंह एक दिन वायु सेवन को जा रहे थे। मार्ग में बुधू नामी एक कुम्हार गधे पर सवार हुआ ढ़ोला गाता जा रहा था। महाराजा को ढ़ोला बड़ा पसन्द आया। बुधू का नाम पता पूछ लिया और दूसरे दिन सिपाही भेज कर बुधू को दरबार में बुलवाकर कहा कि वही ढ़ोला सुनाओ। बुधू ने इन्कार किया। महाराजा ने एक, दो, तीन. चार ग्राम पुरस्कार में देने चाहे परन्तु बुधू ने कहा, महाराज ! ढ़ोला बेचकर मैं अपना नाम कलंकित नहीं करना चाहता। आने वाली संतानें मेरे नाम को मैला करेंगी। मुझे क्षमा करें। प्रलोभनों के बावजूद बुधू ने ढ़ोला=परमेश्वर के नाम को नहीं बेचा।

शेरे पंजाब स्व०लाला लाजपतराय ने, जब हिन्दू मुसलिम एकता हो गई थी, तो गौरव से कहा कि

यदि परमेश्वर भी चाहे तो अब हिन्दु मुसलिम एकता भंग नहीं हो सकती। परन्तु उनको क्या पता था कि मनुष्य को बदला लेने का भाव माता से घुटी में मिला है। लड़के को भाई ने मारा लड़का झूठ मूठ रोने लगा। माता ने झूठ मूठ ताली बजाकर कहा कि देख तेरे भाई को मारा है। इस प्रकार माँ ने बच्चे के मन में बदला लेने का संस्कार बिठा दिया। वह यह नहीं जानती कि इसका क्या परिणाम निकलेगा।

तन को किस प्रकार सफल बनाएं

वेद ने कहा.

स्वयं वार्जिस्तन्वं कल्पयस्व, स्वयं यजस्व,

स्वयं जुषस्व महिमा ते ऽन्येन न सन्नशे।

यजु० २३-१५॥

परमात्मा ने मानव को हाथ, वाणी और बुद्धि दी जो किसी भी अन्य प्राणी को नहीं प्रदान की। इन के सदुपयोग से मानव की मानवता है, महानता है और जीवन सफल है। इनके दुरुपयोग से विनाश है और ह्रास है। (विस्तार से देखना हो तो लेखक की पुस्तक "जीवन यज्ञ" का अवलोकन कीजिए।)

प्रभु करे कि हम मानव जीवन के महत्व को समझें और मन्त्र योग के द्वारा जिसका विस्तार से इन पृष्ठों में वर्णन किया गया है जीवन को सफल बनाएं।

ओ३म् शम्

पिलानी — प्रभु आश्रित

२७-६-१६५५

(सम्पादक–सत्यभूषण आचार्य)

चौबीसवीं धारा

मन्त्र योग कैसे सिद्ध किया जाए

वेद भगवान् का आदेश है :—

आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ यजु० ७-२८

पदार्थ–हे (वर्चोदाः) योग और ब्रह्मविद्या देने वाले विद्वान्! आप (मे आत्मने) मेरे इच्छादि गुण युक्त चेतन के लिये (वर्चसे) अपने आत्मा के प्रकाश को (पवस्व) प्राप्त कीजिए। हे (वर्चोदाः) उक्त

विद्या देने वाले विद्वान् आप (मे ओजसे) मेरे आत्म-बल होने के लिए (वर्चसे पवस्व) योग को जनाइए ! हे (वर्चोदा) बल देने वाले ! (मे आयुषै) मेरे जीवन के लिये (वर्चसे पवस्व) रोग छुड़ाने वाली औषध को प्राप्त कीजिए। हे (वर्चोदसौ) योग विद्या के पढ़ने-पढ़ाने वाले ! तुम दोनों (मे) मेरी (विश्वाभ्यः) समस्त (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिए (वर्चसे) सद्गुण प्रकाश करने को (पवेथाम्) प्राप्त कराया करो। २८।

भावार्थः—योग विद्या के बिना कोई भी मनुष्य पूर्ण विद्यावान् नहीं हो सकता और न पूर्ण विद्या के बिना अपने स्वरूप और परमात्मा का ज्ञान कभी होता है और न इसके बिना कोई न्यायाधीश सत्पुरुषों के समान प्रजा की रक्षा कर सकता है इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि इस योग विद्या का निरन्तर सेवन किया करें ॥ २८ ॥

इस मन्त्र में योगी के बल का महत्व दिखाया है :-

१) योगी अपने बल से निर्बल और मलिन आत्मा कों सबल और निर्मल बना सकता है।

१) योगी परमात्मा और आत्माके वास्तविक स्वरूप

का ज्ञान दे सकता है और

३) योगी अपने योग से अनेकों रोगों को दूर करके मानव जीवन को सुख युक्त कर सकता है।

इसलिये महर्षि ने भावार्थ में फरमाया कि यदि कोई चाहे कि मुझे परमात्मा और आत्मा का वास्तविक ज्ञान हो तो ज्ञान बिना योग के नहीं आ सकेगा। योग से ही पूर्ण विद्वान् बन सकता है और जब तक पूर्ण विद्वान् न हो तब तक आत्मा के स्वरूप को नहीं जान सकता और न ही ईश्वर का साक्षात् हो सकता है और न ही कोई राजा योग बल और पूर्ण विद्या के बिना अपनी प्रजा की रक्षा कर सकता है। तो इससे मालूम हुआ कि मानव जीवन सफल बनाने के लिए योग कितना आवश्यक है। अब वह योग कैसे प्राप्त हो ?

इस पर वेद भगवान का आदेश है :—

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ य० ७-४३

हे (अग्ने) सब के अन्तःकरण में प्रकाश करने वाले

परमेश्वर। आप (सुपथा) सत्यविद्या धर्मयोग युक्त मार्ग से (राये) योग की सिद्धि के लिये (अस्मान्) हम लोंगों को (विश्वानि वयुनानि) समस्त योग के विज्ञान को (नय) पहुंचाइए जिससे हम लोग(स्वाहा) अपनी सत्यवाणी वा वेदवाणी से (ते) आप की (भूयिष्ठाम्) बहुत (न उक्तिम्) नमस्कार पूर्वक स्तुति को (विधेम) करें। हे (देव) योग विद्या को देने वाले ईश्वर(विद्वान्)समस्त योग के गुण और क्रियाओं को जानने वाले आप ! कृपा करके (जुहुराणम्) हम लोगों के अन्तःकरण के कुटिलता रूप (एनः) दुष्ट कर्मों को (अस्मत) योगानुष्ठान करने वाले हम लोगों से (युयोधि) दूर कर दीजिये ।। ४३ ।।

भावार्थ :—कोई भी पुरुष परमात्मा की प्रेम भक्ति के बिना योगसिद्धि को प्राप्त नहीं होता और जो प्रेम-भक्ति-युक्त होकर योगबल से परमेश्वर का स्मरण करता है उसको वह दयालु परमात्मा शीघ्र योग सिद्धि देता है ।। ४३ ।।

तो इस मन्त्र से सिद्ध हुआ कि योग बिना प्रेम-भक्ति के प्राप्त नहीं हो सकता। भक्ति के दो पर हैं। जितेंन्द्रियता और शिवसंकल्प। दोनों पर हों तो भक्ति उड़ा ले जायेगी, मानव का उत्थान करेगी।

एक हो एक न हो तो उड़ ही नहीं सकेगी। अर्थात् मनुष्य जितेन्दिय तो हो और शिव संकल्प न रखता हो अथवा शिवसंकल्प तो हो परन्तु जितेन्द्रिय न हो, तो वह कभी भक्त नहीं कहलाया जा सकता और न उसकी भक्ति सिद्ध हो सकती है। जितेंद्रियता और शिव-संकल्प के भावों को वेद भगवान् ने निम्न मन्त्र में बड़े सुन्दर रूप से निरूपण किया है :—

ओ३म् स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा। त्वासुभव सूर्य्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्य उदानाय त्वा ॥ यजु० ७—६ ॥

अर्थ :—हे (सुभव) शोभन ऐश्वर्य-युक्त योगी तू (स्वाङ्कृतः) अनादि-काल से स्वयं सिद्ध (असि) है। मैं (दिव्येभ्यः विश्वेभ्यः देवेभ्यः) शुद्ध समस्त प्रशस्त गुण और प्रशंसनीय पदार्थों से युक्त विद्वानों और (मरीचिपेभ्यः) योग के प्रकाश से युक्त व्यवहारों से (त्वा) तुझ को स्वीकार करता हूं (पार्थिवेभ्यः) पृथ्वी पर प्रसिद्ध पदार्थों के लिये भी (त्वा) तुझ को स्वीकार करता हूं (सूर्य्याय) सूर्य के समान योग प्रकाश करने के लिये वा (उदानाय) उत्कृष्ट जीवन और बल के अर्थं (त्वाम्) तुझे ग्रहण करता हूं जिससे (त्वा)

तुझे योग चाहने वाले की (मनः) योग समाधि-युक्त मन और (स्वाहा) सत्यानुष्ठान करने की क्रिया (अष्टु) प्राप्त हो ।।६।।

भावार्थ :—मनुष्य जब तक श्रेष्ठाचार करने वाला नहीं होता तब तक ईश्वर भी उसको स्वीकार नहीं करता, जब तक जिसको ईश्वर स्वीकार नहीं करता है तब तक उसका पूरा आत्मबल नहीं हो सकता और जब तक उसका पूरा आत्मबल नहीं हो सकता और जब तक आत्मबल नहीं बढ़ता, तब तक उसको अत्यन्त सुख भी नहीं होता ।।६।।

अर्थात् जो प्रेम-भक्ति युक्त होकर योगबल से परमेश्वर को याद करता है तो वह दयालु परमेश्वर उसको शीघ्र योगसिद्धि प्राप्त कराते हैं अर्थात् उसे स्वीकार कर लेते हैं। इस मन्त्र में बतलाया कि परमेश्वर तब स्वीकार करता है जब श्रेष्ठाचार है, श्रेष्ठाचार नहीं बन सकता जब तक मानव जितेन्द्रिय न हो और साथ किसी का अनिष्ठ चाहने वाला भी न हो अर्थात् जब तक मन के अन्दर शिव संकल्प न हों तो परमेश्वर उसे स्वीकार नहीं करता। परमेश्वर की स्वीकृति से भक्त का आत्म-बल बढ़ता है। जब तक पूर्ण आत्म-बल न बढ़ जावे, तब तक अत्यन्त सुख-

मोक्ष की प्राप्ति भी नहीं हो सकती । तो निष्कर्ष यह निकला कि मोक्ष सुख को प्राप्त करने के लिए योग की जरूरत है, योग की सिद्धि के लिये परमात्मा की स्वीकृति की छाप लगने की जरूरत है, स्वीकृति की मोहर नहीं लग सकती जब तक श्रेष्ठाचार न हो अर्थात् जितेन्द्रिय और शिव संकल्प वाला न हो। जितेन्द्रिय और शिव संकल्प होने से भक्ति की प्राप्ति होगी, भक्ति में प्रेम बढ़ेगा। प्रेम युक्त भक्ति से योग की सिद्धि होगी, परमेश्वर की प्रसन्नता प्राप्त होगी और फलतः अत्यन्त सुख उपलब्ध होगा। अब प्रश्न होता है, मन्त्र योग से किस प्रकार यह सब कुछ प्राप्त हो सकता है, सुनिये :–

सार्वभौम शिकायत

सब ओर से शिकायत है, बाल हो अथवा वयोवृद्ध, ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य हो अथवा साधक :–सभी यही शिकायत करते हैं कि मन नहीं लगता। यह शिकायत नई नहीं और न ही बनावटी है। यह परम्परा से चलती आई है। ५ सहस्र वर्ष पूर्व अर्जुन ने यही भाव निम्न शब्दों में प्रगट किये थे :–

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढ़म् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।। गीता ६-३४

अर्थात् –हे कृष्ण ! यह मन बड़ा चंचल और प्रमथन स्वभाव वाला है तथा बड़ा दृढ़ और बलवान् हैं, इसलिए उसका वश में करना मैं वायु की भांति अति कठिन मानता हूं ॥

असंशयं महाबाहोमनो दुर्निग्रहं बलम् ।
गीता ६-३५ पूर्वार्द्ध

अर्थात् –हे महाबाहो ! निस्संदेह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है ।

मन की गति विद्युत से भी तीव्र है, इसके बराबंर कोई वेगवान नहीं, यह सबसे अधिक वेगवान् है, अपनी सर्वव्यापकता की उपमा भगवान् को भी इसी मन से देनी पड़ी ।

अनेजदेकं मनसोजवीयो नैनद्देवा आप्नुवन पूर्वमर्शत् । तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तसिमिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ यजु० ४०-४ ॥

अर्थात् –परमात्मा मन से भी वेगवान् है, जहां मन पहुंचता है वहां वह पहले मौजूद है ।

सभी मंजिल पर जलदी पहुंचना चाहते हैं । मंजिल बहुत दूर है । उसके लिये सवारी भी तो तेज चाहिये । शीघ्र पहुंचने के लिए मानव वायुयान

का खर्च करता है, शीघ्र समाचार पहुंचाने के लिए तार अथवा टैलीफोन का प्रयोग करता है। वह जल्दी और सुगमता से पहुंचना चाहता है।

ऐसे ही परमेश्वर को मिलने के लिए कोई साधन चाहिए। आत्मा पहले मुक्त थी, ईश्वर के साथ मिलाप था अब जुदा होकर आई। अरबों वर्षों से बिछड़ रही है। न परमेश्वर का और न अपना साक्षात् कर सकी। यही शिकायत है।

अब जो आस्तिक हैं वे समझें और विचारें कि हमारी अवस्था अपनी उत्पत्ति से उन्नति पर है अथवा अवनति पर। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार में से कौनसा दुर्गुण घटा अथवा बढ़ा, काम घटा अथवा बढ़ा, क्रोध घटा अथवा बढ़ा, लोभ घटा अथवा बढ़ा, इसी प्रकार मोह अहंकार घटे अथवा बढ़े। यदि बढ़े तो हमारी अवनति है, हम पतन की ओर जा रहे हैं। यदि कोई घटा अथवा सब कुछ-कुछ घटे तो हमारा उत्थान हो रहा है और हम, कभी न कभी, यह क्रम जारी रहा तो, मंजिल पर अवश्य पहुंच जायेंगे।

जिन लोगों ने अपनी उन्नति धन में, परिवार में अथवा मान प्रतिष्ठा की वृद्धि में मान रखी है, वे

तो उनको बढ़ता देख कर सन्तुष्ट होते हैं और जो शांति चाहते हैं वे सन्तुष्ट नहीं। मोटर कार आदि हमारे सुख के सधन हैं परन्तु जिन लोगों के पास सुख की सारी सामग्री मौजूद है उनसे पूछिये कि शान्ति है ? उन सब का एक ही उत्तर पायेंगे कि शान्ति नहीं है। सुख के साथ शान्ति के मतलाशी (खोजी, इच्छुक) विरले ही हैं। परन्तु याद रखो, जहां रोग है वहां इलाज भी है।

इलाज है

तो इलाज सब रोगों का है, चाहे वह ऐलोपैथिक हो, या होम्योपैथिक हो. आयुर्वेदिक हो, प्राकृतिक हो अथवा किसी अन्य प्रकार की पैथी हो इलाज है। तो ऐसे ही मन की चञ्चलता का भी इलाज है। भगवान् कृष्ण ने अथवा अर्जुन ने मन को वश में करना असंभव नहीं कहा। कठिन जरूर कहा। परन्तु भाई यह रोग Chronic रोग है, बहुत पुराना हो गया है तो इसके लिए दवाई भी तो कठिन साध्य होगी। अतः भगवान् कृष्ण ने तो गीता —६–३५ की दूसरी पंक्ति में बताया !

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।

अर्थात्—हे कुन्ती पुत्र अर्जुन ! अभ्यास और वैराग्य से (यह मन) वश होता है।

औषधि सेवन से पहले हम अपने रोग की घनिष्ठता अथवा प्राचीनता को भी जरा देख लें। यदि हमारे काम, क्रोध आदि नहीं घटे तो हमने उन्नति नहीं की। जब तक ये न घटें, हम परमेश्वर को जान नहीं सकते।

योग की आवश्यकता

किसी कला को जानने के लिए, जैसे इंजीनियरिंग है, विज्ञान है विद्या की आवश्यकता है। इसी प्रकार तन, मन, आत्मा तथा परमात्मा को जानने के लिए भी विद्या की जरूरत है। परमात्मा आदि की विद्या का नाम है योग विद्या। बिना योग विद्या के मनुष्य धर्म के स्वरूप को नहीं जान सकता और न ही पाप को जान सकता है।

उदाहरण के तौर पर :—

(आम दिखा कर, एक लड़के से पुछा) यह क्या है ? उत्तर, आम।

(एक डाक्टर से पूछा) यह क्या है, कहा आम।

तो आप दोनों के ज्ञान में कोई अन्तर न हुआ, दोनों का ज्ञान समान है। पुनः पूछा, किस काम आता

है, दोनों ने कहा, चूसने के। तो यहां तक भी दोनों का ज्ञान बराबर है।

फिर पूछा, इसमें क्या है। दोनों ने उत्तर दिया, इसमें छिलका है, रस है और गुठली—तो यहां तक भी उन दोनों के ज्ञान में कोई अन्तर नहीं आया। एक सज्जन ने कहा, इसमें आम पैदा करने की शक्ति है, analysis (विश्लेषण) करने पर पता लगेगा, इसमें गहरा जायेंगे तों पता लगेगा।

इस उत्तर के प्राप्त होने पर वक्ता ने कहा, बस ! इसी का नाम योग है, अर्थात् किसी वस्तु के वास्तविक ज्ञान को प्राप्त करने के लिए उसकी हद तक पहुंचने को योग कहते हैं।

अब बच्चे को जब आम सूंघा दिया गया तो बच्चे ने तुरन्त कह दिया इसमें गन्ध है, फिर रूप और रंग भी बतलाया, पीला है अथवा सब्ज। फिर बालक को जब आम को हाथ में लेने को कहा गया तो बालक ने कहा कि यह नरम है सख्त हों सकता है। नरमी और सख्ती स्पर्श से मालूम होती है तो स्पर्श भी है, तो फिर वक्ता ने कहा पोला है अथवा सख्त तो इसमें आकाश भी है, मानो आम में रूप, रस, गन्ध स्पर्श और आकाश भी है। अब आगे को चलें।

संतरे में भी ये सब चीज़ें हैं, छिलका, बीज, रस, रूप आदि सब है। आम आम क्यों है और संतरा संतरा क्यों है? पांचों तत्त्व दोनों के अन्दर हैं। तो फिर हम कैसे कहें कि संतरा संतरा है, आम आम है। आस्तिक कहते हैं कि परमेश्वर सर्वव्यापक है। तो आम में भी परमेश्वर है? उत्तर होगा, हां। तो क्या परमेश्वर दिखाई देता है? गुठली, रस, रूप आदि अपना-अपना काम कर रहे हैं, परमेश्वर इसमें बैठा हुआ क्या काम कर रहा है? यह समझने के लिए योग की जरूरत है।

इसी प्रकार हम मन को नहीं जानते परन्तु हम कहते हैं कि हमारा मन नहीं चाहता। प्रश्न होता है इस मन का रंग-रूप क्या है, किस कारण से इन्कार कर देता है और कभी तो स्वीकार कर लेता है। इसलिये महर्षि ने लिखा :—

-'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।
यजु० १३–४॥

अर्थ : -- जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य चन्द्रादि पदार्थ

उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतनस्वरूप (आसीत्) था, जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्तत) वर्तमान था, (सः) वह (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्यादि को (दाधार) धारण कर रहा है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिए (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से (विधेम) भक्ति-विशेष किया करें।

पूजा की विधि अशुद्ध

हम में तो न अब रहा योग, न रही भक्ति। किसी आर्य समाजी से पूछें—आप कौन हैं तो कह देंगे हम आर्य समाजी हैं। हवन करते हैं? उत्तर देते हैं कभी-कभी थोड़ा-थोड़ा हवन करते हैं। सन्ध्या करते हो? हां, परन्तु कभी-कभी चूक भी जाती है। पितृ यज्ञ, अतिथि यज्ञ, बलिवैश्व देव यज्ञ भी करते हो? कभी-कभी। कोई बिरले आर्य भाई हैं जो पांचों यज्ञ करते हैं—कोई एक, कोई दो करते हैं, कोई नहीं भी करते। जब हम अपने गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करते तो इसलिये हमारा जीवन भी नहीं बना। और

चीजों में तो हम बढ़ गए परन्तु आर्यत्व में नहीं बढ़े। महर्षि दयानन्द महाराज को जो सबसे पहली चीज खटकी, वह यही थी, कि हिन्दुओं में श्रद्धा बड़ी है परन्तु उनकी पूजा की विधि अशुद्ध है। जिन्होंने किसी चीज को परमेश्वर मान रखा है, वह परमेश्वर नहीं। इसलिये घरबार छोड़ दिया और उसकी खोज में सारा जीवन लगा दिया।

"हिरण्यगर्भः" मन्त्र का अर्थ अक्षर-अक्षर उसी ऋषि की संस्कार विधि से उद्धृत किया गया है। ऋषि ने लिखा कि "योगाभ्यास और अति प्रेम से भक्ति विशेष किया करें।"

पहले तो हमें योग का ज्ञान हो, उस योग विधि का अभ्यास करें और फिर बड़े प्रेम से भक्ति साधारण नहीं, अपितु "भक्ति विशेष किया करें।" हम सन्ध्या क्या करते हैं, पाठ कर देते हैं और वह भी पांच मिनट में पार कर पल्ला झाड़ कर खड़े हो जाते हैं। यह न योगाभ्यास है और न भक्ति विशेष है।।

आर्य समाज का पहला नियम

दूरदर्शी ऋषि ने इसी त्रुटि को भांप कर आर्य समाज का पहला नियम बनाया कि "सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका

आदि मूल परमेश्वर है।" हमारी विद्या शुरु होती है– १- कुत्ता, २- खरगोश, ३- गधा और ४- घोड़ा से। ऐसा कोई नहीं निकला जो सब चीजों में परमेश्वर की सत्ता बतलाता।

तो ऋषि ने दोनों बातें लिखीं। योग के बिना किसी पदार्थ को जान नहीं सकते और योग बिना भक्ति के सिद्ध नहीं होना और भक्ति बिना श्रेष्ठाचार के स्वीकार नहीं होती। परमेश्वर में विश्वास की कमी का नाम है श्रेष्ठाचार, सदाचार से गिरना, पतित होना। हमारी भक्ति स्वीकार नहीं होती क्योंकि हम में ईश्वर विश्वास की कमी है। अतः जो लोग आत्मिक उन्नति चाहते हैं वे उपासना करें ऋषि दयानन्द की बताई शैली, विधि के अनुसार। उपासना में सबसे पहली चीज़ है आसन। प्रभु के दरबार में, प्रभु की पूजा में बैठने की विधि। टांग पर टांग धर कर बैठना अहंकार की निशानी है और दोनों घुटनों को टेक कर, बैठ मार कर बैठना, आराम तलबी, प्रमाद की निशानी है। इसलिये पहले आसन लगाएं। आसन कई प्रकार के हैं परन्तु सबसे उपयुक्त आसन है स्वस्तिक आसन।

स्वस्तिक आसन की विधि

बांए पांव को दांई पट और पिण्डली के मध्य में लगा दें और दांए पांव को बांई पट पर और पिण्डली के मध्य में एक दूसरे के आर पार लगादें,
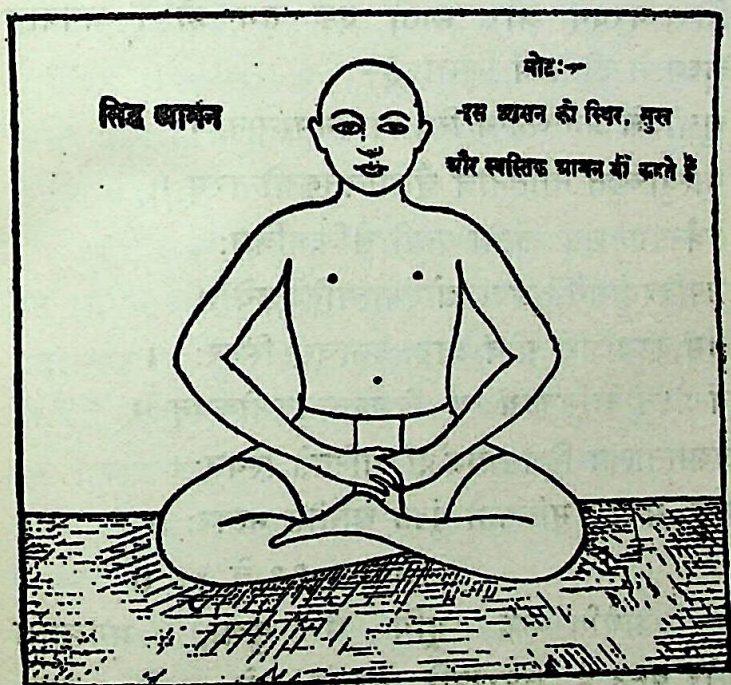
जैसे चित्र में दिखाया गया है । दोनों हाथों को मिला कर दोनों टांगों के संगम पर रखें।

लाभ–इस आसन का यह लाभ है कि गरमी में गरमी और सरदी में सरदी नहीं लगती।

चेतावनी–दोनों घुटने भूमि के साथ लगे हुये हों, मेरु दण्ड सीधा हो, बल्कि अच्छा होगा यदि पीठ-पीछे इञ्च जितने मोटे कपड़े की तह रख दें। सिर, गरदन और छाती एक सम हो। भगवान् कृष्ण ने गीता में लिखा है–

शुचौदेशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोन्तरम् ॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥
समं कायशिरो ग्रीवं धार यन्नचलं स्थिरः।
सं प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चितो युक्त आसीत मत्परः ॥

गीता ६-११ से १४ ॥

अर्थात्–शुद्ध भूमि में कुशा, मृगछाला और वस्त्र है, उपरोपरि जिसके ऐसे अपने आसन, को, न अति ऊंचा, न अति नीचा, स्थिर स्थापना करके और उस आसन पर बैठ कर तथा मन को एकाग्र करके, चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को

वश में किए हुए अन्त:करण की शुद्धि के लिये योग का अभ्यास करे ।।

उसकी विधि उस प्रकार है, कि काया, शिर और ग्रीवा को समान और अचल धारण किये हुए दृढ़ होकर अपने नासिका के अग्रभाग को देख कर, अन्य दिशाओं कों न देखता हुआ और ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित रहता हुआ भय रहित तथा अच्छी प्रकार शान्त अन्त:करण वाला और परमात्मा परायण हुआ स्थित होवे ।।

हम ऊपर कह चुके हैं कि स्वस्तिक आसन लगाएं इस आसन के लगाने से, पहले घुटनों में दर्द होगा, अत: जब दर्द होने लगे, आसन खोल दें । जब जब भी बैठें, इसी आसन का शनै:शनै: अभ्यास करें, जब एक आसन पर ३ घंटें ३६ मिनट आप बिना शरीर को हिलाए बैठ सकें तो समझ लें, आसन सिद्ध हो गया ।

ईश्वर उपासना की पहली अवस्था है आसन लगाएं और जितनी देर तक हम बैठें, शरीर को हिलने न दें, काबू रखें ।

सत्याग्रह

तत्पश्चात्, इन्द्रियों को मन के प्रतिकूल करदें ।

महात्मा गांधी ने विदेशी सरकार के विरोध में सत्याग्रह की प्रथा चलाई। प्रजा को राजा के प्रतिकूल कर दिया। कहा –राजा की आज्ञा न मानें, जो राजा कहे उसके प्रतिकूल चलें। राजा की जब कार्यकारिणी मशीनरी शिथिल हो गई तो हमें स्वराज्य मिल सका। आत्मराज्य पर मन ने अपना शासन जमा रखा है। मन का विदेशी राज्य है, इसे बेदखल करना है। आत्मा की प्रजा इन्द्रियां हैं जो इस समय न की दासता में पड़ गई हैं। अतः जरूरत है हम आत्मराज्य, स्वराज्य को पुनः प्राप्त करें, तो उसकी विधि यह है कि इन्द्रियों को मन का विद्रोही बना दें। मन जो कहे, मानने से इन्कार कर दें।

हाथों को बन्द करके बैठें। मक्खी आ बैठे तो हाथ उठाएं, मन को कहें मक्खी को उड़ादे। जाप छोड़ दो मन को देखो, आज्ञा का पालन कैसे करता है। जहां मन जायगा, प्राण साथ जायेंगे। ये दोनों विद्युत् हैं। मन को तो कहा "ज्योतिषाम् ज्योति ऐक–ज्योतियों की ज्योति है। विद्युत् के प्रताप से मक्खी उड़ जाएयी वह उड़कर दूसरी जगह पर, नासिका के द्वार पर अथवा आंख के एक सिरे पर जा बैठेगी। उसी अभ्यास को पुनः दोहराएं, मक्खी बिलकुल उड़

जाएगी। ऐसे ही मच्छर की गति समझिए। अब दूसरी अड़चन जो है, वह है, खुजली हो जाएगी। मक्खी तो बाहर से बैठी थी, खुजली अन्दर से होती है। खुजली दूर करने के लिए भी मन को लगाइए। खुजली भी जाती रहेगी। जब-जब मच्छर मक्खी और खुजली सताए, तब-तब यही क्रिया करें। फिर जब अभ्यास हो जाएगा, न मच्छर सताएगा न मक्खी और न खुजली पीड़ा देगी।

इस क्रिया से मन का राज्य शिथिल हो जाएगा और आत्म राज्य की सत्ता बढ़ती जाएगी।

योग कैसे होता है ?

हमारी पूजा, हमारा ध्यान, हमारा योग नाड़ियों के द्वारा होता है। हमारे शरीर के अन्दर ७२, ७२ १०, २०१ नाड़ियां हैं परन्तु इनमें से मुख्य तीन नाड़ियां हैं. जिनका नाम है ! इड़ा, सरस्वती और पिङ्गला ये तीनों नाड़ियां मेरु दण्ड के अन्दर हैं, मूला-धार से शुरु होती हैं। इड़ा बांईं ओर, सुषुम्णा अथवा सरस्वती मध्य में और पिङ्गला दाईं ओर है।

कण्ठ में पहुंच कर सुषुम्णा के दो भाग हो जाते हैं, एक भाग तालु से हो कर ब्रह्मरन्ध्र में जाता है

और दूसरा पीछे से हो कर लघु मस्तक में जाता है।

मन का नाड़ियों से सम्बन्ध

जीव की तीन अवस्थाएं हैं, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति। जाग्रत अवस्था में मन का सम्बन्ध किसी भी नाड़ी से नहीं होता। स्वप्नवस्था में मन पिङ्गला में होता है। उस समय शरीर के सब द्वार बन्द होते हैं, आंखें, कान, मुख आदि सब कुछ बन्द। उस समय न सूर्य है, न चन्द्रमा परन्तु हमारे अन्दर उजाला ही उजाला है। हम उस उजाले में देख रहे हैं, सुन रहे हैं, चल फिर रहे हैं, काम कर रहे हैं। यह कैसे ? तो मालूम हुआ कि बाह्य इन्द्रियों के अतिरिक्त और इन्द्रियां हैं जो सूक्ष्म हैं वे काम करती हैं। मन की अपार ज्योति है जो उस समय काम करती है। बिना किसी की सहायता के यह मन स्वप्न में सृष्टि बना देता है, वस्त्र नहीं परन्तु कपड़े पहना देता है। दवाईयां हस्पताल में पड़ी हैं परन्तु मन दवाईयां दे रहा है। यह मन सब कार्य सूक्ष्म इन्द्रियों से करता है। करता वही है जो वह जाग्रत में करता है। कला-कौशल, कारखाने आदि सब बना देता है। इस अवस्था के बाद गाढ़ निद्रा आती है। उस समय मन इड़ा में

चला जाता है। उस समय दुःख दर्द, पीड़ा आदि सब भूल जाता है। निर्धन वारन्ट गिरफतारी के भय में था, निद्रा आ गई, सब भूल गया। राजा रंक—एक तो पर्यङ्क (पलंग) पर सोया है दूसरा भूमि पर—परन्तु अब कोई भेद नहीं। सब वासनाएं समाप्त हो गई राग द्वेष सब भाग गए।

अब हम चाहते हैं शांति। शांति मिलेगी वासनाओं के दूर होने से परन्तु यह जड़ शान्ति है। हम ये दोनों अवस्थाएं सुषुम्णा में पैदा करना चाहते हैं। सुषुम्णा में हम दृश्य देखेंगे, सूर्य आदि में क्या है, वहां क्या काम होता है, ये सब दृश्य सच्चे होंगे, स्वप्न में वे मिथ्या होंगे।

इञ्जन जो बना, वह कैसे बना ? बनाने वाले ने उस इञ्जन को ब्रह्माण्ड में चलता देखा, तो उसने दस्ती खाका बनाया। समय-समय पर संशोधन होता गया। इसी प्रकार औषधियों का ज्ञान हुआ। इन दोनों कामों को हम सुषुम्णा में होता देखेंगे, अपने संकल्प से, स्वप्न की तरह अनायास नहीं। इस सुषुम्णा में प्रवेश करके हमने सब कुछ देखना है और साक्षात् करना है। इसका नाम है योग।

जैसे ऊपर कह चुके हैं, ये तीनों नाड़ियां मेरुदन्ड में से जाती हैं, इसलिये हम सीधे बैठें, नहीं तो मेरुदण्ड के छिद्र एक सीध में न होंगे। इसलिये आसन लगाने की जरूरत है।

योग के प्रकार

योग चार प्रकार का है :—

हठ योग, लय योग, राज योग और मन्त्र योग।

हठ-योग :—में प्राणों के द्वारा मन को वश में किया जाता है। उसके लिये धौती, नेति, न्यौली आदि क्रियाएं करनी पड़ती हैं। सब गृहस्थी नहीं कर सकते।

लय-योग :—में मन के सङ्कल्प विकल्प को समाप्त करते रहना पड़ता है, उठने नहीं दिया जाता। यह वह कर सकता है जिसके पास समय बहुत हो, एक अर्थ में सांसारिक धन्धों से मुक्त हो।

राज-योग :—इसमें मन के द्वारा प्राणों को वश में किया जाता है। यह योग वे कर सकते हैं जिनकी वृत्ति पाप की ओर न जाए और जिनके बड़े पुण्य-प्रताप हों।

मन्त्र-योग :—यह सब के लिये है। यह योग पैदल से कुछ ऊपर है। पैदल यात्रा का सारा भार

पांव पर है। इसमें प्राण काम करते हैं। प्राण स्वस्थ और बलवान हैं तो यात्रा तय हो ही जाएगी। साइ-किल में फूक प्राण भरे, चल पड़ा। इसमें पांव कुछ हलका हो जाता है। यह यात्रा पैदल की अपेक्षा शीघ्र समाप्त होगी। अब यदि वही वायु मोटर में भर दें तो केवल पांव से दबाना पड़ेगा—और वायुयान तक यही वायु काम देती है। इसी प्रकार इस योग द्वारा बढ़ते-२ समाधि तक पहुंच जाता है।

इस योग की खूबी यह है कि इसे सब कर सकते हैं,—बाल, वृद्ध धनी, निर्धन, स्त्री, पुरुष। इसमें पाबन्दी भी कम है। घर में रहते हुए सब कर सकते हैं। कोई खटका नहीं। घर बैठे करें, प्राणायाम की यहां जरूरत नहीं। प्राणायाम में भी भय लगा रहता है, परन्तु इसमें कोई भय नहीं। मन्त्र योग एक बार सीखलें, फिर करते रहें।

शरीर इसमें सम रहे न तना हुआ हो न ढीला। मक्खी मच्छर को उड़ाना नहीं। सब काम मन से ही कराना है। मक्खी मच्छर से बचने का प्रबन्ध तो और भी हो सकता है, कपड़ा ओढ़ लिया परन्तु यह भी तो पराधीनता है। अब दो चीजें हाथ में आगईं

मक्खी और खुजली से बचने का अभ्यास। शेष रहा मन को लगाना।

मन को कैसे लगाएं

मन जाता है विषयों में, प्राय तीन प्रकार के विषयों में यह जाता है—रूप में, राग में, रस में। इसका बन्द करना बहुत कठिन है, इसको रस दें, रूप दें और राग सुनाएं, परन्तु वे सब दिव्य हों। सांसारिक विषय हमें गिराते हैं, दिव्य हमें उठायेंगे।

गायत्री मन्त्र का उच्चारण करें, धीमे-धीमे एक-एक शब्द को सुनें। ओष्ठों में कान सुनें, आँखों की वृत्ति वहां हो, जबान, प्राण और मन इकट्ठे रहें। हम अपने समय के सुभीता के अनुसार बैठें। आरम्भ करें दस मन्त्रों से। हमने सौ तक पहुंचना है तब जाकर हमें सिद्धि प्राप्त होगी।

एक मन्त्र पर प्राय: २० सैकिण्ड लगते हैं तो १० पर समझिए ३ मिनट. १०० पर ३०-३५ मिनट लगेंगे। यदि हम ३६ मिनट तक मन वश में रख सकें, एकाग्र रहें तो सिद्धि निश्चित हो जाती है।

कल्पना करें हमने १० मन्त्र तक मन को कहीं नहीं जाने देना। हमने ४ मन्त्र किए, मन कहीं भाग गया तो फिर एक से शुरू करें।

भगवान् कृष्ण ने गीता में फरमाया है :—

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ।।
गी० ६–२६ ।।

यह स्थिर न रहने वाला मन जिस-जिस कारण से सांसारिक पदार्थों में विचरे, उस उससे रोक कर बारम्बार परमात्मा में ही निरोध करें।

इस प्रकार से जब तक १० तक न टिके, यह अभ्यास करते रहें। परन्तु एक बात का ध्यान रहे कि यह मन धोखा भी देगा, इस पर विश्वास नहीं करना। जब तक ४–५ दिन बराबर न देख लें कि यह १० तक पूरा टिक जाता है, तब तक आगे पग न उठायें।

जब १० तक टिक जाने का पूरा विश्वास हो जावे, फिर १५ तक ले जायें, १५ से आगे ५–५ बढ़ाते बढ़ाते १०० तक ले जाएं। जब सौ तक मन टिक जाएगा तो आपकी वाणी में दिव्य रस आ जाएगा। उसकी निशानी यह है कि वाणी के दोष कटु बोलना,

मिथ्या, असत्य, अनृतय, अशुभ, असभ्य व्यर्थ बोलना ये सब ऐसे भागते प्रतीत होंगे जैसे अग्नि से धूम्र निकलता दिखाई देता है। यह अमृत रस सारे शरीर में भर जाएगा, आनन्द ही आनन्द होगा।

इसके लिये कोई समय की अवधि निश्चित नहीं, यह आप की लगन पर है, दस दिन में सिद्धि मिले, १० वर्ष में मिले, १० जन्म में मिले।

दूसरा पग

जब जिह्वा के अग्र भाग पर १०० मन्त्र तक मन जमा रहे तो अब जिह्वा के मध्य भाग में मन को टिकाने का अभ्यास करें। यहां जबान को तालु से लगादें। मन, प्राण, कान और दृष्टि चारों को पहले अभ्यास की तरह लगाएं और शनैः शनैः १०० तक ले जाएं। वहां पहुंच कर आप को सिद्ध पुरुषों के और मुक्त पुरुषों के दिव्य दर्शन होंगे और उनके द्वारा हमें नए-नए ज्ञान प्राप्त होंगे।

तीसरा पग

इसके बाद मन, प्राण, कान और दृष्टि को कण्ठ में ले जाएं और उसी प्रकार अभ्यास बढ़ाते-बढ़ाते १०० तक पहुंच जाएं, यहां हमारी समाधि हो जाएगी

और इस रूप में जिसमें परमेश्वर ने अन्तराल में गाया था, वही शब्द सुनाई देंगे। यही अनहत शब्द है।

समाधि के साथ-साथ हमारे सब दोष दूर हो जाएंगे राग और द्वेष न रहेंगे। सांसारिक दृश्य और वासनाएं सब समाप्त हो जाएंगी।

यह योग है और यही भक्ति है। इसके लिये ऋषि ने कहा कि योग बिना भक्ति और भक्ति बिना सदाचार के सिद्ध नहीं होती।

तीन प्रकार के मानव

गुणों के विचार से मानव तीन प्रकार के हैं, तमोगुणी, रजोगुणी और सतोगुणी। मन्त्र योग की विधि सबके लिये एक प्रकार की नहीं। प्रत्येक गुण वाले के लिये विधि जुदा-जुदा है।

तमोगुण वाले व्यक्ति के लिये विधि

तमोगुणी के लिए सब से अच्छा गायत्री कीर्तन है। गायत्री कीर्तन से बाहर के तमोगुणी परमाणु, हटने लगेंगे और मन एकाग्र होने लगेगा और मूलाधार, स्वाधिष्ठान और मणिपूरक-चक्र खुलते हैं।

कीर्तन की विधि: मूल बन्द और उड्डियान

बन्द लगा कर डण्डा जाप करें अर्थात् गुदा को ऊपर सुकेड़ें और पेट को नीचे दबाएं कि जैसे प्राणायाम में रेचक करते समय पेट लक की ओर लगता और गुदा द्वार बन्द होकर ऊपर उठता है। ऐसी स्थिति में बैठ कर गायत्री के चार भाग कर दें (१) ओ३म् भूर्भुवः स्वः (२) तत्सवितुर्वरेण्यं (३) भर्गोदेवस्य धीमहि और (४) धियो योनः प्रचोदयात् ॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः का गान करते समय दृष्टि की वृत्ति को अन्दर ही अन्दर हृदय गुफा में अर्थात् २ पसलियों की अस्थियां जहां मिलती हैं, वहां ले जाइए और "तत्सवितुर्वरेण्यं" कहते समय वही वृत्ति ऊपर त्रिकुटि में ले जाइए। फिर 'भर्गोदेवस्य धीमहि" के समय पुनः हृदय में वृत्ति को लाइए और "धियो योनः प्रचोदयात्" कहते समय पुनः त्रिकुटि में वृत्ति को ले जाइए। हृदय धारण करने का स्थान है। गुण धारण किये जाते हैं। ओ३म् के गुण भूः, भुवः, स्वः और भर्गः और देव हृदय में धारण करें। त्रिकुटि में बुद्धि का स्थान है, जो विवेचन करती है। बुद्धि के द्वारा ही वरण होता है और पवित्र बुद्धि की ही इस मन्त्र में याचना और प्रार्थना है। मन को बार-बार हृदय से मस्तिष्क और मस्तिष्क

से हृदय में ले जाने से एक डण्डा बन जाता है, बस इसी डण्डे पर मन का उतार चढ़ाव करने से मन वश में आ जाता है और इस प्रकार के जाप से अनाहत् और आज्ञाचक्र खुलते हैं। वेद भगवान् ने बतलाया है :

तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्यमानाय स्वाहा तप्ताय स्वाहा धर्माय स्वाहा ।

निष्कृत्यै स्वाहा प्रायश्चित्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा । य० ३६।१२।।

पदार्थः–मनुष्यों को चाहिए (तपसे) प्रताप के लिए (स्वाहा) (तप्यते) संताप को प्राप्त होने वाले के लिए (स्वाहा) (तप्यमानाय) ताप गर्मी को प्राप्त होने वाले के लिए (स्वाहा) (तप्ताय) तपे हुए के लिए (स्वाहा) (धर्माय) दिन के होने को (स्वाहा) (निष्कृत्यै निवारण के लिए(स्वाहा) और (भेषजाय) सुख के लिए (स्वाहा) इस शब्द का प्रयोग करें ।१२।

भावार्थ :–मनुष्यों को चाहिए कि प्राणायाम आदि साधनों से सब किल्विष का निवारण करके सुख को स्वयं प्राप्त हों और दूसरों को प्राप्त करावें।

।।१२।।

जैसे प्राणायाम से सब किल्विष दूर होते हैं। ऐसे यह जाप की विधि प्राणायाम का काम देगी।

इस प्रकार जब कीर्तन करते-करते थक जायें, थोड़ा विलम्ब करके वाचिक जप करें, और उस में प्रत्येक शब्द को सुनने का प्रयत्न करें।

इससे तमोगुण के परमाणु हट जाते हैं और उसका रजोगुण में प्रवेश होने लगता है।

रजोगुणी के लिए विधि

जब ऊपर की अवस्था परिपक्व हो जावे तो पहले 'ओ३म्' की ध्वनि तीन बार नाभि से निकाल कर उच्च स्वर से ब्रह्मरन्ध्र तक ले जायें। तीन बार ऐसा करने के बाद एक दो मिनट के लिए शान्त चित्त बैठें। जब प्राण ऊपर से उतरने लगें तब सबसे पहले गायत्री मन्त्र से अर्थ द्वारा इस प्रकार प्रार्थना करें :-

हे सर्व रक्षक, प्राणाधार, दुःख विनाशक, सुख स्वरूप, सकल जगत् के उत्पादक, गुप्त प्रेरक, उपासना के योग्य, विशुद्ध ज्ञान दाता, परमेश्वर आप के वरने योग्य पाप विनाशक तेज को हम धारण करते हैं कि जिससे हे परमेश्वर आप हमको अपनी शरण में लेकर हमारी बुद्धियों को अपनी पवित्र प्रेरणाओं को समझने और उस पर आचरण करने के योग्य बनायें।

अर्थ गायत्री मन्त्र (कविता में)

प्राण रूप प्रभु जग रखवारे,

जग में रहो जगत् से न्यारे ।

सुख स्वरूप सब संकट हरिये,

मंगल मोद हृदय में धरिये ।

तेज रूप तव ध्यान धरें हम,

विमलज्योति तव ज्योति वरें हम ।

सुमति दान दे अमृत भरिये,

प्रियतम ओ३म् आनन्दित करिये ।

इसके बाद उपांशु जप करें । उसमें शब्द को सुनें । जब २०-२५-३० मन्त्र पर मन उखड़ने लगे तब फिर तीन बार पूर्व प्रकार 'ओ३म्' की ध्वनि करें और वही क्रिया करें ।

इस प्रकार से जितना भी जप करना है, एक सहस्र बार जाप तक यही अभ्यास करें । इससे अर्थ याद हो जावेंगे और मन जो बार बार निकलता रहता है, वह टिकने लग जावेगा ।

यह रजोगुणी निकृष्ट अवस्था है । जब ऐसे कुछ काल के अभ्यास से मन का सत्वगुण में प्रवेश होने लगे

तो सर्व प्रथम बताई विधि—अर्थात् जिह्वा के अग्रभाग पर मन, प्राण, कान और दृष्टि को टिका कर १० मंत्र आरम्भ कर १०० मन्त्र तक ले जावें। यह रजोगुणी मध्यम अवस्था है। इस जाप से तालु चक्र खुलता है। इससे ऊपर वाली विधि अर्थात् जब मन, प्राण, वाणी और दृष्टि जिह्वा के मध्य भाग में ठहरने का अभ्यास किया जाता है तो वह रजोगुणी उत्तम विधि है और कण्ठ में जाप करने की सत्वगुणी विधि है इस जाप से विशुद्धि चक्र खुलता है।

चार्ट बनाओ

जिह्वा के भिन्न-भिन्न भागों पर मन को ठहराते समय यह ध्यान रखना है कि मन कहां, कहां निकल जाता है अर्थात् वह व्यवहार की ओर भागता है अथवा विषयों की ओर। उसके लिए ग्राफ कागज पर अगले पृष्ठ पर दिए नमूने का दैनिक चार्ट बनाएं कि जिससे हमें अपनी दैनिक प्रगति का ज्ञान हो सके।

व्यवहार और विषयों से मन को हटाना

व्यवहार में जब जब मन दौड़ता है तो ऐसी अस्थिरता को दूर करने के लिये प्रभु में विश्वास और

प्रारब्ध में सन्तोष की आवश्यकता है, प्रभु पर विश्वास दृढ़ कीजिये ।

यदि मन विषयों में जाता हो तो प्रत्येक विषय का फौरी (तात्कालिक) इलाज निम्न प्रकार है :-

१) यदि काम वासना में मन जावे तो आंखों को उल्टा दें अथवा दाएं गिट्टे पर मुक्के मारें ।

२) यदि क्रोध की ओर गति हो तो जबान को उलटा दें ।

३) लोभ की अवस्था में नासिका को दो ऊंगलियों से बन्द करें ।

४) यदि मोह की वृत्ति जगे तो सिर में मुक्के मारें ।

५) अहंकार की अवस्था में कान को मरोड़े ।

प्रभु करे कि हम मन्त्र योग के महत्व को समझ कर आचरण में लाकर जीवन सफल कर सकें ।

२२-७-५५ सत्य भूषण
रानी गंज आचार्य

चित्रपट भरने की विधि

१) चित्रपट भरने के लिए ग्राफ पेपर प्रयोग करें।

२) 'क' आरम्भ करने का स्थान है। लाल लकीर पर बिन्दु (·) का चिन्ह लगाकर वहां 'क' लिख दें।

३) उस लाल लकीर पर जो खाने बने हुए
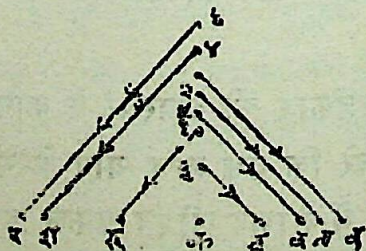
हैं, वह एक एक मन्त्र को समझें। लाल लकीर के अन्दर छोटे-छोटे १०० वर्ग हैं। मन की प्रगति को

लाल लकीर पर ही केन्द्रित रखना है।

४) 'क' के दाईं ओर लाल लकीर पर व्यवहार की गति दिखाई जाती है। जितने मन्त्रों के जाप पर मन व्यवहार में भागे, 'क' से उतनी खानों की दूरी पर बिन्दु (·) का चिन्ह डालकर व' लिख दें।

५) 'क' के बाईं ओर लाल लकीर पर विषयों की गति दिखाई जाती है। जितने मन्त्रों के जाप पर मन किसी विषय की ओर दौड़े, 'क' से उतनी खानों की दूरी पर बिन्दु (·) का चिह्न डालकर उस विषय सम्बन्धी अक्षर को लिख दें।

विषय पांच है

शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। इनको क्रमशः 'श' स, रू र, ग अक्षरों से जाहिर किया है।

६) अब मन और विषय को, मन और व्यवहार को रेखा खींचकर मिला लें, जैसे चित्रों में कल्पना रूप से दिखाया गया है :-

७) अभ्यास १० मन्त्रों से शुरू करें।

८) प्रत्येक बार के अभ्यास को अंकों में प्रदर्शित करें।

९) गिनती के समय अंगुलियों का प्रयोग न

करें, बल्कि मन्त्र के अन्तिम शब्द 'प्रचोदयात्' के बाद एक दो अथवा तीन बार का वह मन्त्र है, वह मन ही मन में कह दिया करें।

अब व्याख्या

कल्पना करो कि १-८-१९५५ की प्रातः से आप ने अभ्यास आरम्भ किया तो पहले तिथि, समय और संख्या की खानापुरी कर दं। अब प्रातः के समय पहली बार आपका मन तीन मन्त्र जाप कर पाया था कि दुकान का ख्याल आ गया। वृत्ति जाप से हट गई तो हमने 'क' से तीन खानों की दूरी पर (·) लगाकर 'व' लिख दिया। '१' और 'व' को रेखा खींचकर मिला दिया।

अब पुनः अभ्यास दूसरी बार आरम्भ किया।

दूसरे अभ्यास में ४ मन्त्रों तक मन कहीं नहीं गया चौथे मन्त्र की समाप्ति पर मन शब्द विषय का शिकार हो गया अथवा कोई शब्द कान में पड़ा और वृत्ति जाप से हट गई तो हमने 'क' से चौथे खाने पर बिन्दु डालकर 'श' लिख दिया। अब २ और श को मिला दिया। तीसरी बार मन २ मन्त्रों पर ही निकल गया और रसीले पदार्थों की ओर भाग गया, तो हमने 'क' से दो खाने ऊपर बिन्दु लगाकर '३' का अंक

लिखा और 'क' के बाईं ओर दो खाने की दूरी पर बिन्दु लगाकर 'र' लिख दिया और फिर '३' और 'र' को रेखा से मिला दिया।

चौथी बार फिर अभ्यास शुरू किया--६ तक मन टिका रहा, फिर व्यवहार में चला गया तो 'क' से ऊपर ६ खाने गिन कर बिन्दु लगाकर '४' का अंक लिखा और 'क' के दाईं ओर लाल लकीर पर छटे खाने के अन्त पर बिन्दु लगाकर व लिखा, और '४' और व को मिला दिया।

इसी प्रकार पांचवीं बार के अभ्यास पर मन की गति को '५' और 'स' से प्रकट किया जो 'क' से बाईं ओर पांचवें नंबर पर दिखाया गया है और छट्टी बार के अभ्यास के फल स्वरूप गति को '६' और 'रु' के मिला देने से प्रगट की। अब प्रातः की मानसिक गति का चित्रपट तैयार है। एक ही दृष्टि पर योग निपुण व्यक्ति आप की मानसिक डावां-डोल गति का अन्दाजा लगा सकता है। इसी प्रकार सायं के चित्रपट को अपने सामने रखा और इसको शब्दों में प्रकट करने की कोशिश करें।

एक और आवश्यक सूचना

'क' के दाईं ओर की गति को हम + (इस चिह्न से) और बाईं और की गति को−(इस चिन्ह) से प्रकट करते हैं, इन बातों का ख्याल रखकर अब निम्न अंकादि से चित्रपट तैयार करने का अभ्यास करें :−

	(४,१)	(१,२)	(२,३)	(३,४)	(५,५)
अ	क+व,	क-श,	क+व,	क-रू	क-स्.
	(५,१)	(६,२)	(७,३)	(४,४)	(८,५)
ब	क+व,	क−र,	क+ व,	क-स्,	क−श,

नोट−क' के ऊपर के दो अंकों में पहला मन्त्र की संख्या को जो बिना विघ्न के जपे गए और दूसरा अंक अभ्यास को प्रकट करता है।

यदि इस विधि को आपने हृदयंगम कर लिया तो फिर चित्रपट का भरना और मन की गति का अन्दाजा लगाना बड़ा सुगम हो जायेगा।

इति

सत्यभूषण
आचार्य

इसराना ग्राम
१९-९-१९५५

—: गुरुदेव का उपलब्ध साहित्य :—

पुस्तक	मूल्य
अमृत के तीन घूंट	१-२५
अध्यात्म-सुधा (चतुर्थ भाग)	५-००
अमृत प्रसाद	६-००
अन्त: साधना	४-००
अध्यात्म जिज्ञासा	४-००
आत्म चरित्र	२-५०
अद्भुत किरण	१-५०
ईश्वर आराधना	२-५०
उत्तम शिक्षा	२-५०
उत्तम जीवन	०-४०
मन्त्र योग ३—४ भाग	१२-५०
गायत्री रहस्य	१०-००
गृहस्थ आश्रम प्रवेशिका	४-००
गायत्री कुसुमांजलि	१-००
गृहस्थ सुधार	१२-५०
चमकते अंगारे	२-५०
जीवन यज्ञ	४-५०
डरो वह बड़ा जबरदस्त है	२-५०
दृष्टान्त मुक्तावलि	१०-[illegible]
दिव्य-पथ	२-५०
दुर्लभ वस्तु	०-६०
पृथ्वी का स्वर्ग	५-००
पथ-प्रदर्शक	२-५०

पुस्तक	मूल्य
प्रभु का स्वरूप	५-००
प्रगति-पथ	२-५०
(सजिल्द)	३-००
पावन यज्ञ प्रसाद	०-८५
भाग्यवान गृहस्थी	१-००
मतलब की बातें	०-३०
मनोबल	५-००
मर्यादा का महत्व	३-५०
यज्ञ रहस्य	१०-००
संध्या सोपान	५-५०
सेवा धर्म	४-००
सत्यमणि गीता	२-२५
सम्भलो	१-००
कर्म भोग चक्र	१०-००
निर्गुण सगुण उपासना	३-०[illegible]
निराकार साकार पूजा	३-००
व्रत अनुष्ठान	२-५[illegible]
वर घर की खोज	४-[illegible]०
[illegible]	[illegible]०
क[illegible]ण-पथ	[illegible]
आ[illegible]	२[illegible]
सौम्य सन्त	[illegible]
योग युक्ति	४-[illegible]
हवन मन्त्र	१-[illegible]

—: o :—

लोकसेवा प्रिंटिंग प्रेस, [illegible] भवन, दिल्ली रोड, रोहतक